हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला ४६

॥ श्रीः ॥

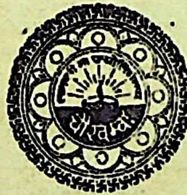
वास्तुरत्नाकरः

(अहिबलचक्रसहितः)

रचयिता

श्री विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी

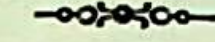
ज्योतिषाचार्यः



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला
४६



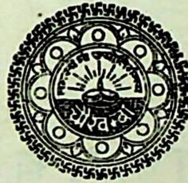
॥ श्रीः ॥

वास्तुरत्नाकरः

(अहिबलचक्रसहितः)

सटिप्पण-हिन्दीव्याख्याविभूषितः

रचयिता
श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदी ज्यौतिषाचार्यः
संस्कृताध्यापकः
(श्री अग्रसेन कन्यापाठशाला, इण्टर कालेज, आजमगढ़)



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१
१९८८

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : पंचम, वि० संवत् २०४४
मूल्य : रू० ४०-००

K. 37/99, Gopal Mandir Lane
P. O. Chowkhamba, Post Box 1008,
Varanasi-221 001 (India)
Phone : 63145
1988

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
कृष्णदास अकादमी
पोस्ट बाक्स नं० १११८
चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग)
वाराणसी-२२१००१
(भारत)

HARIDAS SANSKRIT SERIES
46



VĀSTURATNĀKARA

(With Ahibala Chakra)

Edited With
The Hindi Commentary, Exercises and Notes

BY

JYAUTISACHARYA
VINDHYESWARI PRASADA DVIVEDI



CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI
1988

दो शब्द

हर्ष का विषय है कि व्यावहारिक ज्यौतिष से काम लेने वाले विद्वानों ने इस वास्तुरत्नाकर नामक संग्रह को इस प्रकार सादर अपनाया कि अल्पकाल में ही इसके द्वितीय संस्करण की आवश्यकता आ पड़ी ।

इस आवृत्ति में गृहसारणी में प्रत्येक नक्षत्रों पर १६।१६ पिण्ड बढ़ा दिये गये हैं तथा बीच-बीच में आवश्यक विषयों का सन्निवेश भी कर दिया गया है जिससे इस पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है ।

पहले प्रकाशन के अवसर पर मैंने विद्वानों से निवेदन किया था कि इस पुस्तक में जो त्रुटियाँ रह गई हों विद्वद्गण उनके सुधारने की सूचना देने की कृपा करें । पर यह मेरी आशा सफल नहीं हुई । अब पुनः विद्वानों से प्रार्थना है कि उस मेरी पुरानी प्रार्थना को सफल बनाने के लिए अपना अमूल्य समय प्रदान करने की उदारता प्रदर्शन करके मुझे अनुगृहीत करें ।

गुरुपूर्णिमा १५ सं० २०१२

सज्जनों का सेवक
विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी

वक्तव्य

माङ्गल्यवस्त्राभरणैरुपेतां सीतामवाप्ताभिमतामभीताम् ।
विलोलदृष्ट्या परिलोकयन्तं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥

छोटे-छोटे कीट-पतङ्ग से लेकर मनुष्य पर्यन्त प्रत्येक प्राणी प्रकृति देवी के अटूट नियमों से आबद्ध होकर दुःसह दुःख की निवृत्ति और आत्यन्तिक सुख की उपलब्धि के लिए निरन्तर चेष्टा करते और नाना भाँति की सुखसामग्रियों के संग्रह में संलग्न रहते हैं। भवन भी उन सामग्रियों में अपना एक प्रधान स्थान रखता है। इस कारण जीव मात्र अपने-अपने अनुरूप निवास-स्थान बना कर अपना सुखमय जीवन निर्वाह करते हुए दीखते हैं। परन्तु मनुष्यजाति सर्वश्रेष्ठ जाति है, अत एव इसका निवासस्थान भी सर्वश्रेष्ठ और निरापद होना अनिवार्य है। अन्य प्राणी तो केवल अपने परिश्रम से ही अपना-अपना निवासस्थान (घोसले, मान, बिल इत्यादि) तैयार कर लेते हैं किन्तु मनुष्यजाति को अपना भवननिर्माण करने के लिए देश, काल और परिस्थिति पर पूर्ण ध्यान देते हुए तन, मन, धन, जन इत्यादि सभी को इतिकर्तव्यता का रूप देना पड़ता है। कुछ ऐसे पालतू जीव भी हैं जिनके रहने के लिए मनुष्य को ही निवासस्थान बनाने पड़ते हैं। जैसे हाथी, घोड़ा, गौ, ऊँट, गधा, खच्चर इत्यादि। मनुष्यजाति के लिए यह (भवन) एक स्थायी सम्पत्ति भी समझी जाती है। इसलिए इसके निर्माण के पूर्व, तैयार हो जाने पर शीघ्र ही विकृत न हो जाय, सूर्य के अंशुजालों के प्रवेश न होने पर अधिक शीड़ रहने आदि कारणों से सदा स्वामियों के स्वास्थ्य विकृत न हो जायँ इत्यादि बातों पर पूर्णतया ध्यान रखना आवश्यक होता है। इसलिए हमारे पूर्वजों ने इस (भवननिर्माण) विषय को धर्म का रूप देते हुए कहा है—

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसङ्गुणम् ।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं भवेत् ॥

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदं
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम् ।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते
गेहं पूर्वमुशन्ति तेनविबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः ॥

'स्त्री, पुत्र, मित्रादिकों के भोग और सौख्य को पैदा करने वाला, धर्म, अर्थ, काम को देने वाला, जीवों का निवास स्थान, सुखों का प्रधान स्थान, शीत (जाड़ा), घाम और बरसात आदि के दुःखों को दूर करने वाला, वापी; कूपादि, जलाशय और देवालयों के सम्पूर्ण पुण्यों को देने वाला गृह ही है' ऐसा विश्वकर्मा आदि पूर्वाचार्यों ने कहा है।

ऐसी परमोपयोगी सुख सामग्री को तैयार करने की विधि का जानना मनुष्यमात्र के लिए उतना ही आवश्यक है जितना पाक-विज्ञान, कृषि-विज्ञान आदि। उन्हीं विधियों के समुदाय को 'वास्तुविद्या' कहते हैं।

सर्वप्रथम वास्तुविद्या का विकास कब और कहाँ हुआ, इस प्रश्न के मन में आते ही विचारधारा झट यही उत्तर देने को उद्यत होती है कि—भारतवर्ष ही विश्वरचना में परम प्रवीण विधाता की सृष्टि का आदिम स्थान है। अतः भारतवर्ष ही को सर्वप्रथम समस्त विद्याओं को उन्नति की चरमसीमा तक पहुँचाने का गौरव प्राप्त हुआ है। इस बात को विश्वविख्यात पुरातत्त्ववेत्ताओं ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।

प्रोफेसर मैक्समूलर महाशय ने अपने एक व्याख्यान में एक बार कहा था कि 'यदि मुझसे कोई यह बात पूछे कि वह देश कौन और कहाँ है, जहाँ मनुष्योंने अपनी मानसिक उन्नति से उत्तमोत्तम गुणों और विद्याओं की प्रत्येक शाखाओं पर विचार किया हो और जहाँ जटिल से जटिल प्रश्नों के हल करने वाले पैदा हुए हों, तो मैं यही उत्तर दूँगा कि वह देश भारतवर्ष है।' इसीलिए हिन्दी के आधुनिक कवियों के अग्रगण्य बाबू श्रीमैथिलीशरण जी गुप्त ने भी भारत भारती में लिखा है :—

शैशवदशा में देश प्रायः जिस समय सब व्याप्त थे।
निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढ़ता को प्राप्त थे॥
जब थे दिगम्बर रूप में वे जङ्गलों में घूमते।
प्रासाद केतन पट हमारे चन्द्र को थे चूमते॥
संसार में जो कुछ जहाँ फैला प्रकाश विकास है।
इस जाति की ही ज्योति का उसमें प्रधानाभास है॥
करते न उन्नति पथ परिष्कृत आर्य जो पहले कहीं।
सन्देह है तो विश्व में विज्ञान बढ़ता या नहीं॥
आये नहीं थे स्वप्न में भी जो किसी के ध्यान में।
वे प्रश्न पहले हल हुए थे एक हिन्दुस्तान में॥

दुनियाँ के सबसे पुराने ग्रन्थों में सर्वप्रथम स्थान वेदों का ही माना जाता है। वेदों में गृह, गेह, हर्म्य, पस्त्य, शाला, भवन, आगार, सदन इत्यादि मकान के सभी पर्यायवाची शब्द प्रायः उपलब्ध होते हैं। अत एव 'वैदिककाल में घर बना कर रहने का प्रचार अधिक हो गया था' इसके लिए प्रमाण ढूँढ़ने के प्रयास की आवश्यकता नहीं।

उपर्युक्त वचनों से पहले कही बातों की पर्याप्त पुष्टि होते हुए भी कराल कलिकाल के अद्भुत हेर-फेर के कारण इस समय विदेशी भाषाभाषियों के अनेक मतभेद से परिभ्रष्ट होकर आधुनिक जगत् में विशेष प्रचलित न होने के कारण वास्तुविज्ञान अनुपयुक्त-सा प्रतीत हो चला है, तथापि इस धर्मप्राण भारतवर्ष में सनातनधर्म पर अटल श्रद्धा और विश्वास रखने वाले और यावच्छक्य प्राक्तन परिपाटी के अनुसार ही कार्य निर्वाह करने वाले धार्मिक सज्जनों के सम्पूर्ण कर्म उसी पर निर्भर हैं। उन्हीं लोगों के सौकर्य के लिए विशेष आवश्यकीय और प्रचलित विषयों का संग्रह इस पुस्तिका में किया गया है।

यद्यपि वास्तुविद्या का विज्ञान संस्कृत भाषा के भण्डार में इतस्ततः बहुत भरा पड़ा है, तथापि सब विषयों का एकत्रीभाव; जिनकी इस समय सर्वत्र आवश्यकता

पड़ती रहती है, किसी भी प्राचीन तथा अर्वाचीन पुस्तक में दृष्टिगोचर नहीं होता। जैसे—वराहमिहिराचार्य प्रणीत बृहत्संहिता (वाराहीसंहिता) में पिण्डादि का प्रपञ्च तथा मुहूर्तचिन्तामणि, मुहूर्तमार्तण्ड, मुहूर्तगणपति, रत्नमाला आदि में द्वारविचार, दिक्शोधनविचार आदि के प्रकार ग्रन्थगौरव के भय से नहीं लिखे गये हैं। गृहभूषण, वास्तुमाला, वास्तुप्रबन्ध इत्यादि आधुनिक प्रबन्ध जो आज कल बाजारों में बहुधा उपलब्ध होते हैं, उनमें ऊटपटांग विषयों का ऐसा अस्तव्यस्त सन्निवेश है कि ज्योतिष शास्त्र में विशेष परिश्रम न करने वाले साधारण पण्डितों की कार्यसिद्धि आवश्यकता पड़ जाने पर विशेष परिश्रम करने पर भी नहीं होती। एक-एक बात ढूँढ़ने के लिए उन्हें अनेक पुस्तकों का अन्वेषण करना पड़ता है तथा बड़े-बड़े पण्डितों का अनुनय-विनय करना पड़ता है। इन सभी कठिनाइयों को दूर करने के अभिप्राय से मैंने बृहत्संहिता आदि अनेक मौलिक ग्रन्थों और प्रबन्धों को देख कर ऊहापोह-पूर्वक सब विषयों का एक सुन्दर संग्रह कर दिया है, जिससे ज्यौतिष शास्त्र के परिशीलन का विशेष व्यवसाय न रखने वाले पण्डितों को वास्तुसम्बन्धी किसी भी प्रचलित विषय की जानकारी में किसी प्रकार की कठिनाई न पड़े और ज्यौतिष शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वानों को भी एकत्र ही सब विषय प्राप्त हो जायँ।

अनेक शाखाओं के रहते हुए भी लोकप्रसिद्ध आवश्यकीय (निम्नाङ्कित) विशेष-विशेष अवयवों पर ही धार्मिक दृष्टि से ध्यान दिया गया है।

कल्पना की जाय कि किसी व्यक्ति का कारणविशेष से निवासस्थान भ्रष्ट हो गया या छूट गया अथवा वहाँ के अधिकारी ने उसे निकाल बाहर कर दिया अब उसके पास इस पृथ्वी पर निजी कोई गृह (निवास भवन) नहीं है, परन्तु अब वह कहीं कोई स्थान बनाकर रहना चाहता है तो सबसे पहले उसको गाँव के संबन्ध में, फिर उस गाँव के किसी भाग (दिशा) के सम्बन्ध में, फिर उस दिशा में भी किसी टुकड़े के सम्बन्ध में······अपनी सुविधा के अनुकूल जानकारी कर लेनी होगी। उसके बाद गृहमेलापक, पिण्ड, पिण्ड के भीतर अनेक सामग्रियों के रखने के स्थान, दिवाल (भित्ति) ऊँचाई, दरवाजा, खिड़की, सीढ़ी, छाजन, सहन आदि सम्पूर्ण विषयों का ध्यान रखते हुए मकान बनाने की आवश्यकता होती है उसके बाद गेहारम्भ, गृहप्रवेश आदि का मुहूर्त, गजशाला, हयशाला, गोशाला, जलाशय, वाटिका, देवालय आदि की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए इस संग्रह में क्रमसे—

१ भूपरिग्रह प्रकरण	७ इष्टिका प्रकरण
२ दिक्शोधन प्रकरण	८ द्वार प्रकरण
३ शल्योद्धार प्रकरण	९ गेहारम्भ प्रकरण
४ मेलापक प्रकरण	१० गृहप्रवेश प्रकरण
५ आयाद्यानयन प्रकरण	११ परिशिष्ट प्रकरण
६ गृहोपकरण प्रकरण	१२ जलाशय प्रकरण

नाम के १२ प्रकरण रखे गये हैं। प्रत्येक प्रकरण में प्रत्येक विषय का सन्निवेश इस क्रमसे किया गया है कि कम पढ़े-लिखे ग्रामीण पण्डितों को भी बड़ी सरलता से सब विषयों का क्रमिक ज्ञान भली भाँति हो जाय जैसे :—

१. **भूपरिग्रहप्रकरण में**—ग्रामवासविचार, ग्रामदिग्वासविचार, दिग्दशा (विंशोत्तरीया, तथा अष्टोत्तरीया), ब्राह्मणादिवर्णों के लिए प्रशस्ता भूमि, भूप्लवविचार, भूशोधम आदि ।

२. **दिक्शोधनप्रकरण में**—कई तरह से दिशाओं के जानने के प्रकार ।

३. **शल्योद्धारप्रकरण में**—शङ्कुन्यास, सूत्रपात, शल्यज्ञान प्रकार, अहिवलचक्र आदि ।

४. **मेलापकप्रकरण में**—गृहनक्षत्रकल्पना, गृहगृहेश के नक्षत्रों का मेलापक ।

५. **आयाद्यानयनप्रकरण में**—इष्टाय और इष्ट नक्षत्र पर से पिण्डसाधन के प्रकार, दैर्घ्य-विस्तार, मानका ज्ञान, आय, वार, अंशादि का साधन, ध्रुवादि गृहों के नाम तथा उनके जानने का प्रस्तारक्रम, आँगन विचार आदि ।

६. **गृहोपकरणप्रकरण में**—भित्तिका विचार, गृहोच्चमान, गृहमें प्रशस्तकाष्ठ और करी इत्यादि की संख्या, गृहाच्छादन भेद, गृह से पूर्वादिक दिशाओं में जलाशय, वृक्षादि रहने का फल और उनके दूरी का नियम, ग्राह्याऽग्राह्यकाष्ठ, प्रवाह (प्रनाला) विचार, गृहमें महाभारतादि युद्ध के चित्र का निषेध आदि ।

७. **इष्टिकाप्रकरण में**—ब्राह्मणादिवर्णों के लिए ईंटों का प्रमाण और उनके बनाने आदि के मुहूर्त प्रभृति ।

८ **द्वारप्रकरण में**—आय, नक्षत्र, मास, तिथि, राशि, जाति आदि के वश पूर्वादिक दिशाओं में द्वार के शुभाशुभ का विचार, कपाटविचार और उनके मुहूर्त आदि ।

९. **गेहारम्भप्रकरण में**—गेहारम्भ में अयन, मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्रादिकों का विचार और लग्नशुद्धि आदि के शुभाशुभत्व का विचार ।

१०. **गृहप्रवेशप्रकरण में**—गृहप्रवेश का मुहूर्त, प्रवेश की विधि आदि का निरूपण ।

११. **परिशिष्टप्रकरण में**—राजा, माण्डलिक, सामन्त इत्यादिकों के मकानों का भेदोपभेद और प्रमाण, वास्तुपूजनविधि, गजगृह, अश्वगृह, चरणि आदि के निर्माण का प्रमाण ।

१२. **जलाशयप्रकरण में**—तालाब, वापी, कूपादि के भेद और उनके मुहूर्तादि का विचार ।

इस संग्रह में जिस ग्रन्थ से जो वचन लिये गये हैं शीर्षक के आगे उस ग्रन्थ का नाम, अध्याय या प्रकरण और श्लोकों की संख्या यथाशक्य लिख दी गई है। जहाँ कहीं किसी विषय पर ग्रन्थकारों से मतभेद दिखाई पड़ा है वहाँ हर एक विभिन्नता का दिग्दर्शन करा दिया गया है। स्थल-स्थल पर जहाँ वचनों में द्वैविध्य उपस्थित हुआ है वहाँ यावच्छक्य एकवाक्यता भी कर दी गयी है। जहाँ ऐसा नहीं हो सका है वहाँ जिस पक्ष में अधिक पुष्ट प्रमाण मिले हैं उसी की पुष्टि की गयी है अथवा तर्क

से जो युक्तियुक्त जँचा है उसका उल्लेख कर दिया गया है। अन्यान्य विषय जो लोक में प्रसिद्ध हैं किन्तु शास्त्रों में उनका लेख नहीं उपलब्ध होता, उनकी उपेक्षा कर दी गयी है (यदि कोई उपेक्षित किन्तु आवश्यकीय विषय किसी सज्जन को कहीं से मिल जाय तो प्रामाणिक वचनों के साथ भेज देने की अनुकम्पा करें। अगली आवृत्ति में प्रेषक के नाम सहित वे विषय सन्निविष्ट कर दिये जाँयगे)। जहाँ कहीं किसी विषय पर आधुनिक विद्वान् वास्तविक अर्थ को उलट-पलट कर अपने मन-माने मत का प्रचार करते हैं अथवा विषय को ठीक-ठीक न समझकर अर्थ का अनर्थ करने का साहस करते हैं ऊहापोहपूर्वक उनके मत का निराकरण और शास्त्रसंमत अर्थ का प्रतिपादन एवं जहाँ-जहाँ उनके मतभेद हैं शास्त्रानुसार समीचीन मत का समर्थन कर दिया गया है। साथ ही कतिपय प्रतिष्ठित विद्वानों के मत भी कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार दिये गये हैं। जिनसे किसी व्यक्ति को किसी प्रकार का उस विषय में कभी सन्देह उत्पन्न न हो। सर्वसाधारण को कठिन स्थलों का सुगमतापूर्वक शीघ्र ज्ञान हो जाने के लिए सरल सुबोध प्रासादिक हिन्दी भाषा में टीका भी कर दी गयी है। स्थान-स्थान पर गणित विषयक उदाहरण और उपपत्ति एवं अपेक्षित स्थानों पर आवश्यकतानुसार टिप्पणी भी दी गयी है। अन्त में इष्टाय और इष्टनक्षत्रसम्बन्ध से बनी एक विस्तृत गृहसारणी भी दी गयी है। यद्यपि अन्यान्य पुस्तकों में भी दीर्घ-विस्तार घातरूप पिण्ड पर से आनीत आयवारादिकों की सारणी मिलती है, तो भी उनमें कहीं-कहीं नक्षत्रों का ऐसा विकट वैषम्य पड़ जाता है कि गृह-गृहेश के नक्षत्रों में बहुत परिश्रम करने पर भी घटित (गणना) ठीक नहीं बनता और आय, वार, अंश, द्रव्य, ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग और आयु इन्हीं नवों का सन्निवेश उनमें रहता है। व्यय, दाता आदि उनमें नहीं रहते, जिससे कम पढ़े-लिखे पण्डितों को उनके जानने के निमित्त कठिनता का सामना करना पड़ता है। इन कठिनाइयों को दूर करने के अभिप्राय से इस सारणी में क्रम से साधित पिण्ड, क्षेपक, क्षेपकयुक्त मुख्यपिण्ड, इस मुख्य पिण्ड पर विस्तार और सावयव दैर्घ्य एवं मण्डल, आय, वारादि"'आय-सम्बन्धी द्वार, इन १२ विषयों का सन्निवेश कर दिया गया है।

वास्तुविद्या—ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर किसी प्रकार लेखनी उठाने के लिए भारतीय बड़े-बड़े धुरन्धर ज्यौतिषियों के समक्ष यद्यपि मैं अत्यन्त अक्षम हूँ तथापि जब तक इसकी बराबरी या इससे अच्छा निबन्ध इस विषय पर विद्वानों द्वार नहीं सम्पादित हो जाता तबतक आशा है कि सहृदय महानुभाव मेरी इस धृष्टता पर क्षमाप्रदान करेंगे।

मैंने इस पुस्तक का संग्रह केवल परोपकार की ही दृष्टि से किया है—किसी पर आक्षेप या किसी के पक्षपात करने की दृष्टि से नहीं, अत एव यदि इस संग्रह से सज्जनसंघ का कुछ भी उपकार होगा तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा और आगे भी इसप्रकार की सेवा करने में प्रयत्नशील रहूँगा।

एक अत्यावश्यक बात मुझे यह कहनी है कि इस संग्रह में जो कुछ भी सार है वह हमारे प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य ज्यौतिषाचार्य पं० श्री ६ रिसालदत्तजी मिश्र, अध्यापक रणवीरसंस्कृत पाठशाला (हिन्दूकालेज) काशी—के समय-समय पर

दिये गये रत्नभूत सदुपदेशों का ही फल है। यद्यपि वे पवित्र चरित्र अब इस संसार में नहीं हैं और उन उपदेशरत्नों के गूथने (पुस्तकाकार बनाने) का सङ्कल्प भी उनके परलोक यात्रा के बाद ही हुआ है तो भी यह उन्हीं के चरणों की असीमानुकम्पा का परिणाम है। क्योंकि मुझ ऐसे अल्पज्ञ में ऐसी शक्ति कहाँ कि ऐसे गम्भीराशय विषय पर अल्पशक्ति वाली लेखनी उठा सके।

अन्त में सज्जन समाज से 'मेरी श्रद्धाञ्जलि प्रार्थना है कि इसमें मैंने जो कुछ विवेचन किया है उसे पक्षपात-विहीन दृष्टि से अवलोकन करें और जो मेरे मन्द बुद्धि के कारण त्रुटियाँ रह गई हों उन्हें सुधारकर अनुगृहीत करें।

गुणहिं लखैं केवल सुहृद्, लखैं छिद्र रिपुलोग।
ताते जे मध्यस्थ नर, तेई जाँचन योग॥
तदपि सानुनय सबन को, नवौं बहोरि बहोरि।
कृपा मोहिं पर राखि हैं, अपनी ओर निहोरि॥

श्रीगुरवः शरणम्।

श्रीरमादामोदरसंस्कृतपाठशाला,
अजमतगढ़ स्टेट; (जि० आजमगढ़)
वि० सं० १९९२ विजया १०

सज्जनों का सच्चा सेवक—
विन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदी

विषयसूची

विषय	पृष्ठ सं०
भूपरिग्रहप्रकरण १	
मङ्गलाचरणादि	१
गृहस्थाश्रमप्रशंसा	"
उत्तमगृहस्थ	२
गृहनिर्माणावश्यकता और परगृह-वासदोष	२
गृहनिर्माण महत्त्व	"
जीर्णोद्धारप्रशंसा	"
गृहारम्भ से पूर्व विचारणीय विषय	"
ग्रामवास विचार	३
(१) नामवश से	"
(२) ग्रामवासनराकृतिचक्र	"
(३) अन्यप्रकार से	"
(४) नामराशि से	"
विशेष वास्तुप्रदीपोक्त	"
(५) काकिणी विचार	"
(६) पीयूषधारोक्त	५
(७) विशेष	"
(८) शिवाबलिविधि	६
दिशाविचार	७
(१) राशिवर्गसम्बन्ध से	"
(२) दिग्दशा (विंशोत्तरी)	"
(३) दिग्दशा अष्टोत्तरी	८
दशा विचारने का स्थान	९
ब्राह्मणादिकों को ग्रामदिग्वास का नियम	"
ब्राह्मणादिकों को प्रशस्त भूमि	"
भूमिप्लवफल	१०
भूमि का गजपृष्ठादिलक्षण	"
अन्य प्रशस्तभूमि	११
निषिद्ध भूमि	१२
भूमि का जीवितादिलक्षण	"

विषय	पृष्ठ सं०
प्रश्न से जीवितादिलक्षण	१२
अन्यप्रकार से	"
भूपरीक्षा	१३
द्वितीयप्रकार से	"
वास्तुराजवल्लभोक्त	१४
ज्योतिर्निबन्धोक्त	"
बृहत्संहितोक्त	"
भूमिशुद्धि	१५
काष्ठेष्टिकादि प्राप्ति का फल	१६
दिक्शोधनप्रकरण २	
दिक्शोधनावश्यकता	१७
दिक्साधनप्रकार	"
नक्षत्रवेध से दिक्साधन	१८
वास्तुराजवल्लभोक्त	१९
चुम्बकयन्त्रवश से	२०
शल्योद्धारप्रकरण ३	
स्थलनिश्चयप्रकारः	२०
सूत्रन्यास	२१
शङ्कुन्यास	२२
शल्यज्ञानविधि	"
द्वितीयप्रकार से	२३
वास्तुराजवल्लभोक्त	२४
ग्रन्थान्तर से	२५
अहिबलचक्र	२६
चक्रस्थापनक्रम	"
तात्कालिकचन्द्रसाधन	२७
तात्कालिकसूर्यसाधन	२९
शल्यद्रव्यादिज्ञान	३०
द्रव्यलाभालाभज्ञान	"
न्यूनाधिकद्रव्यज्ञान	"
सुवर्णादि का ज्ञान	३१

सुवर्णादिभाण्डज्ञान ३१
द्रव्यस्थानज्ञान ”
द्रव्यसंख्याज्ञान ३२
द्रव्याधिष्ठायकज्ञान ”
द्रव्याधिष्ठायकपूजन ”

मेलापकप्रकरण ४

मेलापकप्रकार ३३
गृहनक्षत्रकल्पना ”
गृहराशिकल्पना ३४
नवांशवश से ”
आठकूट ”
वर्ण ”
वश्य ”
राशियों की द्विपदादि संज्ञा (टिप्पणी में) ”
तारा ३५
योनिविचार ”
ग्रहमैत्री ”
ग्रहमैत्रीफल ”
गणमैत्री ३७
नक्षत्रमैत्री ”
भकूट ३८
नाडीविचार ”
गणापवाद ”

पिण्डाद्यानयनप्रकरण ५

पिंण्डज्ञान ३९
उदाहरण ”
उपपत्ति ”
विशेष ४१
दैर्घ्यविस्तृतिकल्पना ”
द्वितीय प्रकार से पिण्डानयन ४२
१६ प्रकार के गृह ”
उनके लक्षण और फल ”
हस्तविचार ४३
विशेष ४४
आयादिकों की उपयोगिता ”
आयादि का ज्ञान ”
उदाहरण ४५
आयनाम और फल ”
आयों का स्वरूप ”
ब्राह्मणादिकों को विहिताय ४६
राशिवश से ग्राह्याय ४७
वार फल ”
अंश अंशेश ”
द्रव्य ”
नक्षत्र ४८
तिथ्यानयन ”
प्रकारान्तर से ”
तिथिवारलग्नानयन ”
प्रकारान्तर से ”
योगानयन-फल ४९
गृहायु ”
आयु पूर्ण होने पर दोष द्वारा गृह-विनाश ५०
प्रकारान्तर से ”
व्ययानयन ”
अंशानयन ५१
अंशों का फल ”
विशेष ”
ध्रुवादिनाम ५२
प्रकारान्तर से ”
प्रस्तारक्रम ”
प्रकारान्तर से ५३
ध्रुवादिकों का प्रपञ्च ५३
चक्र-फल ५४
गृहच्छाया ५५
गृहेश ”
गृहभूमिप्रमाण ५६
मण्डलानयन ”
प्रकारान्तर से ५७
मण्डलेश ”
आँगन विचार ५८
अन्यप्रकार से ”
आँगन शुभाशुभत्व ”
शुभाशुभत्वफलविशेष ”

पिण्डविचार की अवधि ५९
तृणादि गृह में आयादि का विचार ,,

गृहोपकरणप्रकरण ६

पाषाणादि भेद से गृहभित्तिस्थापन विचार ६०
भित्तिस्थापनविधि ,,
भित्तिमान ६१
विशेष ,,
आमपक्वमेष्टिकयोगनिषेध ,,
आवश्यक में योगक्रम ,,
गृहौच्यनाम ६२
गृहौच्यके ११ भेद ,,
गृहौच्यभेद ६३
गृहवर्धननिषेध ,,
गृहवर्धन उपाय ६४
नूतनगृह में जीर्णकाष्ठादिनिषेध ,,
गृह में करीसंख्या का फल ६४
गृहच्छादनभेद ६५
सीढ़ी की विधि ,,
उपकरणगृह ६६
विशेष ,,
पाकगृहप्रमाण ,,
उपकरणगृह में भी आयादि का विचार ६७
दीपस्थान ,,
पिण्ड से चारों ओर शुभाशुभवृक्ष ,,
बृहत्संहितोक्त ,,
वास्तुप्रदीप में विशेष ६८
अन्यशुभाशुभवृक्ष ,,
वास्तुराजवल्लभोक्त ६९
वृक्षों की दूरी में नियम ,,
मकान में सूर्यकिरणप्रवेश का नियम ,,
पूर्वादिक दिशाओं में जलाशयादि रहने का फल ७०
मकान के करीब सचिवादिका गृह रहने से फल ,,
पुष्करिणी का फल ,,
प्रशस्तकाष्ठ ,,
अशुभवृक्ष ७१
बृहत्संहितोक्त शुभाशुभवृक्ष ७१
मकान में १, २, ३ प्रकारके काष्ठ लगाने का फल ७२
वृक्षच्छेदनमुहूर्त ,,
वृक्षच्छेदनविधि ७३
वृक्षप्रार्थना ,,
वृक्षपतनफल ७४
काष्ठसंस्कार ,,
जलप्रवाहविचार ,,
प्रकारान्तर से ,,
रामायणादियुद्धचित्रनिषेध ,,

इष्टिकाप्रकरण ७

इष्टिका प्रमाण ,,
प्रासाद में विशेष ७६
अन्यविशेष ,,
इष्टिकारम्भमुहूर्त ,,
इष्टिकारम्भचक्र ७७
अग्निदाहचक्र ,,
इष्टिकानिस्सारणचक्र ७७
प्रसङ्गात् शिलाभेदेन मुहूर्त ७८

द्वारप्रकरण ८

(१) गृहेशराशिवश द्वारदिङ्नियम विशेष (वास्तुराजव०) ७८
अन्य विशेष ,,
(२) आयवशाद्द्वार विचार ७९
ज्यो० नि० का विशेष ,,
स्फुटताके लिए चक्र ,,
(३) ब्राह्मणादिकों के लिए द्वारदिशा ८०
(४) ध्रुवादिगृहवश से द्वारदिशा ,,
(५) गेहारम्भमासवशद्वारविचार ,,
विशेष ८०
सौरमासवश द्वारविचार ८१
(६) गेहारम्भतिथिवश से ,,
द्वारभेद (शिख्यादिभेद से) ८१ पद से द्वारभेद ८२
६४ पद से द्वारभेद ८३
इनका फल ८४

उदाहरण	८५
द्वारफलबोधकचक्र	८६
अन्यद्वारभेद	,,
दक्षिणवामविचार	,,
द्वारपालविचार	८७
अन्यप्रकार से	,,
द्वाराधिप	८८
अप्रधानद्वारप्रमाण	,,
द्वारप्रमाण	८९
ब्राह्मणादिवर्णवश द्वारप्रमाण	,,
नृपसेनापति का द्वारप्रमाण	९०
द्वारके १० भेद	,,
द्वाराभाव में गवाक्ष	,,
गवाक्षलक्षण	,,
द्वारसंज्ञा	९१
विशेष	,,
द्वारवेध	९२
द्वारवेधफल	,,
विशेष	,,
द्वारमुख में वेधत्व	,,
अन्यविशेष	९३
मध्यप्रदेश में द्वार करने पर विशेष	,,
कपाट के स्वयं खुलने व बन्द होने पर दोष	,,
द्वारस्थापन मुहूर्त	९४
प्रत्येक तिथि के फल	९५
द्वारस्थापनचक्र	,,
देहलीचक्र	,,
कपाटमुहूर्त	९६

गेहारम्भमुहूर्तप्रकरण ९

समयशुद्धि	९६
निमित्तशकुन	,,
गेहारम्भ में इतिकर्तव्यता	९७
त्याज्यमासादि	,,
दैनिक अस्तविचार	९८
मासशुद्धि (सौरमास)	,,
चान्द्रमासविचार	,,
प्रत्येकमास का फल	९९
मासों के भेद में रामोक्त एकवाक्यता	९९
जीर्णगृह में मासशुद्धि	१००
तृणकाष्ठगृह में मासशुद्धि	,,
पक्षशुद्धि	,,
पञ्चाङ्गशुद्धि (तिथिशुद्धि)	१०१
वारशुद्धि	,,
दिनरात्रिशुद्धि	,,
नक्षत्रशुद्धि	,,
सप्तशलाकावेध	१०२
योगशुद्धि	,,
मुहूर्तशुद्धि	१०३
वृषवास्तुचक्र	,,
वास्तुपुरुषस्थिति	,,
कूर्मचक्र	१०४
भूमिसुप्तविचार	,,
परिहार	,,
पञ्चाङ्गशुद्धि सहित लग्नशुद्धि	१०५
विपञ्चके पर विचार	,,
शिवियोग	१०६
लग्नशुद्धि	१०७
तन्वादिभावों में स्थित प्रत्येक ग्रहों का फल	१०८
फलबोधकचक्र	११०
अन्ययोग	१११
जीर्णोद्धारविधि	,,
सूतिकागृहनिर्माणमुहूर्त	,,
सूतिकागारप्रवेशमुहूर्त	११२
सूतिकागारप्रवेशनक्षत्र	११३
२१ महादोषों का निषेध	,,
२१ महादोषों के नाम	११४

गृहप्रवेशप्रकरण १०

त्रिविधप्रवेशलक्षण	११४
कालशुद्धि	,,
प्रत्येकमासफल	११५
प्रवेश में सौरमास का निषेध	,,
प्रवेशमुहूर्त	११६
सपूर्व और तृणागार प्रवेश में याम्यायन का विहितत्व	,,

गुरु शुक्र का अस्तादि दोषविचार	११६
कर्ता की जन्मराशि और लग्न के १२ भावों में पड़ने का फल	११७
लग्नशुद्धि	११७
वामरवि	११८
कुम्भचक्र	"
प्रवेश में राहुविचार	११९
आहुतिविचार	"
अग्निवासविचार	"
अग्निवास में पत्त्विचार	१२०
कपाटाच्छन्नगृह में प्रवेशविचार	"
प्रवेशविधि	"
परिशिष्टप्रकरण ११	
राजाओं के गृह का प्रमाण	१२१
सचिवगृहप्रमाण	"
सेनापतिगृहप्रमाण	१२२
युवराजगृहप्रमाण	"
सामन्तादिगृहप्रमाण	"
दैवज्ञपुरोहितवैद्यगृहप्रमाण	१२३
सर्वसाधारण ५ विधगृह बोधकचक्र	१२४
अन्यप्रकार से राजाओं के गृह का प्रमाण	"
महामाण्डलिकलत्तण और उसके गृह का प्रमाण	१२५
माण्डलिकसामन्त लत्तण और गृह का प्रमाण	"
सामन्त और उसका गृहमान	"
चातुराशिक और तद्गृह	"
स्वल्पराष्ट्र और तद्गृह	१२६
मन्त्रिगृहप्रमाण	"
साधारणमनुष्यों का गृहप्रमाण	"
एकादिभूमिकगृहप्रमाण	"
इनके ऊँचाई का प्रमाण	"
राजाओं के उपकरण गृह	"
गजगृह	१२८
गजलत्तण	"
अश्वगृहप्रमाण	१२९
अश्वस्थिति	"
अश्वलत्तण	१२९
चरणिविचार	१३०
अन्यप्रकार से	"
वास्तुपूजनप्रकार	१३१
वास्तुदेवों के पूजन का प्रकार और उनका स्थाननिश्चय	"
ग्रहशान्ति सहित वास्तुशान्ति	१३५
वास्तुशान्ति की अनुक्रमणिका	"
वास्तुपूजनावश्यकत्व	१३६
वास्तुपूजा न करने में दोष	"
जलाशयप्रकरण १२	
जलाशय प्रशंसा	१३७
जलाशयावश्यकता	"
जल का अनेक वर्णत्व	१३८
जल परीत्ता	"
शिलानिरूपण	१३९
शिलाविदारण प्रयोग	"
दिशाओं में कूप का फल	१४०
कूप परिमाण	"
कूपचक्र रोहिण्यर्त्त से	१४१
" सूर्यर्त्त से	१४२
" भौमर्त्त से	१४३
" राहु नत्तत्र से	"
चारों चक्रों का प्रयोजन	"
वापीभेद	१४४
सरलत्तण	"
कुण्डलत्तण	"
" प्रमाण	"
तडाग चक्र	१४५
कूपाद्यारम्भ का मुहूर्त	१४६
जीर्णोद्धार मुहूर्त	"
जलशोषक ओषधियाँ	१४७
सारणी के विषय में कुछ जानने योग्य आवश्यक बातें	१४९
सारणी	१–५५
गृहसारणी	५६
संग्रहीता का परिचय	५७–५८

प्रमाणग्रन्थ

जिन-जिन ग्रन्थों की छान-बीन से इस 'वास्तुरत्नाकर' का कलेवर बना है
उन-उन ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के नाम :—

ग्रन्थ	ग्रन्थकार
१ शुल्वसूत्र	महर्षिकात्यायनमुनि
२ बृहत्संहिता	वाराहमिहिराचार्य
(बृहत्संहिताविवृति)	भट्टोत्पल
३ लघुजातक	वराहमिहिराचार्य
४ विश्वकर्मप्रकाश	विश्वकर्मा
५ सिद्धान्तशिरोमणि	भास्कराचार्य
६ सिद्धान्ततत्त्वविवेक	कमलाकरभट्ट
७ ज्योतिर्विदाभरण	कालीदास
८ ज्योतिर्निबन्ध	श्रीशूरमहाठ
९ राजमार्तण्ड	भोजराज
१० नरपति जयचर्या	
११ वास्तुराजवल्लभ	मण्डनसूत्रधार
१२ रत्नमाला	श्रीपतिभट्ट
१३ मुहूर्त्तमार्त्तण्ड	नारायणभट्ट
१४ मुहूर्त्तगणपति	गणपतिदैवज्ञ
१५ मुहूर्त्तचिन्तामणि	रामदैवज्ञ
(पीयूषधारा)	गोविन्द दैवज्ञ
१६ वास्तुप्रदीप	वासुदेव दैवज्ञ
१७ बृहद्दैवज्ञरञ्जन	श्री १०८ काशीराजाश्रित पं० गयादत्त शर्मा
१८ परिशिष्टदीपक	म० म० पं० नित्यानन्द पन्त पर्वतीय
१९ दिङ्मीमांसा	म० म० श्रीसुधाकर द्विवेदी
२० पिण्डप्रभाकर	
२१ फलितनवरत्नसंग्रह	प्रकृतसंग्रहकर्त्ता
२२ जन्मपत्रदीपक	"
२३ रेखागणित	"
२४ वास्तुरत्नावली	पं० जीवनाथ मिश्र
२५ वास्तुविद्या	



वास्तुरत्नाकरः

सोदाहरण-हिन्दीटीका-सहितः

भूपरिग्रहप्रकरणम् १

श्रीरामं मिथिलाधिराजतनयाजानिं त्रिलोकेश्वरं
भक्ताभीष्टफलप्रदं सकरुणं नीलोत्पलाङ्गद्युतिम् ।
श्रीविघ्नाधिपभारतीकमलभूशम्भ्वादिभिः सेवितं
वन्दे सिद्धिसमूहसाधनपरं विघ्नौघविध्वंसनम् ॥ १ ॥

ऋद्धि सिद्धि निरखत रहत, जासु कृपा दृग कोर ।
करहु सतत अभिलाष मम, पूरन गौरि किसोर ॥

इस मङ्गल का अर्थ स्पष्ट है ॥ १ ॥

निगूढमन्तेसुनिवासिनां मनोमोहान्धकारं खलु यन्निरस्य ।
वितन्यते तद्धृदये प्रकाशं तत्पादयुग्मं शिरसा नमामि ॥२॥
वराहलल्लादिमतानुसारं गर्गादिकानां वचनस्य सारम् ।
श्रीवास्तुरत्नाकरनामधेयं प्राचीनपद्यैर्वितनोमि रम्यम् ॥ ३ ॥

इन दोनों का अर्थ सरल है ॥ २-३ ॥

गृहस्थाश्रमप्रशंसा (ज्योतिर्निबन्धे)

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजाः ।
गृहस्थस्य प्रसादेन जीवन्त्येते यथाविधि ॥ ४ ॥
गृहस्थ एव यजति गृहस्थस्तप्यते तपः ।
ददाति च गृहस्थश्च तस्माच्छ्रेयो गृहाश्रमी ॥ ५ ॥

वानप्रस्थ आदि सभी आश्रमी गृहस्थों के ही भरोसे जीते हैं, इसलिये गृहस्थ ही सब आश्रमों में श्रेष्ठ है ॥ ४-५ ॥

उत्तमगृहस्थः (व्यासः)—

दया श्रद्धा क्षमा लज्जा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता ।
गुणा यस्य भवन्त्येते गृहस्थो मुख्य एव सः ॥ ६ ॥

जिसमें दया, श्रद्धा, क्षमा, लज्जा, प्रज्ञा (सदसद्विवेकिनी बुद्धि), त्याग, कृतज्ञता ये गुण विद्यमान हों वही मुख्य गृहस्थ है ॥ ६ ॥

गृहस्थस्य सर्वाः क्रिया गृहमन्तरा न सिद्ध्यन्ति तस्मात्तन्निर्माणावश्यकत्वं परगृहनिवासदूषणञ्च (मात्स्ये)—

गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा न सिद्ध्यन्ति गृहं विना ।
यतस्तस्माद् गृहारम्भप्रवेशसमयौ ब्रुवे ॥ ७ ॥
परगेहे कृताः सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः ।
निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते ॥ ८ ॥

गृहस्थ के सम्पूर्ण श्रौत-स्मार्त कर्म बिना गृह के सिद्ध नहीं होते, इसलिये गृहारम्भ और गृहप्रवेश के समय को कहते हैं। दूसरे के घर में की हुई श्रौत (वैदिक) और स्मार्त (स्मृति-प्रतिपादित) समस्त क्रियायें निष्फल हो जाती हैं; क्योंकि उनका फल मकानमालिक को होता है ॥७–८॥

गृहनिर्माणमहत्त्वम्—

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसङ्गुणम् ।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं भवेत् ॥ ९ ॥

इसका अर्थ स्पष्ट है ॥ ९ ॥

प्रसङ्गाज्जीर्णोद्धारप्रशंसा—

वापीकूपतडागेषु देवतायतनेषु च ।
जीर्णान्युद्धरते यस्तु पुण्यमष्टगुणं भवेत् ॥ १० ॥

वापी, कूप, तालाब, देव-मन्दिर, मकान इत्यादि का जो व्यक्ति जीर्णोद्धार करता है उसको (नया बनवाने की अपेक्षा) आठ गुना फल मिलता है ॥

गेहारम्भात्प्राग्विचारणीया विषयाः—

ग्रामादेरनुकूलत्वं दिशो भूतग्रहस्य च ।
गृहधिष्ण्यादिकं शुद्धं वीक्ष्यायव्ययमंशकान् ॥
सुगेहं रचयेद्धीमान् वास्तुशास्त्रानुसारतः ॥ ११ ॥

पहले ग्राम की अनुकूलता फिर दिशा की अनुकूलता उसके बाद भूमि की अनुकूलता का और तत्पश्चात् पिण्ड, आय, वार, नक्षत्रादि का शास्त्रानुसार विचार करके मकान बनावे ॥ ११ ॥

वास्तुराजवल्लभे च (११।१४)—

आदौ भूमिपरीक्षणं शुभदिने पश्चाच्च वास्त्वर्चनं
भूमेः शोधनकं ततोऽपि विधिवत्पाषाणतोयान्तकम् ।
पश्चाद्वेश्मसुरालयादिरचनार्थं पादसंस्थापनं
कार्यं लग्नशशाङ्कशाकुनबलैः श्रेष्ठे दिने धीमता ॥ १२ ॥

पहले शुभदिन में भूमि की परीक्षा करके बाद वास्तुपूजनपूर्वक तह पर्यन्त या पानी पर्यन्त भूमि का शोधन करके उसके बाद लग्न, चन्द्रमा, शकुन का बल देख शुभमुहूर्त में पादसंस्थापन (गेहारम्भ) बुद्धिमानों को करना चाहिये ॥ १२ ॥

क्रमप्राप्तो ग्रामवासविचारस्तत्रादौ (१)नामवशान्मुहूर्तरत्नाकरे—

ग्रामनामाक्षरं ग्राह्यं चतुर्भिर्गुणयेत्ततः ।
नरनामाक्षरं योज्यं सप्तभिर्भागमाहरेत् ॥ १३ ॥
१ पुत्रलाभो२ धनप्राप्तिः ३ व्यय ४ आयुः क्रमेण च ।
५ शत्रुनाशं ६ राज्यलाभं निश्शेषे मरणं ध्रुवम् ॥ १४ ॥

ग्राम के नामाक्षर संख्या को ४ से गुणा करके मनुष्य के नामाक्षर संख्या को जोड़ के ७ का भाग देना १ शेष बचे तो पुत्रलाभ, २ शेष बचे तो धनप्राप्ति, ३ शेष बचे तो व्यय, ४ शेष बचे तो आयु, ५ शेष बचे तो शत्रु का क्षय, ६ शेष बचे तो राज्यलाभ और ७ शेष बचे तो मरण होता है ॥

उदाहरण—ब्रह्मपुर में विश्वनाथ प्रसाद को निवास करना है तो ग्रामके अक्षर ४ को ४ से गुणा करके नामाक्षर संख्या ७ जोड़कर ४×४+७=२३, सात का भाग दिया तो २ शेष बचा इसलिये उक्तग्राम में निवास करने से विश्वनाथ प्रसाद को सर्वदा लाभ होता रहेगा ॥ १३–१४ ॥

(२) ग्रामवासनराकृतिचक्रम् (वास्तुरत्नावल्याम्)—

मस्तके पञ्च लाभाय मुखे त्रीणि धनक्षयः ।
कुक्षौ पञ्च धनं धान्यं पादे षट् स्त्रीदरिद्रता ॥ १५ ॥
पृष्ठे चैकं पादहानिर्नाभौ चत्वारि सम्पदः ।
गुह्ये चैकं भयं पीडा हस्ते चैकं तु क्रन्दनम् ॥ १६ ॥
एकं वामे करे भेदो ग्रामचक्रं नराकृतौ ।
गणयेन्नामनक्षत्रं ग्रामनक्षत्रतः खलु ॥ १७ ॥

इन श्लोकों का अर्थ आगे के चक्रसे अतिस्पष्ट है ॥ १५–१७ ॥

मस्तक	मुख	कुक्षि	पाद	पृष्ठ	नाभि	गुह्य	दक्षकर	वामकर	स्थान
५	३	५	६	१	४	१	१	१	२७ नक्षत्र
लाभ	धनक्षय	धनधा.	स्त्रीहा.	पादहा.	संपत्ति	भय	क्रन्दन	भय	फल

(३) अन्यच्च (बृहद्दैवज्ञरञ्जने)—

ग्रामो यत्र भवेदृक्षं तदाद्या सप्त मस्तके ।
पृष्ठे च हृदये सप्त पादे च सप्त तारकाः ॥ १८ ॥
मस्तके च धनी मानी पृष्ठे हानिश्च निर्धनम् ।
हृदये सुखसम्पत्ती पादे पर्यटनं फलम् ॥ १९ ॥

इन दोनों का अर्थ अति सरल है ॥ १८–१९ ॥

(४) नामराशेर्ग्रामस्य शुभाशुभत्वं (मु० गणपतौ १८।१–२)—

स्वनामराशितो ग्रामराशिर्द्व्यङ्केषुदिक्शिवैः ।
सम्मितश्चेत्तदा तस्य तद्ग्रामे वास उत्तमः ॥ २० ॥
रोगोऽष्टद्वादशे तुर्ये वैरमाद्ये च सप्तमे ।
हानिः षष्ठे तृतीये च ग्रामराशौ स्वनामभात् ॥ २१ ॥

व्यावहारिक नाम से २, ५, ९, १०, ११ वीं ग्राम की राशि हो तो उस ग्राम में वास करना उत्तम होता है। ४, ८, १२ वीं राशि ग्राम की हो तो रोग, १, ७ वीं राशि ग्राम की हो तो वैरित्व एवं ३, ६, वीं राशि ग्राम की हो तो हानि होती है ॥ २०–२१ ॥

(क) वास्तुप्रदीपे विशेषः (३३)—

यद्ग्रामभं द्व्यङ्कसुतेशकाष्ठामितं भवेल्लाभगतः शुभः सः ।
यद्भं शशाङ्काग्निनगाब्धितुल्यं मध्योऽष्टषट्कार्कमितं निषिद्धः ॥२२॥

निवासकर्ता की नामराशि से २, ५, ९, १०, ११ वीं ग्रामकी राशि हो तो उत्तम, १, ३, ४, ७ वीं राशि हो तो सम, एवं ६, ८, १२ वीं राशि हो तो निषिद्ध होती है ॥ २२ ॥

(५) ग्रामवासे काकिणीविचारः (ज्योतिर्नि०)—

स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत् ।
अष्टभिश्च हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत् ॥ २३ ॥

अपने २ वर्गसंख्या को दूना करके दूसरे की वर्गसंख्या को जोड़ देना

फिर ८ का भाग देने से जिसका शेष अधिक हो वह ऋणी (दूसरे को लाभ पहुँचाने वाला) होता है ।

उदाहरण—

बनावर में विश्वनाथप्रसाद के नाम से काकिणी को देखना है तो बनावर की वर्ग संख्या ६ को दूना करके वि० प्र० की वर्गसंख्या ७ जोड़ दिया तो ६ × २ + ७ = १९ हुआ इसमें ८ का भाग देने से ३ शेष बचे। एवं वि० प्र० की वर्गसंख्या ७ को दूना करके बनावर की संख्या ६ जोड़ दिया तो ७ × २ + ६ = २० हुआ इसमें ८ का भाग दिया तो ४ शेष बचे। इसलिये बनावर में विश्वनाथप्रसाद के रहने से विश्वनाथप्रसाद द्वारा ही बनावर को लाभ होगा। बनावर से विश्वनाथ-प्रसाद को लाभ नहीं होगा। इसी भांति मित्रों और सेव्य-सेवकों में भी वर्ग-काकिणी देखनी चाहिये ॥ २३ ॥

(६) पीयूषधारायाम् (वशिष्ठनारदकश्यपाः)—

अकारादिषु वर्गेषु दिक्षु पूर्वादितः क्रमात् ।
गृध्रमार्जारसिंहश्वसर्पाखुमृगशाशकाः ॥ २४ ॥
दिग्वर्गाणामियं योनिः स्ववर्गात्पञ्चमो रिपुः ।
रिपुवर्गं परित्यज्य शेषवर्गाः शुभप्रदाः ॥ २५ ॥

अ, क, च, ट, त, प, य और श ये आठो वर्ग पूर्वादिक आठो दिशाओं और कोणों के होते हैं । और क्रम से इन वर्गों के गरुड, मार्जार, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, मृग और शशक ये आठ स्वामी होते हैं । इन में अपने वर्ग से ५ वां वर्ग शत्रु होता है । शत्रुवर्ग को छोड़ कर शेष वर्ग अच्छे होते हैं ॥२४-२५॥

साध्यवर्गं पुरः स्थाप्यं पृष्ठतः साधकं न्यसेत् ।
विभजेदष्टभिः शेषं साधकस्य धनं भवेत् ॥ २६ ॥
व्यत्ययेनागतं शेषं साधकस्य ऋणं भवेत् ।
धनाधिकं स्वल्पमृणं सर्वसम्पत्प्रदं नृणाम् ॥ २७ ॥

साध्य (ग्रामादि) की वर्गसंख्या को पहले रख कर उसके बाद साधक (बसने वाले) की वर्गसंख्या को रखने से जो संख्या हो उनमें ८ का भाग देनेपर शेष साधक का धनसंज्ञक होता है । एवं साधकवर्गसंख्या को पहले रख के साध्यवर्गसंख्या का उसके पीछे रखने से जो संख्या हो उसमें ८ का भाग देने से शेष साधक का ऋणसंज्ञक होता है । धनशेष की अपेक्षा ऋणशेष कम हो तो बसने वाले पुरुष का नाना प्रकार की सम्पत्ति का लाभ होता है ।

उदाहरण—

यहां (पूर्वोक्त उदाहरण में) साध्यवर्ग संख्या ६ के बाद साधकवर्गसंख्या ७ को रखके ६७ हुआ, उसमें आठ का भाग दिया तो ३ शेष बचा। यह साधक का

धनसंज्ञक हुआ। साधकवर्ग संख्या ७ को पहले रखके उसके बाद साध्यवर्गसंख्या ६ रखा तो ७६ हुआ, इस ७६ में ८ का भाग दिया तो ४ शेष साधक का ऋण-संज्ञक हुआ। यहां धनसंज्ञक की अपेक्षा ऋणसंज्ञक अधिक है इसलिये ग्राम से वासकर्ता को कभी लाभ नहीं होगा ॥ २६-२७ ॥

सप्तवर्गात्मकोऽन्यो विशेषः (वास्तुप्रदीपे ३३-३५)—

मैत्रेऽथ राशिद्वयनाथयोश्च ह्येकाधिपत्ये शुभदश्च मध्यः ।
ग्रामः समैश्चैव निषिद्धसञ्ज्ञः पत्योर्द्विषद्भावतया निषिद्धः ॥२८॥
वर्गेश्वराः सूर्यशशांकभौमशुक्रज्ञवाचस्पतिसूर्यपुत्राः ।
अवर्गसंज्ञः प्रथमः प्रदिष्टो मात्राभिराभिः स तु षोडशाख्यः ॥२९॥
वर्णाष्टकं यादि यवर्गमानं प्रत्येक-पञ्चप्रमिताश्च काद्याः ।
एवं भवेत्स्वं स्वकवर्गवर्णसंख्यांकयोगो द्वयनामजातः ॥
इत्येष भेदो नगवर्गकस्य यत्प्रोच्यते चाष्टकवर्गजातम् ॥३०॥

ग्राम और वासकर्ता दोनों के राशिस्वामियों में मित्रता अथवा एकाधिपत्य हो तो वास करना उत्तम, समता हो तो सामान्य एवं शत्रुता हो तो वास करना हानिकर होता है। अकारादि वर्गों के क्रमसे सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, शुक्र, बुध, गुरु और शनि ये सातों ग्रह स्वामी होते हैं। अकारादि १६ मात्रा का अवर्ग, यकारादि ८ अक्षरों का यवर्ग और शेष क, च, ट, त, प, ये पांचो वर्ग पांचों २ अक्षरों के होते हैं। ग्राम और वासकर्ता की मित्रता देखने के लिये इस ७ वर्ग का विचार करना चाहिये ॥ २८-३० ॥

(८) ग्रामवासार्थं शिवाबलिः—

(निशीथे निर्जने देशे भक्तं मांसादिसंयुतम् ।
भूमौ निधाय विधिवद् दूरं गत्वा विचिन्तयेत् ॥)
ईशाने मरणं प्रोक्तं चोत्तरे कुरु सर्वतः ।
वासे वायव्यकोणे तु भयं किंचित्प्रजायते ॥ ३१ ॥
पश्चिमे वासकरणादानन्दः परिकीर्तितः ।
नैर्ऋत्ये हि शिवा रौति तदा वासं न कारयेत् ॥ ३२ ॥
दक्षिणे रौति कल्याणं वह्निकोणे महद्भयम् ।
पूर्वेऽप्युच्चाटनं ज्ञेयं कलिर्वा रिपुभिः सह ॥ ३३ ॥
अष्टदिक्षु यदा रौति तदा वासं न कारयेत् ।
निःशब्दे सर्वलाभः स्यादिति गर्गादिसम्मतम् ॥ ३४ ॥

आधी रात के समय निर्जनप्रदेश में मांस इत्यादि से युक्त भात को जमीन पर विधिपूर्वक रखके शिवा के शब्द का विचार करे। फल की स्पष्टता के लिये चक्र देखिये ॥ ३१–३४ ॥

दिक्शब्दफलबोधकचक्रम् ।

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	सर्वदिक्	निशब्द
उच्चाटन शत्रुकलह	महद्भय	कल्याण	निषिद्ध	आनन्द	किञ्चिद्भय	शुभ	मरण	अशुभ	शुभ

अथ ग्रामस्य पूर्वादिदिक्षु वासविचारः ।

(१) तत्रादौ राशिवर्गसम्बन्धेन (मु० चि० १२।२)—

गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये
ग्रामस्य पूर्वककुभोऽलिझषाङ्गनाश्च ।
कर्कों धनुस्तुलभमेषघटाश्च तद्वद्-
वर्गाः स्वपञ्चमपरा बलिनः स्युरैन्द्र्याः ॥ ३५ ॥

इसका अर्थ चक्र से स्पष्ट है ॥ ३५ ॥

मध्य	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	दिशा
वृ. सि. मक. मि.	वृश्चिक	मीन	कन्या	कर्क	धनु	तुला	मेष	घट	राशि निषिद्ध
०	अ	क	च	ट	त	प	य	श	वर्ग
०	८	५	६	४	७	१	३	२	स्वराङ्क

(२) दिग्दशा (वास्तुप्रदीपे ३६–४०)

अथाष्टवर्गाः क्रमतोऽष्टबाणतर्काब्धिसप्तेन्दुगुणाश्विनश्च ।
तद्ग्रामदिग्वर्गमिताङ्कयोगे सूर्याद्दशेशा नवभिर्विशेषात् (विभक्तात्) ॥
सूर्येन्दुभौमास्त्वगुजीवमन्दाः सौम्याश्च केतुर्भृगुजः क्रमेण ।
षड्दिङ्नगा धृत्यवनीश्वराङ्कचन्द्रा घनाः सप्त नखास्तदब्दाः ॥३७॥
स्वस्वेषु वर्षप्रमितेषु तेषां दशाफलं तत्र निवासिनां च ।
तदुत्तरादुत्तरतो दशेशफलं प्रकल्प्यं च दशाक्रमेण ॥ ३८ ॥
उद्विग्नचित्तः परिपूर्णवित्तो भयाऽभितप्तो ज्वरपीडिताङ्गः ।
सौख्यान्वितो रोगयुतः सुखाढ्यो दुःखान्वितः सर्वसुखान्वितश्च ॥३९॥

यद्यद्दशा सौम्यफला निरुक्ता तत्तद्दशोक्तं सकलं शुभं स्यात् ।
असत्फलायाः फलमेतदेव दशोक्तरीत्याऽप्यसदन्यथा स्यात् ॥ ४० ॥

अकारादि ७ वर्गों के क्रम से ८, ५, ६, ४, ७, १, ३, २, ये आठ स्वराङ्क होते हैं। ग्राम, दिशा और निवासकर्ता के वर्गों के स्वराङ्कों के योग में ९ का भाग देने पर १ शेष बचे तो सूर्य की दशा ६ वर्ष की, २ शेष बचे तो चन्द्रमा की दशा १० वर्ष की, ३ शेष बचे तो भौम की दशा ७ वर्ष की, ४ शेष बचे तो राहु की दशा १८ वर्ष की, ५ शेष बचे तो गुरु की दशा १६ वर्ष की, ६ शेष बचे तो शनि की दशा १९ वर्ष की, ७ शेष बचे तो बुध की दशा १७ वर्ष की, ८ शेष बचे तो केतु दशा ७ वर्ष की और ९ शेष बचे तो शुक्र की दशा २० वर्ष की होती है। इनमें आई हुई दशा से उत्तरोत्तर क्रम से दशा फल की कल्पना करनी चाहिये। सूर्य की दशा में चित्त की उद्विग्नता, चन्द्रदशा में धन की पूर्णता, भौमदशा में भय से व्याकुलता, राहुकी दशा में ज्वर से शरीर में पीडा, गुरु की दशा में नाना तरह के सुख, शनि की दशा में रोग, बुध की दशा में सुख, केतु की दशा में नाना प्रकार के दुःख और शुक्र की दशा में सम्पूर्ण सुख होता है। जिन २ दशाओं का शुभफल कहा है, उनमें दशापर्यन्त शुभफल मिलता है। जिनका अशुभफल लिखा है, उनकी दशा भर अशुभफल मिलता है।

उदाहरण—

बनावर में विश्वनाथ प्रसाद के लिये मध्यग्राम से पूर्व दिशा में मकान बनवाने के लिये दशा देखनी है तो ग्राम का स्वराङ्क १, कर्ता के नाम का स्वराङ्क ३, और दिशा का स्वराङ्क ८ इन सबों के योग = १ + ३ + ८ = १२ में ९ का भाग दिया तो ३ शेष बचे। इसलिये गेहारम्भ से ७ वर्ष तक पहले भौम की दशा रहेगी। उसके बाद १८ वर्ष राहु की दशा, उसके बाद १६ वर्ष तक गुरु की दशा एवं आगे भी समझना ॥ ३९–४० ॥

(क) अष्टोत्तरीया दिग्दशा—

गजशरर्तुयुगाश्वमहीगुणा द्विसहिता मघवादिदिशि क्रमात् ।
गृहपतेरभिधापुरदिङ्मिता वसुहृता भवनस्य दशा भवेत् ॥
रविनिशाकरमङ्गलचन्द्रजाः शनिबृहस्पतिराहुकविग्रहाः ॥ ४१ ॥

उपर्युक्त रीति से ग्राम, स्वामी का नाम और दिशा इन तीनों के स्वराङ्कों को जोड़ के ८ का भाग देने से १, २ इत्यादि शेष बचे तो क्रमसे रवि, चन्द्र, भौम, बुध, शनि, बृहस्पति, राहु और शुक्र इन ग्रहों की अष्टोत्तरी दशा होती है। शुभग्रहों की दशा शुभफल देने वाली और पापग्रहों की दशा अशुभफल देने वाली होती है ॥ ४१ ॥

कुतो दिग्दशा विचारणीया—

ग्रामात्तदा कूपस्वगेहपण्याद्रामात्तडागात्खलु पूर्वतो दशा ।
नियोजनीया स्वगृहस्य देहिनां यदग्रवर्त्ती स्थिरसंयुतश्च ॥ ४२ ॥

ग्राम, कूप, अपना गृह, दुकान, बगीचा, तडाग इनमें जो मकान के आगे और समीप में हो उसीसे दिग्दशा देखनी चाहिये। किसी २ का मत है कि जिस कुँए का पानी पिया जाता हो उससे उसकी दशा देखनी चाहिये ॥४२॥

ब्राह्मणादीनां ग्रामदिग्वासे नियमः (मु० ग० १८।३)—

ग्रामे चतुर्षु कोणेषु वसेयुर्हीनजातयः ।
विप्राद्यास्तु दिशास्वेव मध्ये वाऽपि सुखेप्सवः ॥ ४३ ॥

ग्राम के चारों कोणों में हीन जातियों को और पूर्वादि चारो दिशाओं में या बीच में ब्राह्मणादि चारो वर्णों को निवास करना सुखद होता है ॥४३॥

ब्राह्मणादीनां प्रशस्ता भूमिः (बृहत्संहिता पृष्ठ ५६० गर्गः)—

मधुरा दर्भसंयुक्ता घृतगन्धा च या मही ।
उत्तरप्रवणा ज्ञेया ब्राह्मणानां च सा शुभा ॥ ४४ ॥
रक्तगन्धा कषाया च शरवीरेण संयुता ।
रक्ता प्राक्प्रवणा ज्ञेया क्षत्रियाणां च सा मही ॥ ४५ ॥
दक्षिणप्रवणा भूमिर्याऽम्ला दूर्वाभिरन्विता ।
अन्नगन्धा च वैश्यानां पीतवर्णा प्रशस्यते ॥ ४६ ॥
पश्चिमप्रवणा कृष्णा त्रिकुण्ठा काशसंयुता ।
मद्यगन्धा मही धन्या शूद्राणां कटुका तथा ॥ ४७ ॥

इनका अर्थ चक्र से स्पष्ट है ॥ ४४–४७ ॥

ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	वर्ण
उत्तरप्लव	पूर्वप्लव	दक्षिणप्लव	पश्चिमप्लव	प्लव
मधुर।	कषाय	अम्ल	कटु	रस
घृतगन्धा	रक्तगन्धा	अन्नगन्धा	मद्यगन्धा	गन्ध
दर्भयुक्ता	शरपतयुता	दूर्वयुक्ता	काशयुक्ता	
श्वेतवर्णा	रक्तवर्णा	पीतवर्णा	कृष्णवर्णा	वर्ण

भूमिप्लवे विशेषः (बृहत्संहिता ५२।८६)-

उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव ।

विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्णमथेष्टमन्येषाम् ॥ ४८ ॥

उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम की ओर ढालू भूमि क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लिये शुभफल देनेवाली होती है। ब्राह्मण चारों ओर की ढालू भूमि पर गृह बना सकता है। और शेष वर्णों के लिये अपनी २ दिशा की ओर ढालू पृथिवी पर हीं घर बनवाना शुभदायक है ॥

साधारण्येन पूर्वादिदिक्प्लवफलमुक्तं वास्तुविद्यायाम्—

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी उत्तरा धनधान्यदा ।

अर्थक्षयकरी विद्यात्पश्चिमप्लवना ततः ॥

दक्षिणप्लवना पृथ्वी नराणां मृतिदा भवेत् ॥ ४९ ॥

इसका अर्थ सरल है ॥ ४६ ॥

अष्टदिक्प्लवफलमभिहितं (बृहद्दैवज्ञरञ्जने)—

श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयम् ।

प्रवासं धनलाभं च विद्यालाभं क्रमेण च ॥ ५० ॥

विदध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही ।

मध्यप्लवा मही नेष्टा न शुभा प्लवतः पुरा ॥ ५१ ॥

इन दोनों का अर्थ भी स्फुट है ॥ ५०-५१ ॥

अन्यान्यपि लक्षणानि (ज्योतिर्नि०)—

दक्षिणे पश्चिमे चैव नैर्ऋत्ये वायुकोणके ।

एभिरुच्चा भवेद् भूमिर्गजपृष्ठोऽभिधीयते ॥ ५२ ॥

गजपृष्ठे भवेद्वासः सलक्ष्मीधनपूरितः ।

आयुर्वृद्धिकरी नित्यं जायते नाऽत्र संशयः ॥ ५३ ॥

मध्ये तूच्चं भवेद्यत्र नीचं चैव चतुर्दिशम् ।

कूर्मपृष्ठं विजानीयात्तत्र वासं समाचरेत् ॥ ५४ ॥

कूर्मपृष्ठे भवेद्वासो नित्योत्साहसुखप्रदः ।

[1]धनधान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुलं धनम् ॥ ५५ ॥

पूर्वाग्निशम्भुकोणेषु उन्नतिश्च यदा भवेत् ।

---

१. मध्योच्चं वर्जयेद् वासः पीडा च वधबन्धने ।
पूर्वोत्तरे भवेल्लक्ष्मीरीशाने च शुभं भवेत ॥
पूर्वोत्तरेशानेषु नीचं शुभदमित्यर्थः : पद्यमिदं वास्तुरत्नावल्यामधिकं दृश्यते ।

पश्चिमे च यदा नीचं दैत्यपृष्ठोऽभिधीयते ॥ ५६ ॥
दैत्यपृष्ठे कृते वासे लक्ष्मीर्नायाति मन्दिरम्।
धनपुत्रपशूनां च हानिरेव न संशयः ॥ ५७ ॥
पूर्वपश्चिमयोर्दीर्घा दक्षिणोत्तर उच्चता।
नागपृष्ठं विजानीयात्कर्तुरुच्चाटनं भवेत् ॥ ५८ ॥
नागपृष्ठे यदा वासो मृत्युरेव न संशयः।
पत्नीहानिः पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिः पदे पदे ॥ ५९ ॥

दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य और वायव्य कोण की ओर ऊंची भूमि को गजपृष्ठ कहते हैं। गजपृष्ठ भूमि पर निवास करने से मनुष्य लक्ष्मी (धन) से पूरित रहता है और उसके आयुकी वृद्धि होती है। बीच में ऊंची और चारो ओर नीची भूमि को कूर्मपृष्ठ कहते हैं। कूर्मपृष्ठ भूमि पर वास करने से प्रतिदिन उत्साह की वृद्धि, सौख्य और धनधान्य का विपुल लाभ होता है। पूर्व, अग्नि, ईशान कोण में ऊंची और पश्चिम दिशा में नीची भूमि को दैत्यपृष्ठ कहते हैं। दैत्यपृष्ठ पर बने हुए मकान में लक्ष्मी कभी नहीं आती और धन, पुत्र, पशु इत्यादि की हानि होती है। पूर्व पश्चिम को लम्बी और उत्तर दक्षिण ऊँची (एवं बीच में कुछ नीची) भूमि को नागपृष्ठ कहते हैं। इस भूमि पर बास करने वाले का उच्चाटन, मृत्युभय, स्त्रीपुत्रादि की हानि; पद २ पर शत्रुओं की वृद्धि होती है ॥ ५२-५९ ॥

अन्याः प्रशस्ता भूमयः (बृहत्सं० ५२।८६)

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा
स्निग्धा समा न सुषिरा च मही नराणाम्।
अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां
धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिराणाम् ॥ ६० ॥

जहां उत्तमोत्तम ओषधियाँ, वृक्ष, लतायें, खूब हरी भरी रहें, मिट्टी में समत्व (समथरपना) हो और ऊसर न हो ऐसी भूमि मनुष्यों के निवास के लिये उत्तम होती है, ऐसी भूमि रास्ते की थकावट दूर करने के लिये वहाँ बैठ जाने वाले पथिकों को भी लक्ष्मी प्रदान करती है। निरन्तर निवास करने के लिये मकान बनवाने वालों के लिये तो कहना ही क्या है। अर्थात् ऐसी भूमि पर मकान बनवाने वाले व्यक्ति के पास कभी भी धन-जन इत्यादि किसी वस्तु की कमी नहीं होती है ॥ ६० ॥

---

१. बृ० वा० मालाकार ने तीसरे पद का 'जिस भूमि पर जाने से थके हुए मनुष्यों की थकावट दूर हो जाय' ऐसा अर्थ किया है।

निषिद्धा भूमिः—

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीकाऽऽरोहिणी तथा ।
दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुर्धनापहा ॥ ६१ ॥
स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी ।
सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुवर्धिनी ॥ ६२ ॥

फटी हुई, शल्य (हड्डी) युक्त, दीमक वाली, ऊंची-नीची भूमि को दूर से ही त्याग देना चाहिये । क्योंकि ऐसी भूमि कर्ता की आयु और धन का नाश करनेवाली होती है । फटी हुई भूमि मरण देने वाली, ऊसर भूमि धन का नाश करनेवाली, शल्ययुक्त भूमि सर्वदा क्लेश देने वाली और ऊँची-नीची भूमि शत्रु को बढ़ाने वाली होती है ॥ ६१–६२ ॥

भूमेर्जीवितमृतादिलक्षणम्—

यत्र वृक्षाः प्ररोहन्ति शस्यं हर्षात्प्रवर्धते ।
सा भूमिर्जीविता ज्ञेया मृता वाच्याऽन्यथा बुधैः ॥ ६३ ॥

जिस भूमि पर वृक्ष आदि अति हरे भरे रहा करें और खेती की उपज उत्तमोत्तम हो उस भूमि को जीवित समझना चाहिये । उसके अतिरिक्त भूमि को मृत जानना चाहिये ॥ ६३ ॥

प्रश्नाज्जीवितमृतादिज्ञानम्—

भूम्यक्षरं चतुर्गुण्यं तिथिवारैश्च मिश्रितम् ।
त्रिभिर्भागः प्रदातव्यः शेषेण फलमादिशेत् ॥ ६४ ॥
एकेन जीविता भूमिर्द्विशेषे भूः समा भवेत् ।
त्रिशेषे च मृता भूमिरित्युक्तं चादियामले ॥ ६५ ॥

भूमि के नामाक्षर संख्या को ४ से गुणा करके तिथि और वारकी संख्या को उसमें जोड़ कर ३ का भाग देने से १ शेष बचे तो जीवित, २ शेष बचे तो सम और ३ शेष बचे तो मृता भूमि जाने । मृता भूमि पर मकान बनाना अच्छा नहीं होता है ॥ ६४–६५ ॥

अन्यप्रकारेण—

व्योमविस्तारयोरैक्यं ग्रामाक्षरसमन्वितम् ।
चतुर्गुणं नामयुक्तं शिवनेत्रेण भाजितम् ॥ ६६ ॥
एकेन जीविता भूमिर्द्वाभ्यां च समता भवेत् ।
शून्यशेषे तु शून्यं स्यादित्युक्तं रुद्रयामले ॥ ६७ ॥

भूमि की लम्बाई और चौड़ाई के योग में ग्राम के अक्षर को जोड़ के ४ से गुणा करे उस (गुणनफल) में निवास करने वाले के नाम का अक्षर

जोड़ के ३ का भाग देने से १ शेष बचे तो जीविता, २ शेष बचे तो समता और ३ शेष बचे तो मृता भूमि होती है। मृता भूमि पर निवास करने वाले व्यक्ति के लिये सदा धन, जन, चतुष्पद आदि सांसारिक सुखों की हानि होती रहती है ॥ ६६-६७ ॥

पुनरन्यप्रकारेण—

कर्ता ग्रामो दिशश्चैव स्वरयुक्तं तु कारयेत् ।
वह्निभिस्तु हरेद्भागं शेषाङ्के फलमादिशेत् ॥ ६८ ॥
एके जागर्ति भूमिश्च द्वितीये समता गतिः ।
तृतीये राक्षसी चैव मृत्युरेव न संशयः ॥ ६९ ॥

मकान बनानेवाले के नाम, ग्राम और दिशा के स्वरों के योग में ३ का भाग देने से १ शेप बचे तो भूमि जागती रहती है, २ शेष बचे तो सम फल को देनेवाली और ३ शेष बचे तो वह भूमि राक्षसी होती है। इस पर निवास करने से मृत्यु होती है ॥ ६८-६६ ॥

अथ भूपरीक्षा (वास्तुप्रदीपे १६ श्लो०)—

मध्ये गृहे हस्तमितं खनित्वा सम्पूरयेत्पांशुभिराश्रुतस्य ।
सम्पूरयित्वाऽधिकतामुपेतः पांशुर्यदा तद्गृहमुत्तमं स्यात् ॥
समे समं न्यूनतरे सदोषं न कारयेत्तत्र गृहं कदाचित् ॥७०॥

जिस भूमि पर मकान बनाना हो तो उसके बीचोबीच एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा, १ हाथ गहरा गड्ढा खोदना फिर उसी (निकली हुई) मिट्टी से उस गड्ढे को भर देना चाहिये यदि गड्ढा भरने से मिट्टी बच जाय तो उत्तम, बराबर हो जाय तो सम और मिट्टी कम हो जाय तो निषिद्ध होता है। इस (निषिद्ध भूमि) पर कभी मकान नहीं बनवाना चाहिये ॥ ७० ॥

तथा च (तत्रैव १००-१०१)—

कर्तुश्च हस्तप्रमितं खनित्वा खातं पयोभिः परिपूरितं चेत् ।
वसेत्सुखार्थी परिपूरितं स्याच्छुष्कं भवेत्तत्क्षणमेव नाशः ॥७१॥
स्थिरे जले वै स्थिरता गृहस्य स्याद्दक्षिणावर्तजलेन सौख्यम् ।
प्रियं जलं शोषयतीह खातो मृत्युर्हि वामेन जलेन मृत्युः ॥७२॥

गृहेश के हाथ से १ हाथ लम्बा, १ हाथ चौड़ा और १ हाथ गहरा गड्ढा खोद कर पानी से लबालब भर देवे। फिर देखे कि यदि पानी जैसे का तैसा हो तो उत्तम, उसी क्षण कुल जल सूख जाय तो नाश, जल स्थिर रहे तो स्थिरता, दक्षिणावर्त घूमे तो सुख और वामावर्त घूमे तो मृत्यु होती है ॥ ७१-७२ ॥

वास्तुराजवल्लभे विशेषः (१।८६)—

खातं भूमिपरीक्षणे करमितं तत्पूरयेत्तन्मृदा
हीने हीनफलं समे समफलं लाभो रजोवर्धने ।
तत्कृत्वा जलपूर्णमाशतपदं गत्वा परीक्ष्यं पुनः
पादोनेऽर्धविहीनकेऽथ निभृते मध्याऽधमेष्टाम्बुभिः ॥७३॥

पूर्व प्रकार से १ हाथ का गड्ढा खोद कर उसे जल से भर कर १०० पग तक जाकर लौट आवे। लौटने पर यदि चौथाई से कम जल बाकी रहे तो अनिष्ट, चौथाई से अधिक आधे से कम बचे तो मध्यम और आधे से अधिक बचे तो उत्तम फल होता है। शेष स्पष्ट है ॥ ७३ ॥

ज्योतिर्निबन्धे विशेषः—

तथा निशादौ तत्कृत्वा पानीयेन प्रपूरयेत् ।
प्रातर्दृष्टे जले वृद्धिः समः पङ्के व्रणे क्षयः ॥ ७४ ॥

पूर्वविधि से गढ्ढा खोद कर पानी से सायंकाल में भरपूर भर कर प्रातःकाल देखने पर यदि जल दिखाई पड़े तो वृद्धि, केवल कीचड़ ही बचा रहे तो समता और दरार फट जाय ता नाश होता है ॥ ७४ ॥

विस्तरतयोक्तं (बृहत्संहितायाम् ५२।९०-९३)—

गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम् ।
यद्यूनमनिष्टं तत्समे समं धन्यमधिकं यत् ॥ ७५ ॥
श्वभ्रमथवाम्बुपूर्णं पदशतमित्वा गतस्य यदि नोनम् ।
तद्धन्यं यच्च भवेत्पलानि पांश्वाढकं चतुष्षष्टिः ॥ ७६ ॥
आमे वा मृत्पात्रे श्वभ्रे दीपवर्तिरभ्यधिकम् ।
ज्वलति दिशि यस्य शस्ता सा भूमिस्तस्य वर्णस्य ॥ ७७ ॥
श्वभ्रोषितं न कुसुमं यस्य प्रम्लायतेऽनुवर्णसमम् ।
तत्तस्य भवति शुभदं यस्य च यस्मिन्मनो रमते ॥ ७८ ॥

पिण्ड के बीच की भूमि में पूर्ववत् १ हाथ का गड्ढा खोदकर—

(१) उसी मिट्टी से उसको भर कर पूर्ववत् फल देखना।

(२) अथवा उस गड्हे को पानी से लबालब भर कर वहाँ से १०० परग दूर तक जाके फिर लौट कर पूर्वरीति से फल देखना।

(३) वहाँ की मिट्टी को आढक[1] में भर कर तौले यदि ६४ पल तौल में हो तो शुभ, कम हो तो अशुभ फल जाने।

---

१. एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा (या ऊँचा) इस मान से बने

(४) अथवा उस गड्ढे में कच्ची दीया में ४ बत्ती ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन के लिये कल्पना कर घी के साथ जला देवे, जिस वर्ण की बत्ती देर तक जलती रहे उस वर्ण के लिये वह भूमि उत्तम होती है।

(५) अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों के लिये सफेद लाल, पीला और काले रङ्ग का फूल इकट्ठा कर उस गड्ढे में सायङ्काल के समय रख कर सुबह देखना जिस वर्ण का फूल न कुम्हिलाया हो उस वर्ण के लिये वह जमीन उत्तम फल देनेवाली होती है (इस बात का ध्यान रहे कि कोई फूल जल्दी और कोई देर में कुम्हिलाने वाला न हो)।

(६) अथवा जिस जगह जिसका अन्तःकरण रम जाय वही भूमि उसके लिये उत्तम होती है ॥ ७५-७८ ॥

वराहमिहिरादि आचार्यों ने गृहभूमि के बीचोबीच गड्ढा खोदना लिखा है। किन्तु वास्तुराजवल्लभ (१।१६) की टीका में काशी विश्वविद्यालय के प्रधान ज्यौतिषशास्त्राध्यापक प० प्र० श्रीरामयत्न ओझा जी ने—

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशोर्विलोमतः।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात्पृष्ठविदिक् शुभा भवेत् ॥

इस रामदैवज्ञोक्तविधि से राहु की पृष्ठविदिशा में गड्ढा खोदने का निर्देश करते हुए 'परन्तु अल्पज्ञलोग इस जगह पर वास्तु कराते हैं' ऐसा लिखा है। तथा काशी के प्रसिद्ध पण्डित म० म० श्रीनित्यानन्दपन्त पर्वतीय जी ने अपने परिशिष्ट दीपक में लिखा है कि 'इदमपि (नि० सि०) शिल्पिशास्त्रवचनं भित्त्यर्थं समन्ततः कर्तव्यस्य, भूमिदोषनिवारणार्थं समस्तवास्तुभूमौ कर्तव्यस्य वा खातस्योपक्रमे दिग्विशेषनियामकम्। न तु शिलान्यासाय कर्तव्य……स्योपक्रमे दिग्विशेषनियामकम्। तत्र सर्वदा दिग्विशेषस्य व्यवस्थितत्वेन कालविशेषे दिगन्तरस्य नियमयितुमशक्यत्वात्। इत्थमेव सामञ्जस्ये बाध्यबाधकभावकल्पनाऽनवकाशादिति दिक्' ऐसा लिखा है और निम्नलिखित वचन को उपन्यस्त किया है—

कन्यासिंहे तुलायां भुजगपतिशिरं शम्भुकोणेऽग्निखातं
वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनुमकरे ईशखातं वदन्ति।
कुम्भे मीने च मेषे निऋतिदिशिमुखं खातवायव्यकोणे
अग्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे रक्षखातम् ॥ इति।

अथ भूमिशुद्धिः (मनुः ५।१२४)—

सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च।
गवां च परिवासेन भूमिः शुद्धयति पञ्चभिः ॥ ७९ ॥

सम्मार्जन करना (झाड़ना), (गोमूत्र-गंगोदकादि से) लीपना-पोतना, सींचना, खोदना और गौओं को ठहराना इन ५ प्रकारों से भूमि की शुद्धि[1] करनी चाहिये ॥ ७९ ॥

हुए बर्तन को मागधखारिका कहते हैं। मागधखारिका के चौसठवें हिस्से को आढक कहते हैं। (लीलावती देखिये)

१. मकान में १ पुरुष के नीचे यदि शल्य हो तो दोष नहीं होता क्योंकि शास्त्र का वचन है—

भूपरीक्षणार्थं गेहारम्भार्थं वा खातखननावसरे फालकृष्टावसरे च काष्ठेष्टिकादिप्राप्तौ फलानि—

काष्ठेष्टिकातुषाङ्गारपाषाणाऽस्थिसरीसृपान् ।
हलाग्रेणोद्धृतान्दृष्ट्वा तत्र विद्यादिदं फलम् ॥ ८० ॥
काष्ठेष्वग्निभयं विद्यादिष्टिकासु धनागमः ।
अङ्गारेषु तथा रोगं तुषेष्वेव धनक्षयः ॥ ८१ ॥
पाणाणेष्वपि कल्याणं कुलनाशं तथाऽस्थिषु ।
सरीसृपेषु सर्वेषु तादृग्भ्यो भयमादिशेत् ॥ ८२ ॥

भूमि शुद्ध करने के लिये हल से जोतने के समय काष्ठ, ईंट, भूसी, राख, पत्थर, हड्डी और सर्प इत्यादि यदि भूमि के अन्दर दिखाई पड़ें तो यह (नीचे लिखा) फल जानना चाहिये। काष्ठ मिले तो अग्नि से भय, ईंट मिले तो धन की प्राप्ति, राख या कोयला निकले तो धन का नाश, पत्थर मिले तो कल्याण, हड्डी निकले तो कुल का नाश और जिस प्रकार के जानवर निकलें उनसे भय (अर्थात् साँप निकले तो साँप से भय, बिच्छू निकले तो बिच्छू से भय इत्यादि) होता है ॥ ८०-८२ ॥

तथा च वास्तुप्रदीपे (१०४-१०६)—

खाते यदाश्मा लभते हिरण्यं तथेष्टिकायां च समृद्धिरत्र ।
द्रव्यं च रम्याणि सुखानि धत्ते ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः ॥
पिपीलिकाः षोडशपक्षनिद्रा भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्ता ।
तुषास्थिचीराणि तथैव भश्मान्यण्डानि सर्पा मरणप्रदाः स्युः ॥८४॥
वराटका दुःखकलिप्रदात्री कार्पास एवातिददाति दुःखम् ।
काष्ठं प्रदग्धं त्वभिरोगभीतिर्भवेत्कलिः खर्परदर्शनेन ॥
लौहेन कर्तुर्मरणं निगद्यं विचार्य वास्तु प्रवदन्ति धीराः ॥८५॥

नींव खोदते समय यदि पत्थर मिले तो सुवर्ण की वृद्धि, ईंट मिले तो नाना प्रकार की सम्पत्ति, धन मिले तो नाना तरह के सुख, ताम्र आदि धातु मिलें तो अनेक चाल की वृद्धि, पिपीलिका (चींटी, दीमक आदि) और १६ पक्ष तक सोने वाले (मेढक) मिलें तो सुखपूर्वक निवास की हानि,

---

पुरुषाधःस्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत् ।

इसलिये जिस भूमि पर मकान बनाना हो वहाँ (पिण्डभर) की मिट्टी १ पुरुष तक खोद कर फेंक दी जाय और उस स्थान पर नई शुद्ध मिट्टी भर दीजाय तो उस पर मकान बनाना सर्वोत्तम होता है। इस प्रकार मकान बनाने पर किसी प्रकार की कभी भी भूमिसम्बन्धी बाधा नहीं हो सकती।

भूसी, हड्डी, चिथड़ा, भस्म (राख), अण्डे, सर्प इत्यादि मिलें तो मरण, कौड़ी मिले तो दुःख और झगड़े की प्राप्ति, कपास मिले तो अत्यन्त दुःख, जला हुआ काष्ठ (अर्थात् लकड़ी का कोयला) मिले तो रोग का अधिक भय, खपड़े मिलें तो लड़ाई झगड़े की प्राप्ति और लोहा मिले तो मकान बनवाने वाले की मृत्यु होती है। इसका विचार करके बुद्धिमानों को मकान बनवाना चाहिये ॥ ८३-८५ ॥

इति भूपरिग्रहप्रकरणम् ॥ १ ॥

दिक्शोधनप्रकरणम् २

दिक्शोधनावश्यकत्वम् (ज्योतिर्निबन्धे)—

प्रासादे सदनेऽलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषतः ।
दिङ्मूढे कुलनाशः स्यात्तस्मात्संशोधयेद्दिशः ॥ १ ॥

प्रासाद (राजभवन या देवमन्दिर) गृह, अलिन्द (दरवाजे के बाहर का चौंतरा), द्वार, कुण्ड इनमें दिशा का शोधन (दिशा का ठीक २ ज्ञान) न होने से कुल का नाश होता है। अतः इनके निर्माण के समय दिशा का शोधन करना आवश्यक है ॥ १ ॥

तथा च—

प्रथमे सुसमे क्षेत्रे प्राचीं संसाधयेत्स्फुटम् ।
सिद्धान्तोक्तप्रकारेण ततो निष्पादयेद् गृहम् ॥ २ ॥

पहले सम धरातल (दर्पणोदर धरातल) पर सिद्धान्त ग्रन्थों में लिखी रीति के अनुसार स्पष्ट पूर्वापर का साधन करके उसके बाद उस भूमि पर घर बनवाना चाहिये ॥ २ ॥

दिक्साधनप्रकारः (सि० शि० ३।८-९)—

वृत्तेऽम्भःसुसमीकृते क्षितिगते केन्द्रस्थशङ्कोः[1] क्रमाद्
भाग्रं यत्र विशत्यपैति च यतस्तत्रापरैन्द्र्यौ दिशौ ।
तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णमित्याहता-
ल्लम्बज्याप्तमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता ॥ ३ ॥
तन्मत्स्यादथ याम्यसौम्यककुभौ सौम्याध्रुवे वा भवे-
देकस्मादपि भाग्रतो भुजमितां कोटीमितां शङ्कुतः ।

---

१. शंकुलक्षणं सि० शि० गोले यन्त्राध्याये (९ श्लो०)—
समतलमस्तकपरिधिर्भ्रमसिद्धो दन्तिदन्तजः शङ्कुः ।
तच्छायातः प्रोक्तं ज्ञानं दिग्देशकालानाम् ॥ इति ।

न्यस्येद्यष्टिमृजुं तथा भुवि यथा यष्ट्यग्रयोः संयुतिः
कोटिः प्राच्यपरा भवेदिति कृते बाहुश्च याम्योत्तरा ॥ ४ ॥

(१) जलकी तरह भूमि को एकदम समथर बनाके उस पर एक वृत्त बनाना चाहिये। उस वृत्त के केन्द्र में एक १२ अङ्गुल का शङ्कु रखना। उस शंकु की छाया पूर्वाह्ण में उस वृत्त के परिधि में जहाँ प्रवेश करे वह पश्चिम दिशा और मध्याह्नोत्तर उसी शङ्कु की छाया जहाँ उस वृत्तपरिधि से निकलती हुई स्पर्श करे वह बिन्दु पूर्वा दिशा होगी (इस प्रकार पश्चिम बिन्दु का ठीक २ ज्ञान हो गया परन्तु प्रतिक्षण क्रान्ति की विलक्षण गति लक्षित होने के कारण पूर्व बिन्दु का ठीक ज्ञान नहीं हुआ। अतः) छाया प्रवेश और छाया निर्गम काल की पृथक् २ क्रान्तिज्याओं के अन्तर को छाया कर्ण के मान से गुणा करके लम्बज्या से भाग देने पर जो अंगुलादि लब्ध हो उतना अयन की दिशा की ओर[1] वृत्त में चला दे तो स्पष्ट पूर्व बिन्दु हो जाता है। उस के बाद पूर्व और पर दोनों बिन्दुओं से मत्स्योत्पादन करके याम्योत्तरा (दक्षिण और उत्तर दिशा) का साधन करे।

(२) अथवा सब देशों से ध्रुवतारा ठीक उत्तर[2] की ओर रहती है।

(३) अथवा एक ही समय के छायाग्र पर से उसी इष्टकाल पर भुज और कोटि का साधन सिद्धान्तोक्त प्रकार से करके उन्हीं (भुज, कोटि) दोनों के बराबर शलाका लेकर यथास्थान स्थापन करे तो कोटि पूर्वा परा और भुज दक्षिणोत्तरा दिशा हो जायगी ॥ ३—४ ॥

नक्षत्रवेधवशाद्दिक्साधनम्—

चित्रास्वात्यन्तरे श्रोणादक्षिणापथवासिनाम्।
प्राची तु कृत्तिका ज्ञेया उत्तरापथवासिनाम् ॥ ५ ॥

उज्जयिनी से दक्षिण देशवासियों को चित्रा और स्वाती के अन्तर से पूर्वापर दिशा का ज्ञान करना चाहिये। अर्थात् दृष्टि को स्थिर करके पहले नलिकाद्वारा चित्रा नक्षत्र का वेध करके नलिकाग्र से समथर भूमि पर लम्ब गिराना फिर उसी दृष्टि से स्वाती का वेध करके नलिकाग्र से दूसरा लम्ब जमीन पर गिराना। इन दोनों लम्ब मूलों में सूत्र बाँधना यही पूर्वा परा दिशा हो जायगी। एवं उज्जयिनीसे उत्तर भाग के निवासियोंको कृत्तिका

---

१. यहाँ जो कर्णवृत्ताग्रान्तर के बराबर भुजान्तर मान कर वृत्त में चलाते हैं उससे ठीक पूर्व विन्दुका ज्ञान नहीं होता क्योंकि भुजान्तर पूर्वापर रेखा पर लम्बरूप होता है। इसलिए दोनों छायाग्रों में गई हुई रेखा को व्यासरेखा कल्पना करके वृत्त बनावे, बने हुए वृत्त में दूसरे छायाग्र विन्दु से कर्णवृत्ताग्रान्तर तुल्य पूर्णज्या दान करने से जो बिन्दु हो उससे प्रथम छायाग्र पर्यन्त गई हुई रेखा ठीक पूर्वापर के समानान्तरा रेखा होती है।

२. अयनांश का चलन होने के कारण ध्रुवतारा सर्वदा स्थिर नहीं रहता है।

नक्षत्र के वेध से प्राची दिशा का ज्ञान करना चाहिये अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र का वेध करके नलिका के अग्र और मूल दोनों छोरों से २ लम्ब समथर भूमि पर गिरावे इन दोनों लम्ब मूलों में सूत्र लगा देवे तो वही ठीक पूर्वापरा हो जायगी। इन नक्षत्रों का वेध युगमात्र (छियासी अंगुल) ऊपर नक्षत्रों के आजाने पर करना चाहिये। जैसा कि आगे के श्लोक से स्पष्ट है॥

कात्यायन-शुल्वे (३४ श्लो०)—

कृत्तिका श्रवणं पुष्यं चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्।
एतत्प्राच्या दिशो रूपं [१]युगमात्रोदिते पुरे॥ ६॥

कृत्तिका, पुष्य, श्रवण और चित्रा स्वाती का अन्तर यही प्राची दिशा का रूप है (अर्थात् कृत्तिका वेध की तरह पुष्य और श्रवण का भी वेध करके प्राची (पूर्व) दिशा का ज्ञान करना चाहिये।)[२] शेष का अर्थ पूर्व श्लोक में गतार्थ है। युग मात्र (८६ अंगुल) नक्षत्रों के ऊपर चढ़ आने पर यह वेध करना चाहिये॥ ६॥

वास्तुराजवल्लभे च (१।११)—

तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेऽवलम्बे नते
दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या दिशा।
शङ्कोर्नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छायाद्वयान्मत्स्ययो-
र्जाता यत्र युतिस्तु शङ्कुतलतो याम्योत्तरे स्तः स्फुटे॥ ७॥

सप्तर्षि ताराओ में से पहले के दो ताराओं को मार्कटिका कहते हैं। मार्कटिका और ध्रुव ये तीनों तारायें जब एक सीध में हो जायँ तब दीपशिखा के साथ एक सीध में करने से उत्तरा दिशा का ज्ञान होता है। अर्थात् जब उपर्युक्त तीनों तारायें एक सीध में दीख पड़े तब १ शङ्कु समधरातल पर लम्बरूप स्थापन करे और उसके दक्षिण ओर एक दीपक इस प्रकार से रक्खे कि दीपशिखा, शङ्कु और ध्रुव ये तीनों एक सीध में दिखाई देने लगें तो शङ्कु मूल और दीपशिखा मूल में बँधा हुआ सूत्र दक्षिणोत्तरा दिशा होगी।

अथवा ३२ अङ्गुल (व्यासार्ध से बने हुए वृत्त) के केन्द्र में (१२ अंगुल का) शङ्कु रखने से जहाँ वृत्त से शंकुकी छाया निकले वहाँ पूर्वा

---

१. युगप्रमाणं कात्यायनशुल्वसूत्रे—

अङ्गुलैरथ सम्मितायाः प्रमाणम् १। तत्राष्टाविंशतिशतमीषा २। चतुःशतमक्षः ३। षडशीतिर्युगम् ४। चत्वारोष्टकायाः शम्येति।

२. नक्षत्र वेधसे दिशा साधन के प्रकार सार्वदेशिक नहीं हैं क्योंकि आकाशकी स्थिति विलक्षण होने के कारण भिन्न २ देशों में भिन्न २ नक्षत्रों के वेध से दिशा का ज्ञान होता है।

दिशा और जहाँ छाया प्रविष्ट हो वहाँ पश्चिमा [1]दिशा होती है ॥ ७ ॥

चुम्बकयन्त्रवशाद्वा दिग्ज्ञानम् (सि० त० वि० त्रिप्र० ३७८)—

सच्चुम्बकादेव सुशिल्पविज्ञाः कुर्वन्ति दिग्ज्ञानमितोऽन्यथैव ।
पूर्वापरा याऽत्र कृता प्रकारैर्ज्ञेया बुधैः सा सममण्डलीया ॥ ८ ॥

शिल्पशास्त्र के वेत्ता लोग चुम्बकयन्त्र के द्वारा भी दिशा का ज्ञान करते हैं। पूर्वापर का जो ज्ञान किया गया है वह सममण्डलीय है ॥ ८ ॥

कुण्डसिद्धि, कुण्डदर्पण, कुण्डार्क प्रभृति कुण्डसाधन के बहुत से आधुनिक ग्रन्थों में जो नक्षत्रवेध द्वारा दिक् साधन के प्रकार मिलते हैं उनके सब देशों के लिये उपयोगी न होने पर भी ज्यौतिष सिद्धान्त के मर्म को न जानने के कारण कुण्ड साधन ग्रन्थों के बनाने वाले विद्वानों ने सार्वत्रिक मान लिये हैं। और उन्हीं के अनुसार आजकल के कर्मकाण्डीगण व्यवहार भी करते हैं।

वास्तविक दिग्ज्ञान प्रकार यदि दिन में दिक्साधन अभीष्ट हो तो एक ही दिन द्वादशाङ्गुल शंकु की छाया प्रतिक्षण नाप कर चिह्न करता जाय जिस बिन्दु पर सर्वाल्प छाया उपलब्ध हो वही उत्तरा दिशा और शंकु मूल की ओर दक्षिणा दिशा होती है। एवं यदि रात्रि में दिक् साधन करना हो तो नलिका यन्त्र द्वारा ध्रुवतारा का वेध करके नलिका को स्थिर रख कर उस के मुख और पुच्छ से समथर भूमि पर लम्ब गिरा कर दोनों लम्ब मूलों में एक सूत्र बांध देने पर दक्षिणोत्तरा दिशा हो जाती है।

दक्षिणोत्तरा का ज्ञान हो जाने पर मत्स्योत्पादन द्वारा पूर्वापरा का ज्ञान कर लेना चाहिये ॥

इति दिक्शोधनप्रकरणम् ॥ २ ॥



शल्योद्धारप्रकरणम् ३

एवं भूशुद्धिं दिक्साधनं च विधाय स्थलनिश्चयं कुर्यात्। तद्विधिर्मुहूर्तमार्तण्डे (६।१४)—

द्विघ्नायाममितं द्विपाशमजरत्सूत्रं विधायाऽङ्कयेत्
व्यायामाङ्घ्रिमिते च विस्तृतिदले तत्कर्पकोणाभिधौ ।
पाशौ क्षेत्रविरामशङ्कुनिहतौ कृत्वाऽऽद्यमाकर्षयेत्
कोणे शङ्कुरितीरितो विनिमयाद्रज्ज्वन्तयोश्चापरौ ॥ १ ॥

लम्बाई के दूने के बराबर एक मजबूत सूत बनाकर उसके दोनों प्रान्तों (छोरों) में गाँठ दे देवे (गाँठ ऐसी हो कि दो खूँटियों में फँसाई जा सके)।

---

१. अयनांश की गति स्थिर न होने के कारण प्रथम प्रकार और क्रान्ति की गति स्थिर न होने के कारण दूसरा प्रकार कुछ स्थूल है। किन्तु इस प्रकरण में जितने किञ्चिन्मात्र स्थूल प्रकार लिखे गये हैं वे सब व्यवहार में वास्तविक माने जाते हैं।

फिर एक तरफ से लम्बाई के $\frac{३}{४}$ भाग पर और चौड़ाई के आधे के बराबर भाग पर दो चिह्न बनावे। पहले चिह्न का कर्ष और दूसरे चिह्न का कोण नाम रक्खे। एक दम समथर बनाके दिक्साधन की हुई भूमि पर क्षेत्र (पिण्ड) के बीचो बीच लम्बाई के दोनों प्रान्तों पर दो शंकु (कील या खूँटी) गाड़ के उनमें सूत के दोनों छोरों में दी हुई गाँठ को फँसाकर कर्ष नामक चिह्नको पकड़ कर ताने (खींचे)। ताननेसे जहाँ कोण नामक बिन्दु (चिह्न) पड़े वहाँ एक खूँटी गाड़ देवे। एवं दूसरी ओर भी कर्ष नामक चिह्न को पकड़ कर तानने से जहाँ कोण नामक चिह्न हो वहाँ दूसरी खूँटी गाड़ देवे। फिर सूत के छोरों को बदल के (अर्थात् पहले छोर को दूसरी खूँटी में दूसरे छोर को पहली खूँटी में फँसाकर,) पूर्ववत् दोनों तरफ जाकर कर्ष नामक चिह्न को पकड़ कर ताने और जहाँ २ कोण नामक चिह्न पड़ें वहाँ २ खूँटी गाड़ देवे। इस प्रकार चारों कोण-चिह्नों पर गड़ी हुई खूँटियाँ क्रम से पिण्ड के चारो कोनों पर हो जायँगी और पिण्ड की भूमि ठीक हो जायगी।

उदाहरण—

जैसे २७ हाथ लम्बा २५ हाथ चौड़ा मकान बनवाने के वास्ते स्थल निश्चित करना है तो दूनी लम्बाई २७×२=५४ के बराबर अर्थात् ५४ हाथ का मजबूत सूत लेकर उस के दोनों तरफ मुद्धीदार गांठ दे दिया। फिर एक छोर से $\frac{२७\times३}{४}$ = २०$\frac{१}{४}$ हाथ पर कर्ष नाम का और वहीं से $\frac{२५}{२}$ = १२$\frac{१}{२}$ हाथ पर कोण नाम का चिह्न बना दिया उस के बाद पूर्व पश्चिम से पिण्ड के बीचो बीच लंबाई के दोनों प्रान्त (२७ हाथ की दूरी) पर दो खूँटी गाड़ दिया और पहले छोर को दक्षिण वाली खूँटी में दूसरे छोर को उत्तर की खूँटी में फसा कर खूँटी से पूर्व ओर जा कर कर्ष नामक चिह्न को खींच कर कोण चिह्न पर एक खूँटी गाड़ दिया। यह पिण्ड के अग्नि-कोण पर वाली खूँटी हो गई। फिर पश्चिम ओर जाकर उसी तरह कर्ष नामक चिह्न को खींचा (ताना) और जहाँ कोण नाम चिह्न पड़ा वहाँ दूसरी खूँटी गाड़ दिया। यह पिण्ड के नैऋत्य कोण पर की खूँटी हो गई। अब दक्षिण वाली खूँटी में लगे हुए छोर को उत्तर की खूँटी में और उत्तर की खूँटी में लगे छोर को दक्षिण की खूँटी में फँसा दिया और उसी प्रकार दोनों ओर जा कर कर्ष नामक चिह्न को ताना (खींचा) और जहाँ २ कोण चिह्न पड़ा वहाँ २ एक एक खूँटी गाड़ दिया तो पिण्ड के चारो कोनों में ४ खूँटियाँ गड़ गई और सुलभ से स्थल निश्चित हो गया ॥ १ ॥

सूत्रन्यासस्तत्रैव (६।१५)—

आग्नेयादिदृढं प्रदक्षिणगतं सूत्रं [१]समासादये-
त्मध्ये वामकपार्श्वसुप्तपुरुषं ध्यात्वा तमुत्तानकम्।
अष्टाङ्ग्यं २८ शमगेन्दुसंमितलवान्पुच्छाद्विहायाग्रगो
भागो नाभिरितः खनेल्लवमितं वामेऽश्मभिः पूरयेत् ॥ २ ॥

---

१. सूत्रनियमो विश्वकर्मप्रकाशे—
विप्रस्य दर्भजं सूत्रं मौञ्जं तु क्षत्रियस्य च। कार्पासं तु विशः प्रोक्तं शूद्रस्य शणकल्पितम् ॥

पूर्वरीति से गड़ी हुई चारो खूंटियों में अग्निकोण से आरम्भ करके खूब मजबूत सूत दाहिने क्रम से बाँध दे तो पिण्ड की भूमि हो जायगी। इसके बीच में बाँये करवट से उतान सूते हुए वास्तुपुरुष का ध्यान करके वास्तुपुरुष के शरीर (लम्बाई या चौड़ाई) का २८ भाग बराबर २ करके १० भाग शिर की ओर और १७ भाग पुच्छ की ओर छोड़ कर बीच के भाग (अर्थात् पुच्छ की ओर से १८ वें हिस्से=नाभि) में खात खोदना चाहिये। और उसको पत्थल के टुकड़ों से भर देना चाहिथे ॥ २ ॥

शङ्कुन्यासो रेखाकरणञ्च तत्रैव (६।१६)—

ना कालेऽत्रविधेय उक्ततरुजोऽङ्गुलात्सिद्धविंशाष्टयहः-
कृत्संख्याङ्गुलकस्त्रिभागचतुरस्राष्टास्रकाऽनस्रकः।
कं वक्षस्थलमूरुजानुयुगलं संस्पृश्य विप्रादिको
रेखां सूत्रवदग्निजेन रचयेत्तद्वच्च भित्तेः शिलाः ॥ ३ ॥

शुभ मुहूर्त में वास्तुकर्म में विहित काष्ठ का ब्राह्मण को २४ अङ्गुल का क्षत्रिय को २० अङ्गुल का, वैश्य को १६ अङ्गुल का और शूद्र को १२ अङ्गुल का शंकु बनाना चाहिये। और इस शंकु का ३ भाग बराबर २ का बना कर प्रथम भाग को चतुरस्र (चौखूटा), दूसरे भाग को अष्टास्र (आठ कोनका) और तीसरे भाग को वर्तुलाकार बना कर उस को शुभमुहूर्त में यथास्थान न्यास करे। ब्राह्मण शिर, क्षत्रिय हृदय, वैश्य जाँघ और शूद्र पेडुरी का सूत के अनुसृत रेखा खींचे। और सूत के अनुसार ही भित्ति में शिलान्यास भी करे अर्थात् पहले अग्निकोण में प्रारम्भ करके नैऋत्य, वायव्य और ईशानकोण में होता हुआ अग्निकोण तक भीति उठावे ॥ ३ ॥

बहवोऽत्र विशेषा बृहत्संहितायां (५२।६६–१०२, १०७–१०८) कात्यायनशुल्बसूत्रादौ चाऽवलोक्याः। तस्मिन्नेवावसरे यद्यपशकुनं भवेत्तदा तत्र शल्यमादिशेत् (बृ. सं. ५२।१०३–१०६)—

अर्धनिचितं कृतं वा प्रविशन् स्थपतिर्गृहे निमित्तानि।
अवलोकयेद् गृहपतिः क्व संस्थितः स्पृशति किञ्चाङ्गम् ॥ ४ ॥
रविदीप्तो यदि शकुनिस्तस्मिन् काले विरौति परुषरवम्।
संस्पृष्टाङ्गसमानं तस्मिन् देशेऽस्थि निर्देश्यम् ॥ ५ ॥
शकुनसमयेऽथवान्ये हस्त्यश्वश्वापदोऽनु वाशन्ते।

---

१. बृहत्संहिताटीकायाम् (५२।१११)—

स्निग्धादिभूभागसमन्वितानां न्यग्रोधबिल्वद्रुमखादिराणाम्।
शमीवटोदुम्बरदेवदारुक्षीरिस्वदेशोत्थफलद्रुमाणाम् ॥

तत्प्रभवमस्थि तस्मिंस्तदङ्गसम्भूतमेवेति ॥ ६ ॥
सूत्रे प्रसार्यमाणे गर्दभरावोऽस्ति शल्यमाचष्टे।
श्वशृगाललङ्घिते वा सूत्रे शल्यं विनिर्देश्यम् ॥ ७ ॥

स्थपति (कारीगर) आधी भीत उठ जाने पर या गृह में पैठते समय यह देखे कि गृहपति कहाँ है किस अङ्ग का स्पर्श करता है। उसी समय यदि सूर्य किरण से सन्तप्त पक्षी कठोर शब्द से चिल्ला उठे या गृहेश जिस अङ्ग का स्पर्श करे उस अङ्ग की हड्डी जानना। शकुन–समय या अन्य किसी गृहकार्य करने के समय हाथी, घोड़ा, कुत्ता इत्यादि जो जीव आजाँय उस जानवर की हड्डी उस जमीन पर जानना। सूत्र फैलाने के समय गधे का शब्द हो अथवा कुत्ता, सियार इत्यादि जीव उस सूत्र को लाँघ जाँय तो भी उस स्थान पर हड्डी बताना चाहिये ॥ ४–७ ॥

शल्यज्ञानप्रकारः (बृ. सं. ५२।१०७ गर्गः)—

प्रश्नकाले गृहपतिः कस्मिन्नङ्गे समास्थितः।
किमङ्गं संस्पृशेद्वापि व्याहरेद्वा शुभाशुभम् ॥ ८ ॥
विलोक्य स्थपतिः पूर्वं पश्चाच्छल्यं विचारयेत्।
शङ्खभेरीमृदङ्गानां पटहानां च निःस्वनाः ॥ ९ ॥
दध्यक्षतानां पुष्पाणां फलानां दर्शनानि च।
स्पृष्टाङ्गसदृशं शल्यं तस्य स्थाने विनिर्दिशेत् ॥ १० ॥
निखनेदवनिं तत्र तदङ्गं स्फुरते तथा।
गृहनाथस्य तत्राधः शल्यं निःसंशयं वदेत् ॥ ११ ॥
प्रश्नकाले गजो गौर्वा तुरगो गर्दभोऽपि वा।
यः प्राणी व्याहरेत्तत्र तद्भवं शल्यमादिशेत् ॥
प्रमाणं तस्य वक्तव्यं पूर्वोक्तविधिना ततः ॥ १२ ॥

प्रश्नकालमें घर का मालिक किस अङ्ग के बल बैठा है, किस अङ्ग का स्पर्श करता है, अथवा क्या शुभाऽशुभ कहता है इन बातों का विचार करके स्थपति शल्याशल्य का आदेश करे। शङ्ख, भेरी (नगाड़ा), मृदङ्ग, इनके शब्द, दधि, अक्षत, फूल, फल इनका दर्शन होने पर स्पर्श किये हुए अङ्ग के सदृश शल्य कहे। पृथिवी खोदते समय जो अङ्ग फरक उठे उतने नीचे शल्य जाने। प्रश्नकाल में हाथी, घोड़ा, गधा इत्यादि जो जीव बोल उठे उसका शल्य बताये ॥ ८–१२ ॥

स्मृत्वेष्टदेवतां प्रष्टुर्वचनस्याद्यमक्षरम्।
गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते ॥ १३ ॥

अ क च ट त प य ह्या वर्गाः पूर्वादिमध्यन्ताः।
शल्यकरा इह नाऽन्ये शल्यगृहे निवसतां दोषः ॥ १४ ॥
पृच्छायां यदि अः प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत् ।
सार्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुषमृत्युकृत् ॥ १५ ॥
आग्नेयां दिशि कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वये ।
राजदण्डो भवेत्तत्र भयं नैव प्रवर्त्तते ॥ १६ ॥
याम्यायां दिशि चः प्रश्ने कुर्यादाकरि संस्थितम्।
नरशल्यं गृहे तस्य मरणं चिररोगतः ॥ १७ ॥
नैर्ऋत्यां दिशि टः प्रश्ने सार्धहस्तादधस्तले ।
शुनोऽस्थि जायते तच्च वालानां जनयेन्मृतिम् ॥ १८ ॥
तः प्रश्ने पश्चिमायां तु शिशोः शल्यं प्रजायते ।
सार्धहस्ते गृहस्वामी न तिष्ठति सदा गृहे ॥ १९ ॥
वायव्यां दिशि पः प्रश्ने तुषाङ्गाराश्चतुष्करे ।
कुर्वन्ति मित्रनाशं च दुःस्वप्नदर्शनं सदा ॥ २० ॥
उदीच्यां दिशि यः प्रश्ने विप्रशल्यं कटेरधः ।
तच्छीघ्रं निर्धनत्वाय कुबेरसदृशस्य हि ॥ २१ ॥
ऐशान्यां दिशि हः प्रश्ने गोशल्यं सार्धहस्ततः ।
तद्गोधनस्य नाशाय जायते गृहमेधिनः ॥ २२ ॥
ह्यपया मध्यमे कोष्ठे वक्षोमात्रे भवेदधः ।
नृकपालं कचा भस्म लोहं तत्कुलनाशनम् ॥ २३ ॥

अपने इष्ट देवता का स्मरण करके प्रष्टा प्रश्न करे। प्रश्न के आदिम-अक्षर के अनुसार शल्याशल्य का विचार करे। अ, क, च, ट, त, प, य, ह, ह्य ये वर्ण पूर्वादिक दिशाओं से लेकर मध्य पर्यन्त स्थापित कर के प्रश्न विचारने पर जिस स्थान पर उक्त अक्षर पड़ें उस स्थान पर शल्य का आदेश करे। शेष के अर्थ सरल हैं ॥ १३-२३ ॥

प्रश्नत्रयं वापि गृहाधिपेन देवस्य वृक्षस्य फलस्य वाऽपि ।
वाच्यं हि कोष्ठाक्षरसंस्थितेन शल्यं विलोक्यं भवनेषु सृष्ट्या ॥ २४ ॥
आ का चा टा ए त शा पा य वर्गाः प्राच्यादिस्थे कोष्ठके शल्यमुक्तम्।
केशाङ्गाराः काष्ठलौहास्थिकाद्यं तस्मात्कार्यं शोधनं भूमिकायाः॥२५॥

शल्ये गवां भूपभयं हयानां रुजः शुनां वै कलहप्रणाशौ।
खरोष्ट्रयोर्हानिमपत्यनाशं नृणामजस्याग्निभयं तनोति ॥२६॥

गृह का स्वामी देवता, वृक्ष और फल इन तीनों का अलग २ नाम लेवे यदि नीचे लिखे कोष्ठकके अक्षर उन (देवता, वृक्ष और फल) के नाम का आद्यक्षर हो जावे तो उस मकानके तत्तद्भागमें शल्य का आदेश करे। शेष श्लोकों का अर्थ स्पष्ट है ॥ २४-२६ ॥

प फ ब भ म	अ इ उ ऋ लृ	क ख ग घ ङ
श ष स ह	य र ल व	च छ ज झ ञ
त थ द ध न	ए ऐ ओ औ	ट ठ ड ढ ण

ग्रन्थान्तरे विशेषः—

गृहस्य पिण्डिका चैव कृत्वा च नवखण्डिका।
तेषु तेषु च भागेषु पूर्वादिक्रमतो बुधः ॥ २७ ॥

इसका अर्थ स्पष्ट है ॥ २७ ॥

व, क, च, त, ए, ह, स, य, प, एतान्यक्षराणि पूर्वादिनवकोष्ठकेषु लिखेत्। ब्राह्मणः पुष्पाणां; क्षत्रियो नदीनां, वैश्यो देवानां, शूद्रः फलानां नामान्युच्चारयेत्। यत्र पुष्पाद्यक्षरं भवति तत्रैव शल्यमादिशेत्। अन्यथाऽक्षरे न शल्यमिति।

'ॐ धरणी विदारणा भूत्वे स्वाहा'

इति मन्त्रं (ब्राह्मणत्रयेण ३००० जापयित्वेति साम्प्रदायिकाः) वारत्रयं पठित्वाऽक्षतं धृत्वा भूमिं स्पृष्ट्वा विचारयेत्।

य	व	क
स	प	च
ह	ए	त

१. वः प्रश्ने पूर्वस्यां दिशि मनुजशल्यं सार्द्धहस्तमात्रे मनुजमरणं कथयति।

२. कः प्रश्ने आग्नेय्यां दिशि खरशल्यं कटिमात्रे नृपभयं कथयति।

३. चः प्रश्ने दक्षिणस्यां दिशि वानरशल्यं कटिमात्रे गृहनाथस्य मृत्युं कथयति।

४. तः प्रश्ने नैऋत्यामश्वशल्यं सार्धहस्तमात्रे वित्तराजमृत्युं कथयति।

५. ए प्रश्ने वारुण्यां शिशुशल्यं सार्धहस्ते प्रवासं धनापहरणं च कथयति।

६. ह: प्रश्ने वायव्यां दिशि पुरुषशल्यं दुःस्वप्नदर्शनं कथयति ।

७. स: प्रश्ने कौबेर्यां द्विजशल्यं कटिमात्रे निर्धनत्वं कथयति ।

८. य: प्रश्ने ईशान्यामृक्षशल्यं सार्धहस्तमात्रे गोधननाशं कथयति ।

९. प: प्रश्ने मध्ये नरकपालं, भस्म, शल्यं च हृदिमात्रे कुलनाशं कथयति । गृहेशो नाऽस्ति तदा शुभमिति ।

अथ प्रसङ्गादहिबलचक्रम्—

अहिचक्रं प्रवक्ष्यामि यथा सर्वज्ञभाषितम् ।
द्रव्यं शल्यं तथा शून्यं येन जानन्ति साधकाः ॥ १ ॥

साधकगण जिससे द्रव्य, शल्य या शून्य स्थान को जान जाते हैं, सर्वेश (महादेव जी) के कहे हुए उस अहिबलचक्र को मैं कहता हूँ ॥ १ ॥

निधिर्निवर्तनैकस्थः सम्भ्रान्तो यत्र भूतले ।
तत्र चक्रमिदं स्थाप्यं स्थानद्वारमुखस्थितम् ॥ २ ॥

एक निवर्तनके[2] भीतर जिस भूमि पर खजाना भूल गया हो वहाँ इस चक्र को स्थानद्वार[1] पर इसका मुख रख कर स्थापन करे ॥ २ ॥

ऊर्ध्वरेखाष्टकं लेख्यं तिर्यक्पञ्च तथैव च ।
अहिचक्रं भवत्येवमष्टाविंशतिकोष्ठकम् ॥ ३ ॥

इसका अर्थ सरल है ॥ ३ ॥

तत्र पौष्णाश्वियाम्यर्क्षं कृत्तिकापितृभाग्यकम् ।
उत्तराफाल्गुनी लेख्यं पूर्वपंक्त्यां भसप्तकम् ॥ ४ ॥
अहिर्बुध्न्याजपादर्क्षं शतभं ब्राह्मसार्पभम् ।
पुष्यं हस्तं समालेख्यं द्वितीयां पंक्तिमास्थितम् ॥ ५ ॥
विधिर्विष्णुर्धनिष्ठाख्यं सौम्यं रौद्रं पुनर्वसू ।
चित्राभं च तृतीयायां पंक्तौ धिष्णस्य सप्तकम् ॥ ६ ॥

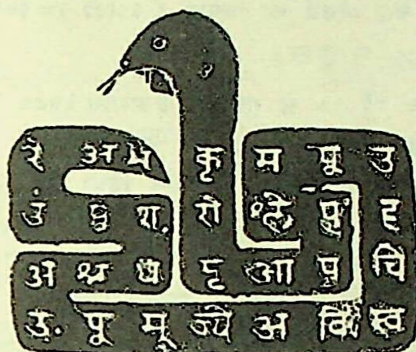
---

१. स्थानद्वारे विशेषः—
भाद्रत्रये शिरः प्राच्यां याम्यां मार्गत्रये शिरः । फाल्गुनत्रितये पश्चादुत्तरे च ततः परम् ॥ १ ॥
यत्र सर्पशिरस्तत्र स्थानद्वारं विनिर्दिशेत् । तत्र चक्रमिदं स्थाप्यं चेद्बहिर्भागगो निधिः ॥ २ ॥
गृहे यदि भवेद् द्रव्यं गृहद्वारे तदा न्यसेत् । मुख्योऽयं गदितः पक्षे हरिवंशकवीश्वरैः ॥ ३ ॥
तत्कालचन्द्रमा यद्वा यत्रर्क्षे सुव्यवस्थितः । शलाकासप्तके तत्र न्यसेच्चक्रमिदं बुधैः ॥ ४ ॥
यद्वा निधिपतिर्यत्र विशेत्तद्द्वारमादिशेत् । एवं पक्षत्रयाद्धीमान्निधिं संसाधयेत्किल ॥ ५ ॥

२. भास्कराचार्य जी ने लीलावती में २०० × २०० हाथों की किन्तु यहाँ के लिये किसी ने ३०० × ३०० हाथों की निवर्तन संज्ञा कल्पना की है ।

विश्वर्क्षं तोयभं मूलं ज्येष्ठां मैत्रविशाखके ।
स्वातीं पंक्तौ चतुर्थ्यां च कृत्वा चक्रं त्रिलोकयेत् ॥ ७ ॥

इन श्लोकों का अर्थ नीचेके चक्रसे स्पष्ट है ॥ ४-७ ॥



एवं प्रवर्तिते चक्रे प्रस्तारः पन्नगाकृतिः ।
द्वारशाखे मघायाम्ये द्वारस्था कृत्तिका मता ॥ ८ ॥

इस तरह चक्रमें सर्पाकार चक्र बन जाता है। उसमें द्वारशाखा पर मघा और भरणी तथा द्वार पर कृत्तिका होती है ॥ ८ ॥

अश्वीशपूर्वाषाढादि त्रिकं पञ्च चतुष्टयम् ।
रेवती पूर्वभाद्रेन्दोर्भानि शेषाणि भास्वतः ॥ ९ ॥

अश्विनीसे तीन (अ. भ. कृ.) आर्द्रासे पाँच (आर्द्रा. पुन. पुष्य. आश्ले. म.) पूर्वाषाढासे चार (पूषा. उषा. अभि. श्र.) पूर्वाभाद्रपदा, रेवती ये १४ नक्षत्र चन्द्रमा के और शेष १४ नक्षत्र (रो. मृ. पूफ. उफ. ह. चि. स्वा. वि. अनु. ज्ये. मू. ध. श. उभा.) सूर्यके हैं ॥ ९ ॥

उदयादिगता नाड्यो भघ्नाः षष्ठ्याप्तशेषके ।
दिनेन्दुभुक्तयुक्तेऽसौ भवेत्तत्कालचन्द्रमाः ॥ १० ॥

प्रश्नकालमें नक्षत्रोदयगतघटी (अर्थात् भयात[1] घटी) को २७ से गुणा करके[2] ६० का भाग देने पर जो लब्ध नक्षत्र, घटी, पल मिले उसमें पञ्चाङ्गस्थ अश्विनी आदि गत नक्षत्र संख्या को जोड़ देने से नक्षत्रादि तात्कालिक स्पष्ट चन्द्रमा होता है।

---

१. भयात और भभोग बनाने के लिये मेरा बनाया 'जन्मपत्रदीपक' देखिये ।

२. भभोग के स्थान में आचार्य ने स्वल्पान्तर से ६० कल्पना कर लिया है। किन्तु भभोग से ही भाग देने पर सूक्ष्मलब्धि होती है। भभोगपर से ही हमने उदाहरण भी दिया है।

उदाहरण

श्रीविक्रमसंवत् १९९० भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी ९।१८ शुक्रवार चित्रानक्षत्र ५४।११ के दिन सूर्योदयसे १३ घटी ४४ पल इष्टकाल पर श्रीबाबू कमलाकान्त का प्रश्न हुआ। उस समय चित्रा नक्षत्र का भयात (१७।४१)=१०६१ पल हुआ और भभोग (५८।८)=३४८८ पल हुआ।

अब भयात १०६१ को २७ से गुणा करके भभोग ३४८८ का भाग दिया तो $\frac{\text{१०६१}\times\text{२७}}{\text{३४८८}}$=८।१२।४७ लब्ध नक्षत्र, घटी, पल क्रमसे हुए। इसमें पञ्चाङ्गस्थ चन्द्रमा की भुक्तनक्षत्र हस्त की संख्या १३ को जोड़ दिया तो १३+(८।१२।४७)= २१।१२।४७ यह स्पष्टचन्द्रमा का तात्कालिक नक्षत्र हुआ अर्थात् उत्तराषाढा २१ गत श्रवण की १२।४७ गत घटी-पल पर तात्कालिक स्पष्ट चन्द्रमा हुआ।

इसकी उपपत्ति—

चन्द्रमाके १ नक्षत्र भोगकालमें उसी नक्षत्रसे आरम्भ करके २७ नक्षत्रों का भोगकाल मानके त्रैराशिकसे भभोग घटीमें २७ नक्षत्रों का भोग तो भयात घटी में क्या— $\frac{\text{२७}\times\text{भयात}}{\text{भभोग}}=\frac{\text{२७}\times\text{भयात}}{\text{६०}}$ (स्वरूपान्तरसे) लब्ध पञ्चाङ्गस्थ चन्द्रमाके वर्तमान नक्षत्रसे गतनक्षत्र घटीपल हुआ।

इसमें अश्विन्यादिगतनक्षत्र जोड़ देनेसे—

$$\text{गत}+\frac{\text{२७}\times\text{भयात}}{\text{६०}}$$ =सावयवाश्विन्यादिनक्षत्रादि चन्द्रमा हुआ ॥ १० ॥

षष्टिघ्नं तं निशानाथं शरवेदा४५प्तकं पुनः ।

त्रिभिर्भक्त्वा युगैः शेषं प्रागादि चक्रवक्त्रगम् ॥ ११ ॥

उपर्युक्त प्रकार से साधित स्पष्ट चन्द्रमा को ६० से गुणा करके ४५ का भाग देकर फिर ३ से भाग देना जो लब्धि आवे उसमें ४ का भाग देनेसे जितना शेष बचे उसीके अनुसार पूर्वादिक दिशाओंमें स्थान द्वार होता है। अर्थात् १ शेष बचे तो पूर्वमें, दो शेष बचे तो दक्षिणमें एवं आगे भी।

उदाहरण—

पूर्व साधित नक्षत्रादि २१।१२।४७ चन्द्रमा को ६० से गुणा कर दिया तो ६०×(२१।१२।४७)=१२७२।४७ हुआ। इसमें ४५ और ३ अर्थात् ४५×३= १३५ से भाग दिया तो $\frac{\text{१२७२}\times\text{४७।६०}}{\text{१३५}\times\text{६०}}=\frac{\text{७६३६७}}{\text{८१००}}$=९।१२।५०।२७ लब्धिराश्यादि चन्द्रमा हुआ। इसमें ४ का भाग देनेसे लब्ध २ और शेष १।१२।५०।२७ बचे इसलिये दक्षिण दिशामें स्थान द्वार हुआ (यहाँ लब्धि की कोई आवश्यकता नहीं है)।

इसकी उपपत्ति—२७ नक्षत्रमें १२ राशि तो पूर्वसाधित तात्कालिक स्पष्ट चन्द्रमा की नक्षत्रमें क्या—इस अनुपातसे राश्यात्मक तात्कालिक

$$\text{स्पष्टचन्द्रमा} = \frac{१२ \times \text{पूर्वसाधितनक्षत्रात्मकेन्दु}}{२७}$$

$$= \frac{५ \times १२ \times \text{पूर्वसाधितनक्षत्रात्मकेन्दु}}{५ \times २७}$$

$$= \frac{६० \times \text{पूर्वसाधितनक्षत्रात्मकेन्दु}}{४५ \times ३} \text{हुआ}$$

मेषादि राशिओंमें पूर्वादिक दिशाओंके क्रमसे चन्द्रमाके रहनेके कारण राश्यादि-चन्द्रमामें ४ का भाग देने पर जो शेष हो पूर्वसे लेकर उस दिशामें चन्द्रमा रहते हैं। चन्द्रमा की दिशा में स्थानद्वार होना चाहिये और उसी दिशामें चक्र का मुख भी स्थापना करना चाहिये यही युक्ति है ॥ ११ ॥

चन्द्रवत्साधयेत्सूर्यमृक्षस्थं चेष्टकालिकम् ।
पश्चाद्विलोकयेत्तौ च स्वर्क्षे वा चान्यभे स्थितौ ॥ १२ ॥

जैसे प्रश्नकालिक नक्षत्र के भयात-भभोग परसे तात्कालिक राश्यात्मक चन्द्रमा का साधन किया गया हैं, वैसे ही सूर्य का भी साधन करे। फिर देखे कि चन्द्रमा और सूर्य अपने २ नक्षत्र में हैं या एक दूसरे के नक्षत्र में पड़े हैं।

अर्थात् सूर्यके नक्षत्र प्रवेशकालसे इष्टकालपर्यन्त गत सावनदिनादिको सूर्य नक्षत्र का भयात और सूर्यके नक्षत्र प्रवेशकालसे अग्रिमनक्षत्रप्रवेश काल तक सावयव सावन दिनको सूर्य का भभोग मानकर सूर्यके भयातकाल को २७ से गुणाकर सूर्य भभोगकालसे भाग देना (लब्धि नक्षत्र, घटी, पल तक लाना) उसमें सूर्य की गत (भुक्त) नक्षत्रसंख्या को जोड़ देनेसे तात्कालिक नक्षत्रादि स्पष्ट सूर्य हो जाता है।

उदाहरण—प्रश्नकाल में सूर्य मघानक्षत्र पर है। मघानक्षत्र का प्रारम्भ भाद्रपद कृष्ण ११ बुधको ४०।१८ इष्टकाल पर हुआ है। उस दिन (मघाप्रवेशकाल) से इष्टकाल-पर्यन्त ७।३३।२६ सावन दिनादि सूर्याक्रान्तनक्षत्र का भयात हुआ। भाद्रपद शुक्ल १० बुधवार को २८।४९ इष्ट पर पूर्वाफल्गुनी का प्रवेश होगा। अतः मघाप्रवेश-कालसे पूर्वाफल्गुनीप्रवेश पर्यन्त १४।४८।३१ सावनादिनादि सूर्यर्क्ष का भभोग हुआ। अब दिनादि भयात ८।३३।२६ को पलात्मक ३०८०६ बनाकर २७ से गुण दिया ३०८०७ × २७ = ८३१७६२ और दिनादि भभोग १३।४८।३१ को पलात्मक ५३३११ करके उसमें भाग दिया तो $\frac{८३१७६२}{५३३११}$ = १५।३६।७ लब्ध मघानक्षत्र से लेकर गत नक्षत्र हुआ। इसमें सूर्य की भुक्त नक्षत्र आश्लेषा की संख्या ९ को जोड़ दिया तो ९+(१५।३६।७)=२५।३६।७ [१]नक्षत्रादि स्पष्टतात्कालिक सूर्य हुआ। इसलिये तात्कालिक सूर्य पूर्वाभाद्रपदा पर हुआ।

---

१. चक्र में २८ नक्षत्रों का स्थापना करना लिखा है किन्तु इन गणितों में २७ से ही भाग

अब ९ वें श्लोक के अनुसार चन्द्रमा और सूर्य दोनों चन्द्रमा के नक्षत्रमें हैं इसलिये अग्रिम १३ वें श्लोक के अनुसार उस जगह पर निधि (खजाना) है ॥ १२ ॥

चन्द्रर्क्षे यदाऽर्केन्दू तदाऽस्ति निश्चितं निधिः ।
भानुऋक्षे स्थितौ तौ चेत्तदा शल्यं न चाऽन्यथा ॥ १३ ॥

पूर्वोदित विधि से साधित सूर्य और चन्द्रमा दोनों यदि चन्द्रमा के नक्षत्र में हों तो निश्चय निधि जानना। और यदि दोनों सूर्य नक्षत्र में हों तो शल्य कहना। यदि दोनों किसी के नक्षत्र में न हों तो शून्य जानना॥१३॥

स्वस्वभे द्वितये ज्ञेयं नाऽस्ति किञ्चिद्विपर्यये ।
स्थितं न लभते द्रव्यं चन्द्रे क्रूरग्रहान्विते ॥ १४ ॥
(यत्र कोष्ठे स्थितश्चन्द्रस्तत्र कोष्ठे निधिं वदेत्।
यत्र कोष्ठे स्थितः सूर्यस्तत्र शल्यं विनिर्दिशेत् ॥)

चन्द्रमा यदि पापग्रह से युक्त हो तो स्थित द्रव्य का भी लाभ नहीं होता (जिस कोष्ठ में चन्द्रमा हो उस कोष्ठ में द्रव्य, जिसमें सूर्य हो उसमें शल्य कहना ऐसा भी किसी २ का मत है) ॥ १४ ॥

शुभक्षेत्रगते चन्द्रे द्रव्यलाभो न संशयः ।
पापक्षेत्रे न लाभः स्याज्ज्ञातव्यं दैवविद्वरैः ॥ १५ ॥

शुभ[1]ग्रह के घर[2] में चन्द्रमा हो तो द्रव्यलाभ अवश्य हो इस में सन्देह नहीं। और पापग्रह की राशि में चन्द्रमा हो तो द्रव्य लाभ कदापि न हो ऐसा प्रवर ज्यौतिषियों को जानना चाहिये ॥ १५ ॥

पुष्टे चन्द्रे भवेन्मुद्रा क्षीणे चन्द्रेऽल्पको निधिः ।
ग्रहदृष्टिवशात्सोऽपि विज्ञेया नवधा बुधैः ॥ १६ ॥

उपर्युक्त स्थिति में चन्द्रमा यदि बलिष्ठ हो तो अधिक द्रव्य तथा चन्द्रमा बलहीन हो तो थोड़ा द्रव्य जानना। यह ग्रह की [3]दृष्टिवश नव प्रकार का द्रव्य भेद होता है ॥ १६ ॥

देना लिखा है। इसका कारण यह है कि २७ नक्षत्रों में ही २८ वें अभिजिन्नक्षत्र का भी अन्तर्भाव हो जाता है। क्योंकि उत्तराषाढा का चतुर्थ चरण और श्रवण का आदिम १५ वाँ भाग अभिजित् का मान होता है जैसा कि मु. चि. विवाह प्र. में लिखा है—

'वैश्वप्रान्त्याङ्घ्रिः श्रुतितिथिभागतोऽभिजित्स्यात् ।' इति ।

१. ग्रहों की शुभपापसंज्ञा जानने के लिये मेरी बनाई लघुजातक की संस्कृत टीका देखिये ।

२. इसके लिये मेरा फलितनवरत्न संग्रह (संज्ञारत्न १०५-१०६ श्लो०) देखिये ।

३. ग्रहदृष्टिज्ञान के लिये मेरा लघुजातक देखिये ।

हेम तारं तु ताम्रारं रत्नं कांस्यायसं त्रपु।
नागं चन्द्रे विजानीयाद्भास्करादिग्रहेक्षिते ॥ १७ ॥

चन्द्रमा को सूर्य देखता हो तो सोना, चन्द्रमा स्वयं पूर्ण बिम्ब हो तो मोती, चन्द्रमा पर भौम की दृष्टि हो तो ताँबा, बुध की दृष्टि हो तो पीतल, गुरु की दृष्टि हो तो रत्न, शुक्र की दृष्टि हो तो काँसा, शनि की दृष्टि हो तो लोहा, राहु की दृष्टि हो तो राँगा, और केतु की दृष्टि हो तो शीशा जानना ॥

मिश्रैर्मिश्रं भवेद् द्रव्यं शून्यं दृष्टिविवर्जिते।
सर्वग्रहेक्षिते चन्द्रे निर्दिष्टोऽसौ महानिधिः ॥ १८ ॥

यदि २, ३ इत्यादि ग्रहों की दृष्टि हो तो उन सब ग्रहों का द्रव्य मिला हुआ होता है। यदि कोई ग्रह न देखते हों तो द्रव्य का अभाव होता है। एवं यदि सब ग्रह चन्द्रमा को देखते हों तो पुष्कल द्रव्य कहना चाहिये ॥ १८ ॥

हेम रूप्यं च ताम्रारं पाषाणं मृन्मयायसम्।
सूर्यादिगृहे चन्द्रे द्रव्यभाण्डं प्रजायते ॥ १९ ॥

चन्द्रमा सूर्य की राशिमें बैठा हो तो सोने के वर्तन में, अपनी ही राशि में बैठा हो तो चान्दी के वर्तन में, भौमकी राशि में पड़ा हो तो ताँबे के वर्तन में, बुध की राशि में स्थित हो तो पीतल के वर्तन में, गुरु की राशि में हो तो पत्थर के वर्तन में, शुक्र की राशि में व्यवस्थित हो तो मिट्टी के वर्तन में और शनि की राशि में स्थित हो तो लोहे के वर्तन में द्रव्य बताना चाहिये ॥ १९ ॥

शुक्रराश्यंशमानेन भूमानं कामिकैः करैः।
नीचे द्विघ्नं परे नीचे जलस्थोऽसौ भवेन्निधिः॥ २० ॥

तात्कालिक चन्द्रमा के राशि के जितने अंश बीत गये हों कामिक (द्रव्यमालिक) के हाथ से उतने हाथ जमीनके नीचे द्रव्य जाने। अथवा बीते हुए नवमांशके तुल्य हाथ नीचे द्रव्य जाने। चन्द्रमा यदि अपने नीच राशि (वृश्चिक) का हो तो उस (बीते हुए अंश या नवांश) से दूने हाथ नीचे द्रव्य जाने ॥ २० ॥

स्वोच्चस्थे तूर्ध्वगं द्रव्यं नवमांशक्रमेण च।
परमोच्चे स्थिते चन्द्रे भित्तिस्थमृक्षसंक्रमे ॥ २१ ॥

चन्द्रमा यदि अपने उच्च (वृष) राशि का हो तो बीते हुए अंस या नवमांश के तुल्य हाथ ऊँचाई पर द्रव्य जाने। एवं परमोच्च (वृष के तीसरे अंश) पर चन्द्रमा हो या नक्षत्रसन्धि में चन्द्रमा हो तो जमीन के ऊपर दिवाल में द्रव्य बताना चाहिये ॥ २१ ॥

---

१. ग्रहों के उच्च-नीच जानने के लिये मेरा बनाया फलितनवरत्नसंग्रह (८।१०) देखिये।

चन्द्रभुक्तांशमानेन द्रव्यसंख्या विधीयते ।
तस्या दशगुणा वृद्धिः षड्वर्गेन्दुबलक्रमात् ॥ २२ ॥

चन्द्रमा के बीते हुए अंश के बराबर द्रव्य की संख्या कहना। एवं चन्द्रमा के षड्वर्ग ([1]राशि, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिशांश) बल के क्रमसे संख्या की दशगुणित वृद्धि जानना। अर्थात् यदि षड्वर्गों में से किसी अपने एक वर्ग में चन्दमा हो तो १० गुना, २ वर्ग में हो तो १०० गुना, ३ वर्ग में हो तो १००० गुणित, ४ वर्ग में हो तो १०००० गुणित, ४ वर्ग में होतो १००००० गुणित और ६ वर्ग में हो तो १०००००० गुणित द्रव्य जानना ॥ २२ ॥

अधिष्ठितं भवेद् द्रव्यं यत्र चन्द्रो ग्रहान्वितः ।
तदधिष्ठापको ज्ञेयो भास्करादिग्रहैः क्रमात् ॥ २३ ॥

चक्र में जिस जगह पर ग्रह से युक्त या केवल चन्द्रमा व्यवस्थित हो उस जगह पर द्रव्य जानना। सूर्यादिक ग्रहों से चन्द्रमा के युक्त रहने पर निम्न लिखित देवता द्रव्य के अधिष्ठापक होते हैं ॥ ३२ ॥

ग्रहं मुग्धग्रहं चैव क्षेत्रपालं च मातृकाः ।
दीपेशं भीषणं रुद्रं यक्षं नागं विदुः क्रमात् ॥ २४ ॥

चन्द्रमा सूर्य से युक्त हो तो ग्रह, केवल चन्द्रमा हो तो मुग्धग्रह, भौम से युक्त हो तो क्षेत्रपाल, बुध से युक्त हो तो मातृका, गुरुसे युक्त हो तो दीपेश, शुक्र से युक्त हो तो भीषण, शनि से युक्त हो तो रुद्र, राहु से युक्त हो तो यक्ष, और केतु से युक्त हो तो नाग क्रम से ये ६ द्रव्य के अधिष्ठापक कहे गये हैं ॥ २४ ॥

ग्रहे होमः प्रकर्तव्यः मुग्धे नारायणो बलिः ।
क्षेत्रपाले सुरामांसं मातृकासु महाबलिः ॥ २५ ॥
दीपेशे दीपजा पूजा भीषणे भीषणार्चनम् ।
रुद्रे च रुद्रजो जाप्यो यक्षे यक्षादिशान्तयः॥ २६ ॥
नागे नागगणाः पूज्या गणनाथेन संयुताः ।
लक्ष्मीं धरादितत्त्वानि सर्वकार्येषु पूजयेत् ॥ २७ ॥
एवं कृत्वा विधानेन निधिः साध्योऽपि सिध्यति ।
निधिं प्राप्ता नरा लोके वन्दनीया न संशयः ॥ २८ ॥

---

१. इनके ज्ञान का प्रकार मेरे फलितनवरत्नसंग्रह में विधिवत लिखा है ।

पद्मासने चन्द्रातपेन 'ओं ऐं क्लीं वद वद वाग्वादिनी स्वाहा' इति मन्त्रं षण्मासपर्यन्तं त्रिसन्ध्यं जपेत्तदा निधिप्राप्तिर्भवति। इत्यहिबलचक्रम्।

यदि ग्रह द्रव्याधिष्ठायक हों तो हवन, मुग्ध अधिष्ठायक हों तो नारायणी बलि, क्षेत्रपाल अधिष्ठायक हों तो सुरा (मदिरा) और मांस, मातृका अधिष्ठायक हों तो महाबलि, दीपेश हों तो दीपादिसे पूजा, भीषण देव द्रव्याधिष्ठाता हों तो भयङ्कर (क्रूर) पूजन, रुद्र अधिष्ठायक हों तो शिव की जप से उपासना, यक्ष अधिनायक हों तो यक्षशान्ति, नाग अधिष्ठाता हों तो नागों की और गणेश की विधिवत् पूजा करनी चाहिये। समस्त कार्यों में पृथिवी आदि तत्त्वों और लक्ष्मी का पूजन करना चाहिये। इस विधि से पूजा करने से दुःसाध्य निधि भी प्राप्त होता है। और निधि को प्राप्त करके मनुष्य लोक में पूज्य होता है॥ २५-२८॥

इति शल्योद्धारप्रकरणम्॥ ३॥

मेलापकप्रकरणम् ४

तत्र मेलापकप्रकारः (ज्योतिर्नि०)

कार्यां धिष्ण्यगृहैर्गृहेशगृहयोरुद्वाहवत्कल्पना
नीडं यद्विषमायगं शशिबले ताराबले संयुतम्।
कार्यं तच्छुभदं करैर्यदि गुणाः सर्वेऽपि न स्युस्तदा
कुर्याज्ज्यौतिषिकोऽङ्गुलादिकमिह क्षिप्त्वा विहायाऽथवा॥१॥

स्त्री पुरुष के विवाहमेलापक की नाईं गृहनक्षत्र और गृहेशनक्षत्र का भी मेलापक देखना चाहिये। विषम आय वाला मकान चन्द्रमा और तारा के बली रहने पर बनाना चाहिये। यदि पूरे २ हाथ पर सब वस्तु अनुकूल न मिलें तो ज्यौतिषियों को चाहिये कि लम्बाई में कुछ अङ्गुल जोड़ कर वा घटा कर आयादि का विचार करें॥ १॥

गृहनक्षत्रकल्पनम् [पीयूषधारा १२।१२]—

त्रिभिस्त्रिभिर्वेश्मनि कृत्तिकाद्यैरुद्वेगपुत्राप्तिधनाप्तिशोकम्।
शत्रोर्भयं राजभयं च मृत्युः सुखं प्रवासश्च नव प्रभेदाः॥ २॥

इसका अर्थ चक्र से ही स्पष्ट है॥ २॥

नक्षत्र	कृत्ति. रोहि. मृग.	आर्द्रा पुन. पुष्य.	आश्ले. मघा पू. फ.	उ. फ. हस्त चित्रा	स्वाती विशा. अनु.	ज्येष्ठा मूल. पू. षा.	उषा. श्रवण धनि.	शत पूभा उभा.	रेव. अश्वि भर.
फल	उद्वेग	पुत्राप्ति	धनाप्ति	शोक	अशुभ	राजभय	मृत्यु	सुख	प्रवास

अत एव कस्यचित्पद्यम्—

आर्द्रादितिर्गुरुश्चैव सार्पश्चैव पिता भगम् ।
शतभं पूर्वयुग्मं च नवेष्टा गृहतारकाः ॥ ३ ॥

आर्द्रा से ६ नक्षत्र और शतभिष से ३ नक्षत्र ये ९ नव नक्षत्र गृह की हों तो शुभ है ॥ ३ ॥

राशिकल्पनम्—

अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रये ।
मूलादित्रितयं चापे शेषभेषु द्वयं द्वयम् ॥ ४ ॥

इसका अर्थ सरल ही है ॥ ४ ॥

नवांशवशेन यथा (पी० धा० १२।१२)—

गृहस्यागतभं यत्तु यद्द्विराश्यात्मकं यदि ।
तन्नवांशवशात्तत्र ज्ञातव्यं सर्वदा गृहम् ॥ ५ ॥

गृह का नक्षत्र यदि दो राशिवाली (कृत्तिका, मृगशिरा, पुनर्वसु ...... इत्यादि) हों तो नवांशवश से राशि कल्पना करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अष्टौ कूटाः (मु० चि० ६।२०)—

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम् ।
गणमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिकाः ॥ ६ ॥

इसका अर्थ सरल है ॥ ६ ॥

(१) वर्णविचारः (वास्तुराजव० ३।१६)—

विप्राः कर्किझषालयो निगदिताः सिंहाऽजचापा नृपा
विट्कन्यामकरो वृषोऽथ वृषलो युग्मं च कुम्भस्तुला ।
वर्णोत्तमकामिनी च भवनं वर्ज्यं बुधैर्यत्नतः
श्रेष्ठा द्वादशनन्दरागगणिता विप्रक्रमाद्राशयः ॥ ७ ॥

पूर्वार्ध का अर्थ स्पष्ट है। उत्तम वर्ण की कामिनी और गृह का यत्नपूर्वक वर्जित करना चाहिये। और ब्राह्मणादिकों के लिये क्रम से मीन, धनु, कन्या और मिथुन राशि का घर उत्तम होता है ॥ ७ ॥

(२) वश्यविचारः (मु० चि० ६।२२)

हित्वा मृगेन्द्रं नर[1]राशिवश्याः सर्वे तथैषां जलजाश्च भक्ष्याः ।
सर्वेऽपि सिंहस्य वशे विनाऽलिं ज्ञेयं नराणां व्यवहारतोऽन्यत् ॥८॥

---

१. द्विपदादयो राशयः (लघुजातके)—
मेषवृषधन्विसिंहाश्चतुष्पदा मकरपूर्वभागश्च । कीटः कर्कटराशिः सरीसृपो वृश्चिकः कथितः ॥ मकरस्य पश्चिमार्द्धं ज्ञेयो मीनश्च जलचरख्यातः। मिथुनतुलाघटकन्या द्विपदाख्या धन्विपूर्वभागश्च ॥इति।

मनुष्य राशि की सिंह राशि को छोड़ कर सम्पूर्ण राशियाँ वश्य और जलचरराशियाँ भक्ष्य होती हैं। और वृश्चिक को छोड़ कर सिंह राशि के वश्य सब राशियाँ होती हैं। एवं अन्यत्र (अर्थात् जलचरों में चतुष्पदों के तथा चतुष्पद और जलचरों में) व्यवहार से जानना चाहिये ॥ ८ ॥

(३) [क] ताराविचारः (मु० पीयूषधारा १२।१२)—

दत्ते दुःखं तृतीयर्क्षं पञ्चमर्क्षं यशःक्षयम् ।

आयुःक्षयं सप्तमर्क्षं कर्तृभाद् गृहभावधि ॥ ९ ॥

गृहेश के नक्षत्र से गृह के नक्षत्र तक गिन कर ९ का भाग देने पर यदि ३ शेष बचे तो दुःख, ५ शेष बचे तो यश का नाश और ७ शेष बचे तो आयु का नाश होता है ॥ ७ ॥

[ख] अन्यत्रैतद्विपरीतमुक्तम्—

गृहभात्स्वामिभं गण्यं विभक्तं नवभिः पुनः ।

यच्छेषं सा भवेत्तारा पञ्चसप्तत्रिकाऽधमा ॥ १० ॥

गृह के नक्षत्र से गृहस्वामी के नक्षत्र तक गिनकर ९ का भाग देने से शेष तारायें होती हैं। इनमें ३ री, ५ वीं और ७ वीं तारायें खराब होती हैं ॥१०॥

अनयोः प्रथमपक्ष एव श्रेयानुक्तञ्च (वास्तुराजव० ३।१०)—

यावद्गृहर्क्षं गणयेत्स्वधिष्ण्यात्तारा[1] विभक्ते नवभिश्च शेषाः ।

बुधैस्तृतीया सकलेषु वर्ज्या या पञ्चमी सप्तमिका न शस्ता ॥११॥

अपनी [गृहपति के] नक्षत्र से गृह की नक्षत्र तक गिन के नव का भाग देने से तृतीया, पञ्चमी और सप्तमी तारायें निषिद्ध होती हैं। [यहाँ १० वें श्लोक में लिखे वचन का पोषक वचन विशेषतः नहीं मिलते इसलिये यही ठीक है] ॥ ११ ॥

(४) योनिविचारः (मु० चि० ६।२५-२६)—

अश्विन्यम्बुपयोर्हयो निगदितः स्वात्यर्कयोः कासरः

सिंहो वस्वजपाद्भयोस्समुदितो याम्यान्त्ययोः कुञ्जरः ।

मेषो देवपुरोहिताऽनलभयोः कर्णाम्बुनोर्वानरः

स्याद्वैश्वाभिजितोस्तथैव नकुलश्चान्द्राब्जयोन्योरहिः ॥ १२ ॥

---

१ तारानामानि (मु० चि० ४।१२)—

जन्माख्यसम्पद्विपदः क्षेमप्रत्यरिसाधकाः । वधमैत्राऽतिमैत्राः स्युस्तारा नामसदृक्फलाः ॥

ग्रन्थान्तरे त्वन्यप्रकारेण नामानि—

शान्ता मनोहरा क्रूरा विजया चाकुलोद्भवा । पद्मिनी राक्षसी बाला आनन्दा नवमी मता ॥

केचिद्गृहर्क्षादारम्भर्क्षं यावद्विगणय्य ताराविचारं कुर्वन्तीति ।

ज्येष्ठामैत्रभयोः कुरङ्ग उदितो मूलार्द्रयोः श्वा तथा
मार्जारोऽदितिसार्पयोरथ मघायोन्योस्तथैवोन्दुरुः ।
व्याघ्रो द्वीशभचित्रयोरपि च गौरर्यम्णबुध्न्यर्क्षयो-
र्योनिः पादगयोः परस्परमहावैरं भयोन्योस्त्यजेत् ॥ १३ ॥

अश्विनी और शतभिष की अश्वयोनि, स्वाती और हस्त की महिष-योनि; धनिष्ठा और पूर्वाभाद्रपदा की सिंहयोनि, भरणी और रेवती की गजयोनि, पुष्य और कृत्तिका की मेषयोनि, श्रवण और पूर्वाषाढ़ा की वानर-योनि, उत्तराषाढा और अभिजित् की नकुलयोनि, मृगशिरा और रोहिणी की सर्पयोनि, ज्येष्ठा और अनुराधा की मृगयोनि, मूल और आर्द्रा की श्वानयोनि, पुनर्वसु और आश्लेषा की मार्जारयोनि, मघा और पूर्वाफाल्गुनी की मूषकयोनि, विशाखा और चित्रा की व्याघ्रयोनि तथा उत्तराफल्गुनी और उत्तराभाद्रपदा की गोयोनि होती है। श्लोक के प्रत्येक चरण में कही हुई दो दो योनियों में परस्पर महावैर होता है। इसको त्याज्य करना चाहिये ॥ १२–१३ ॥

नक्षत्र	अश्वि शत.	स्वाती हस्त	धनि. पूभा	भर. रेव.	पुष्य कृत्ति	श्रव. पूषा	उषा. अभि.	रोहि मृग	अनु. ज्येष्ठा	मूल आर्द्रा	पुन. आ.	मघा पूफ.	चित्रा विशा	उफ उभा
योनि	हय	महिष	सिंह	गज	मेष	वानर	नकुल	सर्प	मृग	श्वान	मा.	मूष.	व्याघ्र	गौ.

(५) ग्रहमैत्री (मु० चि० ६।२७–२८)—

मित्राणि द्युमणेः कुजेज्यशशिनः शुक्रार्कजौ वैरिणौ
सौम्यश्चास्य समो विधोर्बुधरवी मित्रे न चाऽस्य द्विषत् ।
शेषाश्चास्य समाः कुजस्य सुहृदश्चन्द्रेज्यसूर्या बुधः
शत्रुः शुक्रशनी समौ च शशभृत्सूनोः सिताऽहस्करौ ॥ १४ ॥
मित्रे चाऽस्य रिपुः शशी गुरुशनिक्ष्माजाः समा गीष्पते-
र्मित्राण्यर्ककुजेन्दवो बुधसितौ शत्रू समः सूर्यजः ।
मित्रे सौम्यशनी कवेः शशिरवी शत्रू कुजेज्यौ समौ
मित्रे शुक्रबुधौ शनेः शशिरविक्ष्माजा द्विषोन्यः समः ॥ १५ ॥

सूर्य के मङ्गल, बृहस्पति और चन्द्रमा मित्र, शुक्र–शनि शत्रु और बुध सम; चन्द्रमा के बुध और सूर्य मित्र, मङ्गल, बृहस्पति, शुक्र और शनि सम, शत्रु कोई नहीं; मङ्गल के चन्द्रमा, बृहस्पति और सूर्य मित्र, बुध शत्रु, शुक्र और शनैश्चर सम; बुध के शुक्र और सूर्य मित्र, चन्द्रमा शत्रु और बृहस्पति, शनैश्चर तथा मङ्गल उदासीन, बृहस्पति के सूर्य, मङ्गल और चन्द्रमा मित्र,

बुध और शुक्र शत्रु, शनैश्चर सम; शुक्र के बुध और शनैश्चर मित्र, सूर्य और चन्द्रमा शत्रु, मङ्गल और बृहस्पति सम एवं शनैश्चर के शुक्र-बुध मित्र, सूर्य, चन्द्रमा और मङ्गल शत्रु तथा बृहस्पति सम (उदासीन) होता है ॥

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	च. म. गु.	बु. सू.	सू. चं बृ.	सू. शु.	सू. च. म.	बु. श.	शु. बु.
सम	बु.	म. बृ. शु. श.	शु. श.	गु. श. म.	श.	म. बृ.	बृ.
शत्रु	शु. श.	०	बु.	च.	बु. शु.	सू. च.	सू. च. म.

सापवादं फलं (पी० धा०)—

अन्योन्यमित्रं शस्तं स्यात्सममित्रं तु मध्यमम् ।
उदासीनं कनिष्ठं स्यान्मृतिदं शात्रवं स्मृतम् ॥ १६ ॥

इसका अर्थ सरल है ॥ १६ ॥

(६) गणमैत्री (मु० चि० ६।२६-३०)—

रक्षोनराऽमरगणाः क्रमतो मघाऽहिवस्विन्द्रमूलवरुणाऽनलतक्षराधाः ।
पूर्वोत्तरात्रयविधातृयमेशभानि मैत्रादितीन्दुहरिपौष्णमरुल्लघूनि ॥१७॥
निजनिजगणमध्ये प्रीतिरत्युत्तमा स्यादमरमनुजयोः सा मध्यमा सम्प्रदिष्टा ।
असुरमनुजयोश्चेन्मृत्युरेव प्रदिष्टो दनुजविबुधयोः स्याद्वैरमेकान्ततोऽत्र॥

मघा, आश्लेषा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, मूल, शतभिष, कृत्तिका, चित्रा और विशाखा इन ६ नक्षत्रों का राक्षस गण; तथा तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा इन ६ नक्षत्रों का मनुष्य गण और अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, श्रवण, रेवती, स्वाती और लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) इन ६ नक्षत्रों का देवता गण होता है ।

अपने २ गणों में अत्युत्तमा प्रीति होती है । मनुष्य और देवता में मध्यमा प्रीति होती है । राक्षस-मनुष्यों में मृत्यु होती है । और राक्षस देवताओं में एकान्त (सर्वदा) वैरित्व रहता है ॥ १७-१८ ॥

प्रसङ्गान्नक्षत्रमैत्री (वास्तुराजव० ३।१५)—

वैरं चोत्तरफल्गुनीयुगलयोः स्वातीभरण्योर्द्वयोः
रोहिण्युत्तरषाढयोः श्रुतिपुनर्वस्वोर्विरोधस्तथा ।
चित्राहस्तभयोश्च पुष्यफणिनोर्ज्येष्ठाविशाखर्क्षयोः
प्रासादे भवनाऽऽसने च शयने नक्षत्रवैरं त्यजेत् ॥ १९ ॥

उत्तराफल्गुनी और अश्विनी में, स्वाती और भरणी में, रोहिणी और

उत्तराषाढा में, श्रवण और पुनर्वसु में, चित्रा और हस्त में, पुष्य और आश्लेषा में, ज्येष्ठा-विशाखा में परस्पर शत्रुता होती है। इसको राजभवन, मकान, आसन और चारपाई इनके बनाने में वर्जित करना चाहिये ॥१६॥

(७) भकूटः (मु० चि० ६।३१)—

मृत्युः षडष्टके ज्ञेयोऽपत्यहानिर्नवात्मजे ।
द्विर्द्वादशे निर्धनत्वं द्वयोरन्यत्र सौख्यकृत् ॥ २० ॥

इसका अर्थ सरल है ॥ २० ॥

(८) नाडीविचारः—

आवृत्तिभिर्भैस्त्रिभिरश्विभाद्यं क्रमोत्क्रमात्सङ्गणयेदुडूनि ।
यदेकपर्वण्युभयोश्च हर्म्यहर्म्येशयोर्भेऽतिशुभं तदा स्यात् ॥२१॥

अश्विनी से आरम्भ कर तीन २ नक्षत्रों को क्रम तथा उत्क्रमसे रखने पर नव २ नक्षत्रों की एक २ नाडी होती है। गृह और गृहेश दोनों की नक्षत्र यदि एक ही नाडी में पड़ जाय तो अत्यन्त शुभ होता है। ग्रन्थान्तर में भी लिखा है—

सेव्यसेवकयोश्चैव गृहतत्स्वामिनोरपि ।
परस्परं मित्रयोश्च एका नाडी प्रशस्यते ॥ इति ॥ २१ ॥

आदि	अश्वि	आर्द्रा	पुन.	उफ.	हस्त	ज्येष्ठा	मूल	शत	पूभा.
मध्य	भर.	मृग.	पुष्य	पूफ.	चित्रा	अनु.	पूषा	धनि.	उभा.
अन्त्य	कृत्ति.	रोहि	आश्ले.	मघा	स्वाती	विशाखा	उषा.	श्रव	रेव

गणादीनामपवादः (मु० चि० ६।३३)—

मैत्र्यां राशिस्वामिनोरंशनाथद्वन्द्वस्याऽपि स्याद्गणानां न दोषः ।
खेटारित्वं नाशयेत्सद्भकूटं खेटप्रीतिश्चापि दुष्टं भकूटम् ॥ २२ ॥

दोनों के राशिस्वामियों में परस्पर मित्रता हो तो गण का दोष नहीं होता है। और ग्रहमैत्री अच्छी हो तो भकूट का दोष नष्ट हो जाता है। भकूट अच्छा हो तो ग्रहमैत्री अच्छी हो जाती है ॥ २२ ॥

इति गृहमेलापकप्रकरणम् ॥ ४ ॥



पिण्डाद्यानयनप्रकरणम् ५

इत्थं गृहगृहेशयोर्घटितं विविच्य गृहर्क्षं निश्चित्याभीप्सितायः विषमसंख्याकः कल्प्यस्तत्रादावायादिनिदानभूतं गृहर्क्षेष्टायवशाद् गृहपिण्ड (गृहभूफल) ज्ञानम् (मु० चि० १२।२)—

एकोनितेष्टर्क्षहता द्वितिथ्यो १५२ रूपोनितेष्टायहतेन्दुनागैः ८१ ।
युक्ता घनै १७श्चापि युता विभक्ता भूपाश्विभिः २१६ शेषमितो हि पिण्डः।
स्वेष्टायनक्षत्रभवोऽथ दैर्घ्यहृत्स्याद्विस्तृतिर्विस्तृतिहृच्च दीर्घता ॥ १ ॥

इष्ट[1] नक्षत्र की संख्या में १ कम कर १५२ से गुणा कर देना। एवं इष्ट[2] आय में १ घटा के ८१ से गुणा कर देना। इन दोनों गुणनफलों के योग में १७ और जोड़ कर २१६ से भाग देना। जो शेष बचे वही पिण्ड होता है। पिण्ड में लम्बाई की संख्या से भाग देने पर लब्धि चौड़ाई एवं चौड़ाई से भाग देने पर लब्धि लम्बाई होती है।

उदाहरण—

विश्वनाथ प्रसाद के नामनक्षत्र रोहिणी के साथ स्वाती नक्षत्र की अच्छी गणना बनती है २५½ गुण आता है। इसलिये स्वाती १५ इष्ट नक्षत्र हुई। और ७ इष्ट आय कल्पना किया।

इष्ट नक्षत्र संख्या १५ में १ घटा कर १५२ से गुणा कर दिया तो (१५-१) १५२ = २१२८ हुए। एवं इष्टाय ७ में १ कम करके ८१ से गुणा किया तो (७-१) ८१ = ४८६ हुए। इन दोनों गुणनफलों के योग में १७ और जोड़ दिया तो २४२८ + ४८६ + १७ = २६३१ हुए। इसमें २१६ का भाग दिया तो $\frac{२६३१}{२१६}$ लब्धि १२ और शेष ३९ हुए। अतः ३९ यही गृहपिण्ड हुआ। परन्तु अभीष्ठ पिण्डवाले गृह के लिये ३९ इतना ही क्षेत्रफल बहुत कम है इसलिये ३९ इसमें ३ × २१६ = ४६८ जोड़ दिया तो ३९ + ६४८ = ६८७ वास्तविक गृहपिण्ड हो गया। इस मुख्य गृहपिण्ड ६८७ में गृह की चौड़ाई २५ हाथ से भाग दिया तो लब्धि २७⅖ हाथ लम्बाई हुई।

उपपत्ति—

कल्पना किया कि पिण्ड का मान = य है। इसको ८ से गुणा करके २७ से भाग

---

१. जिस व्यक्ति के नाम से (४।२ श्लो) के अनुसार जिस विहित नक्षत्र के साथ उत्तम मेलापक बनता हो उसके लिये वही नक्षत्र इष्टनक्षत्र कहलाता है।

२. जिसके लिये जो विहित आय हो वही इष्ट आय कहा जाता है।

दिया तो $\frac{य+८}{२७}$ लब्धि 'क' आई और शेष नक्षत्र की संख्या 'न' हुई। अर्थात् ऐसा समीकरण हुआ—

$$\frac{८य}{२७} = क + \frac{न}{२७}$$

दोनों पक्षों को २७ से गुण दिया $८ य = २७ क + न$

फिर ८ से भाग दे दिया तो 'य' का मान $य = \frac{२७ क + न}{८}$ हुआ

फिर 'य' में ८ का भाग दिया तो लब्धि ग और शेष इष्ट आय हुआ।

अर्थात् ऐसा समीकरण हुआ— $\frac{य}{८} = ग + \frac{आ}{८}$

दोनों पक्षों को ८ से गुण दिया तो $य = ८ग + आ$ हुआ।

अब इन $\frac{२७ क + न}{८}$, $८ ग + आ$ दोनों य के मानों का समीकरण किया तो

$$\frac{२७क + न}{८} = ८ग + आ$$

अथवा $२७क + न = ६४ग + ८ आ$

समशोधन से— $क = \frac{६४ग + ८ आ - न}{२७}$ हुआ

२
२
१
२
१
०

यहाँ कुट्टकविधि से १ क्षेप में ६४, २७ इन दृढभाज्य और दृढहरों पर से बिल्ली हुई। इस पर से गुण ८ और लब्धि १९ हुई। अतः 'ते भाज्य-तद्भाजकवर्णमाने' इस बीजसूत्र के अनुसार—

$$\left.\begin{array}{l} ल = १९ = क \\ गु = ८ = ग \end{array}\right\}$$ हुआ।

उसके बाद 'अभीप्सितक्षेपविशुद्धिनिघ्न' इस बीजसूत्र के अनुसार रूपक्षेप संबन्धी (गु = ८) को इष्टक्षेप = (८ आ — न) से गुण के और अपने हार २७ से भाग देने पर।

$\frac{८ (८आ — न)}{२७} = \frac{६४ आ — ८ न}{२७}$ शेष '१० आ - ८ न' ग का मान हुआ।

इस (शेष = १० आ - ८ न) में 'इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते' इस विधि के अनुसार 'घ' इष्ट से गुणित २७ को (२७ घ को) जोड़ दिया तो भी 'ग' का मान हुआ—

$ग = २७ घ + १० आ - ८ न$ इससे 'य' मान में उत्थापन कर दिया तो—

$य = ८ ग + आ$

$= ८ (२७ घ + १० आ - ८ न) + आ$

$= २१६ घ + ८१ आ - ६४ न$, हुआ।

अब यहाँ घ=प+(न–१) मान के फिर 'य' के मान में उत्थापन किया तो—

य=२१६ घ+८१ आ–६४ न

=२१६ { प+(न–१) } +८१ आ—६४ न

=२१६ प+२१६ न–२१६+८१ आ–६४ न

=११६ प+१५२ न–२१६+८१ आ

=२१६ प+१५२ न–१५२–८१+८१ आ+१७

=२१६ प+१५२ (न–१)+(आ–१)+१७

यहाँ अन्तिम ३ खण्डों का योग यदि २१६ से अधिक हो तो य का मान ऋणात्मक कल्पना करके उससे गुणित २१६ को जोड़ देने से शेष धनात्मक और २१६ से कम बचेगा (अर्थात् अन्तिम ३ खण्डों में २१६ का भाग देने से जो शेष बचे) वही पिण्ड का मान होगा। अब इसी २१६ से अल्प पिण्ड में इष्टगुणित २१६ को जोड़ कर अभीष्ट चौड़ाई से भाग देने पर लब्धि लम्बाई आ जायगी ॥१॥

वस्तुप्रदीपे विशेषः (१३६ श्लो०)—

विस्तारहस्तेन विभाजितानि पिण्डानि दीर्घाणि भवन्ति तानि ।
नो वाऽथ दैर्घ्याभ्युदितैश्च हस्तैर्विभाजयेद्विस्तरगा गृहस्य ॥ २ ॥
शेषं चतुर्विंशतिसङ्गुणं तु विभाजयेद्धस्तमितैश्च तद्वद् ।
भवन्ति तान्यङ्गुलसंज्ञकानि गृहे गृहस्थस्य कराऽनुमानात् ॥ ३ ॥

यदि पिण्ड लम्बाई से भाग देने पर निःशेष न होता हो तो शेष को २४ से गुणा करके चौड़ाई भाग देने से लब्धि अङ्गुल एवं फिर अङ्गुल शेष को ८ से गुणके उसी भाजक से भाग देने पर लब्ध जब आ जाता है। केवल लम्बाई में ही अङ्गुलादि होना चाहिये क्योंकि शास्त्रों में लिखा है—

अभीष्टांशादिसिद्ध्यर्थं क्षिपेद्दैर्घ्येऽङ्गुलादिकमिति । शेष स्पष्ट है ॥२–३॥

दैर्घ्यविस्तृतिकल्पनम्—

पूर्वपश्चिमतो दैर्घ्यं सपादं दक्षिणोत्तरम् ।
शुभावहं चन्द्रविद्धं सूर्यविद्धं न शोभनम् ॥ ४ ॥

पूर्वपश्चिम जितनी चौड़ाई हो उससे सवाई अधिक उत्तर दक्षिण होना चाहिये इसको चन्द्रवेध कहते हैं। यह शुभ होता है। इससे विपरीत सूर्य वेध अशुभ होता है ॥ ४ ॥

कुछ अल्पज्ञलोग चौड़ाई से ठीक २ सवाई लम्बाई में ग्रहण करते हैं पर ऐसा

---

१. ग्रन्थान्तरे विशेषः—

गेहे ग्रामे तथा क्षेत्रे तडागारामभूमिषु । चन्द्रविद्धस्तु कर्तव्यः सौरः कोष्ठाग्निजीविनाम् ॥

अन्यत्र च—

चन्द्रविद्धं गृहं कुर्यात् सूर्यविद्धो जलाशयः । वाटिका तूभयोर्विद्धा देवागारं तु षतुंलम् ॥ इति ।

करने से ठीक २ अनुकूलपिण्ड नहीं बनता। अतः सवाई के करीब लम्बाई ग्रहण कर लेना चाहिये। यदि ठीक २ सवाई लम्बान में मिल जाय तो अत्युत्तम ही है।

अन्यप्रकारेण पिण्डानयनम्—

कालिदासेन ज्योतिर्विदाभरण आयत–चतुरस्र–विषमचतुर्भुज-त्रिभुजक्षेत्राणां फलानयनप्रकाराः प्रदर्शितास्तथा हि—

क्षेत्रे भवेत्क्षेत्रफलं चतुर्भुजे तत्कोटिदोराहतिरेवमायते[1]।

त्र्यस्रेऽपि दोःकोटिहतेर्दलं फलं दोःकोटिलम्बैर्विषमे च कल्पितम् ॥५॥

समचतुर्भुज तथा आयताकार क्षेत्र में भुजकोटि (लम्बाई-चौड़ाई) का गुणन फल क्षेत्रफल होता है। समकोण त्रिभुज में भुजकोटि के गुणनफल का आधा पिण्ड होता है। विषमकोण चतुर्भुज (विषमायत) में भुज–कोटि (या लम्ब) के द्वारा फल की कल्पना करे (इसके लिये लीलावती देखिये) ॥ ५ ॥

राजमार्तण्डे १२ प्रकारा गृहा उक्ताः—

सर्वदोषैर्विनिर्मुक्तं गुणैः सर्वैरलङ्कृतम्।
प्रणम्य सर्वलोकेशं वास्तुलक्षणमुच्यते ॥ ६ ॥
आयतं चतुरस्रं च वृत्तं भद्रासनं तथा।
चक्रं विषमबाहुं च त्रिकोणं शकटाकृतिः ॥ ७ ॥
दण्डं पणवकस्थानं मुरजश्च बृहन्मुखम्।
व्यजनं कूर्मपृष्ठं च धनुः सूर्पं च षोडश ॥ ८ ॥
एवं षोडशसंस्थानं वस्तुलक्ष्म शुभाऽशुभम्।
चिन्तनीयं सदा विज्ञैरात्मश्रेयोऽभिलाषिभिः ॥ ९ ॥

इनमें १६ प्रकार के भवनों का नाम है। जिनका आकार नाम से ही स्पष्ट है ॥ ६-९ ॥

एषां फलानि राजमार्तण्डे—

आयते सिद्धयः सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः।
भद्रासने कृतार्थत्वं वृत्ते पुष्टिविवर्धनम् ॥ १० ॥
चक्रे दारिद्र्यमेवोक्तं शोको विषमबाहुके।
नृपाद्भीतिस्त्रिकोणे स्याच्छकटे च धनक्षयः ॥ ११ ॥
नश्यन्ति पशवो दण्डे पणवे लोचनक्षतिः।
मुरजे म्रियते भार्या बन्धुनाशो बृहन्मुखे ॥ १२ ॥

---

१. आयतादिक्षेत्राणां लक्षणानि मद्रचितरेखागणितेऽवलोक्यानि।

व्यजने वित्तनाशः स्याद्वधे वन्धनपीडनम् ।
सूर्पे धनक्षयं विद्याच्चापे चोरभयं भवेत् ॥ १३ ॥

आयताकार मकान सब सिद्धियों का देने वाला, चतुरस्र धनलाभ कराने वाला, भद्रासन कार्य में सफलता करने वाला, वृत्ताकार शारीरिक पुष्टि करने वाला, चक्राकार दरिद्र बनाने वाला, विषमबाहु शोक देने वाला, त्रिकोणाकार गृह राजभयकारक, शकटाकार धनका नाश करने वाला, दण्ड नामक गृह पशुओं की हानि करने वाला, पणवनाम का गृह नेत्र की हानि करने वाला, मुरजाकार (मृदङ्गाकार) गृह स्त्री की मृत्यु करने वाला, वृहन्मुख नामक मकान बन्धुओं का नाश, व्यजन नामक मकान धनका नाश करने वाला, कूर्मपृष्ठ वधबन्धनकर, सूर्पनामक भवन धननाशक और धनुनाम का मकान चौरभय करने वाला होता है ॥ १०-१३ ॥

साम्प्रतमायताकारं गृहं चतुरस्राकारा देवालयवापीतडागादयो वृत्तानुरूपः कूपो निर्मीयते । तेनैतेषामेवेह फलानयनप्रकाराः प्रदर्शिताः । तत्र नगरादौ दण्डैर्मित्वा दण्डवर्गात्मकं गृहदेवालयवापीतडागादिषु हस्तैर्मित्वा हस्तवर्गात्मकमासनादौ चाङ्गुलवर्गात्मकं फलमानेयमित्युक्तं (वास्तुराजव० ३।२)—

आयो दण्डकराङ्गुलादिमपितो हस्ताङ्गुलैरंशतः ।
क्षेत्रस्याप्यनुमानतोऽपि नगरे दण्डेन मानं पुरे ॥ १४ ॥

यदि क्षेत्र दण्ड (४ हाथ के माप) से नापा गया हो तो दण्डवर्गात्मक हाथ से नापा गया हो तो हस्तवर्गात्मक एवं अङ्गुल से नापा गया हो तो अङ्गुलवर्गात्मक क्षेत्रफल होता है । इसी क्षेत्रफल पर से आय, वार, अंशादि का वक्ष्यमाण रीति से आनयन करना चाहिये और भूमि के मान से मापक का विचार करना चाहिये । नगर और पुर बसाने के लिये दण्ड से नाप कर क्षेत्रफल निकालना चाहिये ॥ १४ ॥

केषां करेणायादीनां विचारः कर्तव्यः—

स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरेण वा ।
गर्भमात्रं भवेद् गेहं नृणां प्रोक्तं पुरातनैः ॥ १५ ॥

गृहपति के या ज्येष्ठपत्नी के हाथ से पिण्डका आनयन करके गर्भमात्र गृह बनावें (अर्थात् पिण्ड के भीतर भीति उठावे) ॥ १५ ॥

---

१. बृ० वा० मालाकारने इसको भूमिलक्षणप्रकरण में लिख दिया है ।

२. यत्र पुनर्महक्षेत्रफलं तत्र दण्डैर्मित्वा हस्तात्मक आयो भवति । हस्तमिते क्षेत्रेऽङ्गुलात्मक आयो भवतीत्युक्तं रत्नमालाटीकायां महादेव्याम् । तथाहि वास्तुशास्त्रे—

यत्र हस्तैर्मिते क्षेत्रे तत्रैव हस्तसम्मितः । हस्तमाने तु तत्रैव ग्राह्यः स स्यादिहाङ्गुलैः ॥
अंगुलैस्तु मिते क्षेत्रे सांगुलैस्तदलाभतः । पादैर्वाऽथ यवैर्वापि ग्राह्यः क्षेत्राऽनुसारतः ॥ इति ।

अन्यत्र च—

स्वामिहस्तप्रमाणेन ज्येष्ठपत्नीकरेण वा ।
ज्येष्ठपुत्रकरेणाऽपि कर्मकारकरेण च ॥ १६ ॥
अनामिकान्तो हस्तः स्यादूर्ध्वबाहुशरांशकः ।
तर्जनीमध्यमाभ्यां च प्रमाणं नैव कारयेत् ॥ १७ ॥

गृहके स्वामी के या उसकी बड़ी स्त्री के या बड़े पुत्रके अथवा कारीगर के हाथ से पिण्ड नापना चाहिये। अनामिका अङ्गुली तक (अर्थात् बाहु को ऊपर उठाने से जितनी ऊँचाई हो उसके पञ्चमांशतुल्य) हाथ मानना चाहिये । तर्जनी और मध्यमा तक हाथ मानना उचित नहीं होता ॥१६-१७॥

अन्यत्र विशेषः—

गृहेषु कर्महस्तेन यद्वा स्वामिकरेण च ।
देवतानां तु धिष्णेषु कर्महस्तेन केवलम् ॥ १८ ॥

गृहमें स्वामी के अथवा कारीगर के हाथ से पिण्ड स्थिर करना चाहिये। और देवता के मन्दिर में केवल कर्मकर के हाथ से ही पिण्ड स्थिर करना चाहिये ॥ १८ ॥

एवं पिण्डानयनं कृत्वाऽऽयाद्यानयनं कार्यम्। तत्रादौ तदुपयोगित्वं (रत्नमालायाम् १७।१)—

आयव्ययर्क्षांशकचन्द्रताराबलानि शास्त्रादवलोक्य सम्यक् ।
आयुर्धनाऽऽरोग्ययशोभिवृद्ध्यै गृहं गृहस्थो हि निधापयीत ॥१९॥

आय, व्यय, नक्षत्र, अंश, चन्द्रमा, तारा इनके बल को शास्त्राऽनुसार देख कर आयु, धन, आरोग्यता और यश इत्यादि की वृद्धि के लिये गृहस्थ घर बनावें ॥ १९ ॥

आयाद्यानयनम् (मु० चि० १२।११-१२)

पिण्डे नवाङ्काङ्गगजाग्निनागनागाब्धिनागैर्गुणिते क्रमेण ।
विभाजिते 'नागनगाङ्कसूर्यनागर्क्षतिथ्यर्क्षखभानुभिश्च ॥ २० ॥
आयो वारोंशको द्रव्यमृणमृक्षं तिथिर्युतिः ।
आयुश्चाथ गृहेशर्क्षगृहभैक्यं मृतिप्रदम् ॥ २१ ॥

गृहपिण्डको नव स्थानों में रख कर क्रम से ९।९।६।८।३।८।८। ४।८ इन अङ्कों से अलग २ गुणा करके गुणनफल में ८।७।९।१२।८। २७।१५।२७।१२०। इन अङ्कों से भाग देने पर जो शेष बचे वह क्रमसे आय, वार, अंश, द्रव्य, ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग और आयु होती है।

उदाहरण--

अभीष्ट पिण्ड ६८७ को पूर्वरीति से ९ । ९ । ६ । ८ । ३ । ८ । ८ । ४ । ८ से गुणा करके ८ । ७ । ९ । १२ । ८ । २७ । १५ । २७ । १२० से भाग दिया तो क्रमसे लब्धि और और शेष हुए (लब्धिको प्रयोजनाभाव से त्याग दिया)

(१) $\frac{६८७\times९}{८} = \frac{६१८३}{८} = ७७२\frac{७}{८}$ अर्थात् शे० ७ आय

(२) $\frac{६८७\times९}{७} = \frac{६१८३}{७} = ८८३\frac{२}{७}$ अर्थात् शे० २ बार

(३) $\frac{६८७\times६}{९} = \frac{४१२२}{९} = ४५७\frac{५}{९}$ अर्थात् शे० ९ अंश

(४) $\frac{६८७\times८}{१२} = \frac{५४९६}{१२} = ४५७\frac{१२}{१२}$ अर्थात् शे० १२ द्रव्य

(५) $\frac{६८७\times३}{८} = \frac{२०६१}{८} = २५७\frac{५}{८}$ अर्थात् शे० ५ ऋण

(६) $\frac{६८७\times८}{२७} = \frac{५४९६}{२७} = २०३\frac{१५}{२७}$ अर्थात् शे० १५ नक्षत्र

(७) $\frac{६८७\times८}{१५} = \frac{५४९६}{१५} = ३६६\frac{६}{१५}$ अर्थात् शे० ६ तिथि

(८) $\frac{६८७\times४}{२७} = \frac{२७४८}{२७} = १०१\frac{२१}{२७}$ अर्थात् शे० २१ योग

(९) $\frac{६८७\times८}{१२०} = \frac{५४९६}{१२०} = ४५\frac{९६}{१२०}$ अर्थात् शे० ९६ आयु हुआ ।

(१) आयनामानि—

ध्वजो धूमोऽथ सिंहः श्वा सौरभेयः खरो गजः ।
उष्ट्रश्चेति क्रमेणैतदायाष्टकमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

इसका अर्थ अति सरल है ॥ २२ ॥

एषां फलानि (ज्यो० नि०)—

कीर्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखम् ।
रोगश्चेति गृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात् ॥ २३ ॥

इसका अर्थ भी स्पष्ट है । तथापि इन दोनों की स्फुटता के लिये चक्र देखिये ॥ २३ ॥

१	२	३	४	५	६	७	८	संख्या
ध्वज	धूम	सिंह	श्वान	वृष	खर	गज	उष्ट्र	आयमान
कीर्ति	शोक	जय	शत्रुता	धन	दरिद्रता	सुख	रोग	फल

आयानां स्वरूपाणि च (वास्तुराजव० ३।६)—

ध्वांक्षः शिल्पितपस्विनां हितकरस्तेषां मुखं नामवद्-
ध्वांक्षः काकमुखो बिडालवदनो धूमो ध्वजो मानुषः ।
सर्वे पक्षिपदा हरेरिव गला हस्ता नरस्येव तत्
प्राच्याः सृष्टिगताः क्रमेण पतयो ह्यष्टौ च ते तन्मुखाः ॥२४॥

ध्वांक्ष (काक) आय शिल्पि (कारीगर) और तपस्वियों के घर में शुभ होता है। और उसका काक के सदृश मुख है। धूम का विडाल के सदृश मुख है। सिंह का मनुष्य के सदृश मुख है। शेष आयों का अपने २ नाम सदृश मुख है। और सबों के पक्षी के ऐसे पैर, सिंह के समान गला और मनुष्य के ऐसे हाथ हैं। पूर्वादिक दिशाओं में क्रमसे सब आय बली होते हैं और उसी दिशा में उनका मुख होता है (अतः गृह का मुख भी उसी ओर करना चाहिये) ॥ २४ ॥

विशेषो (विश्वकर्मप्र० १०२)—

सिंहायः सर्वथा त्याज्यो ब्राह्मणेन वृषेप्सुना ।
सिंहाये चण्डता गेहे स्वल्पापत्यश्च जायते ॥ २५ ॥
ध्वजाये पूर्णसिद्धिः स्याद् वृषायः पशुवृद्धिदः ।
गजाये सम्पदां सिद्धिः शेषायाः शोकदुःखदाः ॥ २६ ॥

बैल की वृद्धि चाहने वाले ब्राह्मण को सिंह आय वाला मकान कदापि नहीं बनवाना चाहिये। क्योंकि सिंह आय के मकान (घर) में क्रूरता और सन्तान की कमी होती है। ध्वज आय वाले मकान में परिपूर्ण सिद्धि, वृष आय वाले मकान में पशुओं की वृद्धि, गज आय वाले मकान में नाना तरह की सम्पत्ति का लाभ होता है। और शेष (समसंख्यक) आयों वाले मकान अनेक प्रकार के शोक दुःख देने वाले होते हैं ॥ २५-२६ ॥

(क) ब्राह्मणादिजातिपरत्वेन ग्राह्यायाः—

अग्रजानां ध्वजायः स्याद् ध्वजकुञ्जरगोमृगाः ।
क्षत्रस्य ध्वजसिंहेभा वैश्यस्य शुभदाः स्मृताः ॥ २७ ॥
ध्वजो मृगादिः शूद्राणां सर्वेषां वृषभः शुभः ।
हीनजातेः समा देयाः सूक्ष्मकृत्येऽङ्गुलात्मकः ॥ २८ ॥

ब्राह्मण के लिये ध्वज आय, क्षत्रियों के लिये ध्वज, कुञ्जर, गो (वृष) और मृग आय, वैश्यों के लिये ध्वज, सिंह और गज आय एवं शूद्रों के लिये ध्वज और मृगादि आय शुभदायक होते हैं। सब वर्णों के लिये वृष आय अच्छा होता है। हीन जातियों के लिये सम (२।४।६।८) आय अच्छा होता है। किन्तु कहीं २ इस से विपरीत वचन भी मिलता है—

ब्राह्मणाय ध्वजं दद्यात्सिंहं दद्यात्तु क्षत्रिये ।
वैश्यस्य तु वृषं दद्याद्गजं शूद्रगृहेऽर्पयेत् ॥
चर्मकारगृहे धूमः श्वानोऽपि रजकस्य वै ।
खरो वेश्यागृहे दद्याद् ध्वांक्षश्चान्यत्र जातिषु ॥ इति ।

सूक्ष्मकृत्य में अङ्गुलात्मक पिण्ड ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् जो

वस्तु १ हाथ से कम लम्बी चौड़ी हो उसमें अङ्गुलात्मक पिण्ड बना के आयादि का साधन करे ॥ २७–२८ ॥

(ख) राशिवशात्—

कर्कवृश्चिकमीनानां ध्वजायः शुभदो मतः ।
वृषभायः शुभः प्रोक्तो मेषसिंहधनुर्भृताम् ॥ २९ ॥
तुलामिथुनकुम्भानां गजायो वाञ्छितप्रदः ।
वृषकन्यामृगाणां च सिंहायः शुभदो भवेत् ॥ ३० ॥

ब्राह्मणराशि (४।८।१२) वालों के लिये ध्वज आय, क्षत्रिय राशि (१।५।९) वालों के लिये वृष आय, वैश्यराशि (२।६।१०) वालों के लिये सिंह आय और शूद्र राशि (३।७।११) वालों के लिये गज आय शुभदायक होता है ॥ २९–३० ॥

(२) वाराः—

सूर्यारवारराश्यंशाः सदा वह्निभयप्रदाः ।
शेषग्रहाणां वारांशाः कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदाः ॥ ३१ ॥

सूर्य और मङ्गल के वार, राशियाँ और अंश सर्वदा अग्निभय करने वाले होते हैं। और शेष ग्रहों (चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि) के वारादि कर्ता की अभीष्ट सिद्धि करने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥

(३) अंशाः—

गृहपिण्डं रसैर्गुण्यं ग्रहैश्चापि विभाजितम् ।
यच्छेषं तद् भवेदंशस्तस्येशाश्चापि कीर्तिताः ॥ ३२ ॥
अर्कश्चन्द्रः कुजो राहुर्जीवमन्दज्ञकेतवः ।
भृगुपुत्रः क्रमेणैते अंशाधीशाः प्रकीर्तिताः ॥ ३३ ॥

इसका अर्थ भी स्पष्टतर ही है। यहाँ अंश शब्द से कोई २ जन्म-सम्पत्···इत्यादि ताराओं का ग्रहण करते हैं। परन्तु ताराओं का विचार अलग है इसलिये यह मत ठीक नहीं है। 'अंशक शब्द से मेषादिनवांशों का ग्रहण है' ऐसा श्रीहृषीकेशोपाध्याय जी ने लिखा है ॥ ३२–३३ ॥

(४) द्रव्याणि (बृ० दै० र०)—

पिण्डमष्टगुणं कार्यं सूर्यैश्चापि विभाजितम् ।
अवशिष्टं भवेद् द्रव्यं तत्तन्नामाब्रवीदिदम् ॥ ३४ ॥
वस्त्राणि शस्त्राणि च पुस्तकानि द्रव्याणि धान्यानि वसुन्धरा च ।
कुटुम्बविद्यापशुवाटिकाश्च भाण्डानि भूषाश्च धनानि द्वादश ॥३५॥

इन दोनों पद्यों का अर्थ सुस्पष्ट है ॥ ३४–३५ ॥

(५) ऋणानयने न कश्चिद्विशेषः ।

(६) नक्षत्राणि (बृ० दै० र० ८६।११९)—

गृहपिण्डं गजैर्हत्वा सप्तत्रिंशतिभिर्भजेत् ।
यच्छेषं तद्भवेद्दक्षमश्विन्यादि यथाक्रमम् ॥ ३६ ॥

इसका अर्थ भी सरल है। नक्षत्रों का फल तारा द्वारा जानना चाहिये (३५ पृ० देखो)। और 'त्रिभिस्त्रिभिः' इत्यादि पद्य (३३ पृ० दे०) द्वारा भी कुछ लोग नक्षत्र का शुभाऽशुभत्व देखते हैं। नक्षत्रों के नाम के लिये मेरा फलितनवरत्नसंग्रह (१।३६–४२) देखिये ॥ ३६ ॥

(७) क. तिथ्यानयनम् (बृह दै० रञ्जने ८६।१२१)—

गृहपिण्डं गजैर्हत्वा तिथिभिर्भागमाहरेत् ।
शेषं चाऽत्र तिथिर्ज्ञेया वास्तुशास्त्रविशारदैः ॥ ३७ ॥

इस का अर्थ सरल है ॥ ३७ ॥

ख. प्रकारान्तरेण—

शक्राहतं क्षेत्रफलं त्रिंशद्भक्तावशेषकम् ।
तिथिः प्रतिपदो ज्ञेया दर्शं रिक्तां च वर्जयेत् ॥ ३८ ॥

पिण्ड को १४ से गुणा करके ३० से भाग देने पर शुक्लपक्ष की प्रतिपद से आरम्भ करके ३० तिथियाँ होती हैं। इनमें रिक्ता (४ । ९ । १४ । १९ । २४ । २९) और अमा ३० को छोड़ कर शेष तिथियाँ शुभदा होती हैं ॥३८॥

ग. अथान्यथा तिथिवारलग्नानयनम् (वास्तुराजव० ३।२०)—

आयर्क्षताराव्ययमंशकञ्च एकत्र कृत्वा त्रिभजेत्क्रमेण ।
तिथ्या च वारेण तथैव लग्नैः शेषेषु तान्येव भवेयुरङ्के ॥ ३९ ॥

आय, नक्षत्र, तारा, व्यय, अंश इन सबों की संख्याओं को इकट्ठा करके (जोड़के) क्रमसे १५, ७ और १२ से भाग देने पर जो शेष बचे वही तिथि, वार और लग्न होती है।

उदाहरण—

आय ७, नक्षत्र (स्वाती) १५, तारा (मनोहरा) २, व्यय ७ अंश ९ इन संख्याओं के योग=७+१५+२+७+९=४० में, १५ का भाग दिया तो शेष १० मी तिथि हुई। ७ का भाग दिया तो शेष ५ गुरुवार हुआ। एवं १२ का भाग दिया तो ४ कर्क लग्न हुई। एवं सर्वत्र ॥ ३९ ॥

घ. पुनरन्यप्रकारेण—

आयर्क्षव्ययतारकांशमधिपं योज्यं फले क्षेत्रजे
भक्तार्कैरिह लग्नमष्टगुणिते लग्ने शरैर्कैर्हृते ।

शेषाङ्केन तिथिः स्वनामसमकं क्षेत्रे फलं तन्मिथो
नन्दघ्ने मुनिभाजिते प्रविदितः सूर्यादिवारः स्फुटः ॥४०॥

आय, नक्षत्र, व्यय, तारा और अंश इनके अङ्कों को क्षेत्रफल में जोड़ कर १२ से भाग देने पर शेष लग्न होती है। लग्नसंख्या को ८ से गुणा कर के १५ से भाग देने पर शेष तिथि होती है। तिथि को ९ से गुण के ७ का भाग देने से सूर्यादि वार क्रम से होते हैं। इनका फल नाम तुल्य होता है ।

उदाहरण—

आय, नक्षत्र, व्यय, तारा और अंश इनके अङ्कों के योग—७+५५+७+२+९=४० को क्षेत्रफल ६८७ में जोड़ के ६८७+४०=७२७ के १२ से भाग दिया तो शेष ७ लग्न हुई। लग्नसंख्या ७ को ८ से गुणा के १५ से भाग दिया तो $\frac{७×८}{१५}$ शेष ११ तिथि हुई। तिथि ११ को ९ से गुण के ११+९=९९ इसमें ७ का भाग दिया तो शेष १ रविवार हुआ। इसी तरह सर्वत्र समझना चाहिये ॥ ४० ॥

(८) योगानयनम्—

गृहपिण्डं गजैर्हत्वा भक्तं नक्षत्रसंख्यया ।
विष्कम्भादियुतिर्ज्ञेया नामतुल्यं फलं विदुः ॥ ४१ ॥
अतिगण्डो धृतिः शूलं गण्डव्याघातवज्रकाः ।
परिघश्च व्यतीपातो वैधृतिर्वर्जिता गृहे ॥ ४२ ॥

प्रथमश्लोक का अर्थ स्पष्ट है। ६ अतिगण्ड, ९ शूल, १० गण्ड, १३ व्याघात, १५ वज्र, १७ व्यतीपात, १९ परिघ और २७ वैधृति ये योग गृह में वर्जित हैं ॥ ४१–४२ ॥

फलविशेषः (विश्वकर्मप्र० २१२)—

कुयोगे धनधान्यादिनाशः पातश्च मृत्युदः ।
वैधृतिः सर्वनाशाय नक्षत्रैक्ये तथैव च ॥ ४३ ॥

इसकी टीका स्पष्ट है। योगों के नाम के वास्ते मेरा 'फलितनवरत्न-संग्रह' देखिये ॥ ४३ ॥

(९) गृहायुः—

गृहस्य पिण्डं करिभिर्त्रिगुण्यं विभाजितं शून्यदिवाकरेण ।
यच्छेषमायुः कथितं मुनीन्द्रैरायुष्यपूर्णे भवनं शुभं स्यात् ॥ ४४ ॥

गृह पिण्ड को ८ से गुणा करके १२० का भाग देने पर शेष आयु होती है। पूर्ण आयु वाला गृह शुभदायक होता है ॥ ४४ ॥

आयुषि पूर्णे केन दोषेण गृहविनाशः (वास्तुराजव० ३।२४-२६)—

हस्तात्मकं क्षेत्रफलं गजाहतं संवत्सरैर्भाजितलब्धकं यत् ।
तत्खेन्दुगुण्यं भवनस्य जीवितं यच्छेषकं भूतहृतं विलीयते ॥ ४५ ॥

पृथिव्यापोऽनलो वायुराकाश इति पञ्चभिः ।
गृहस्यायुषि सम्पूर्णे विनाशो भवति ध्रुवम् ॥ ४६ ॥
जीर्णं पतति भूतत्त्वे तोयाग्न्योः स्पात्तदुद्भवम् ।
वायौ रोगस्तथाऽऽकाशे शून्यतामेति मन्दिरम् ॥ ४७ ॥

हस्तात्मक क्षेत्रफल को ८ से गुणा करके ६० का भाग देने से जो लब्ध हो उसको १० से गुणा करने पर जो गुणनफल आवे उतने वर्ष तक उस गृह का जीवन (आयु) होता है। और शेष में ५ का भाग देने से यदि १ शेष बचे तो पृथिवी तत्त्व से, २ शेष बचे तो जलतत्त्व से, ३ शेष बचे तो अग्नितत्त्व से, ४ शेष बचे तो वायुतत्त्व से और ५ शेष बचे तो आकाशतत्त्व के द्वारा आयु पूर्ण होने पर उस गृह का विनाश होता है। पृथिवीतत्त्व हो तो पुराना होकर गिर जाता है। जलतत्त्व हो तो जलके सम्बन्ध से गिरता है। वायुतत्त्व हो तो उसके अङ्गों (लकड़ी, दिवाल इत्यादि) में रोग हो जाने से गिर पड़ता है। आकाशतत्त्व हो तो वह मकान आयुपूर्ण हो जाने पर शून्य हो जाता है ॥ ४५-४७ ॥

(ख) प्रकारान्तरेण—

तिथ्यस्त्रिनिघ्नाश्च शरघ्नवारा वेदघ्नयोगाश्च रसघ्नभानि ।
कृत्वैकपिण्डं खगजैर्विभक्तं शेषं समाव्यूहमितं तदायुः ॥४८॥

तिथि संख्या को ३ से, वारसंख्या को ५ से, योग संख्या को ४ से और नक्षत्र संख्या को ६ से गुणा करके सबों का योग करना; उसमें ८० का भाग देने पर जो शेष बचे उतनी आयु उस गृह की होती है ॥ ४८ ॥

फलम् (विश्वकर्मप्र० २१३)—

आयुर्विहीने गेहे तु दुर्भगत्वं प्रजायते ।

गृह की आयु समाप्त हो जाने पर अशुभफल होने लगते हैं। इसलिये उस समय उसके लिये वास्तुशान्ति इत्यादि करनी चाहिये।

(१०) व्ययानयनम् (रत्नमालायाम् १७।५)—

धिष्ण्ये विभक्ते वसुभिर्व्ययः स्याद्धयायमूनव्ययमालयं सन् ॥४९॥

नक्षत्र संख्या में ८ का भाग देने से शेष व्यय होता है। आय की संख्या अधिक और व्यय की कम हो तो वह मकान शुभदायक होता है ॥ ४९ ॥

विशेषः (रत्नमालाटीका० १७।५)—

पिशाचो राक्षसो यक्ष इति त्रेधा व्ययो मतः ।
समागम(धिक)न्यूनताभिरायसंख्या यथाक्रमम् ॥ ५० ॥

आय—व्यय दोनों बराबर हो तो पिशाच, आयकी संख्या से व्यय अधिक हो तो राक्षस और आय की संख्या से व्यय संख्या कम हो तो यक्ष नामका मकान होता है । यक्ष नामवाला गृह अच्छा होता है ॥ ५० ॥

(११) अंशानयनम् (रत्नमालायाम् १७।६)

व्ययान्विते क्षेत्रफले गृहस्य ध्रुवादिनामाक्षरमिश्रिते च ।
त्रिभिर्विभक्ते क्रमशोंशकः स्यादिन्द्रो यमो भूपतिरन्तकोऽसन् ॥५१॥

व्यय की संख्या को क्षेत्रफल (पिण्ड) में जोड़ के ध्रुवादि गृहों के नामाक्षर संख्या को जोड़ देना । उस योगफल में ३ का भाग देने से एकादि शेष बचे तो क्रमसे इन्द्र, यम और भूप का अश होता है । यमके अंश वाला गृह अच्छा नहीं होता ।

उदाहरण—

क्षेत्रफल ६८७ में व्यय की संख्या ७ और ध्रुवादि नाम की संख्या २ जोड़ ६८७+७+२=६९६ के ३ का भाग दिया तो ३ शेष बचे इसलिये भूपका अंश हुआ ॥ ५१ ॥

फलविशेषः (विश्वकर्मप्र० १६६)—

इन्द्रांशे पदवीवृद्धिर्महत्सौख्यं प्रजायते ।
यमांशे मरणं नूनं रोगशोकमनेकधा ॥
राजांशे धनधान्याप्तिः पुत्रवृद्धिश्च जायते ॥ ५२ ॥

इन्द्र का अंश गृहमें आवे तो गृहेश के पदवी की वृद्धि और अधिक सौख्य होता है । यमांशमें मृत्यु और रोग-शोक इत्यादि अनेक कष्ट होते हैं । राजा के अंश में धन-धान्य का लाभ और पुत्रवृद्धि होती है ॥ ५२ ॥

विशेषः (वास्तुराजवल्लभे ३।६)

तन्मूले व्ययहर्म्यनामसहिते भक्ते त्रिभिस्त्वंशकः
स्यादिन्द्रो यमभूपती क्रमवशाद्देवे सुरेन्द्रो हितः ।
वेद्यां चाऽत्र यमस्तु पण्यभवने नागे तथा भैरवे
राजांशे गजवाजियाननगरे राजालये मन्दिरे ॥ ५३ ॥

पिण्ड (गृहक्षेत्रफल) में व्यय और ध्रुवादि नामाक्षर को जोड़ के ३ का भाग देने पर एकादिशेष में क्रम से इन्द्र, यम और राज अंश होता है । देवालय में इन्द्र का अंश, वेदी, पण्य (बाजार), सर्पगृह, भैरवका मन्दिर

इनमें यम का अंश एवं गजशाला, अश्वशाला, यान (सवारी) गृह, नगर, राजगृह और साधारण गृह इनमें राज अंश शुभदायक होता है ॥ ५३ ॥

(क) ध्रुवादिनामज्ञानम् (रत्नमालायाम् १७।६–७)—

वेदघ्नपिण्डे नृपभाजिते च शेषं भवेन्नाम ध्रुपादिकं च ।
ध्रुवं च धान्यं च जयं च नन्दं खरञ्च कान्तं च मनोरमं च ॥५४॥
सुवक्त्रसंज्ञं खलु दुर्मुखं च क्रूरं विपक्षं धनदं क्षयञ्च ।
आनन्दसंज्ञं विपुलाह्वयं च स्यात्षोडशं तद्विजयाभिधानम् ॥५५॥

पिण्ड को ४ से गुण के १६ से भाग देने पर शेष ध्रुवादि गृह के नाम होते हैं। शेष स्पष्ट है।

उदाहरण—

पिण्ड संख्या ६८७ को ४ से गुण के १६ का भाग दिया, तो = $\frac{६८७ \times ४}{१६}$ १७१ लब्धि और १२ शेष हुए। इसलिये 'धनद' ध्रुवादि नाम हुआ। यहाँ पिण्ड को ४ से गुण के १६ का भाग देने से ४ ८ १२ और १६ यही शेष बचते हैं इसलिये आगे के प्रकार से ही ध्रुवादि का नाम लाना चाहिये। और उसी प्रकार से ध्रुवादिका नाम लाकर पहले अंशानयन भी किया गया है ॥ ५४–५५ ॥

(ख) प्रकारान्तरेण (मु० चि० १२।८–९)—

दिक्षु पूर्वादितः शाला ध्रुवा भूद्वौ कृता गजाः ।
शालाध्रुवाङ्कसंयोगः सैको वेश्म ध्रुवादिकम् ॥ ५६ ॥
तिथ्यर्काष्टाष्टिगोरुद्रशक्रे नामाक्षरं त्रयम् ।
भूद्व्यब्धीष्वङ्गदिग्वह्नित्रिश्वेषु द्वौ नगाब्धयः ॥ ५७ ॥

पूर्वादिक दिशाओं में घर का द्वार रहने से क्रमसे १, २, ४ और ८ शाला ध्रुवाङ्क होते हैं। जिन २ दिशाओं में द्वार बनाना हो उन २ शाला-ध्रुवाङ्कों को जोड़ के उसमें १ और मिला देने से ध्रुवादि गृहके नाम हो जाते हैं। १५।१२।८।१६।६।११।१४ योग हो तो ३ अक्षर का नाम होता है। १।२।४।५।६।१०।३।१३ योग हो तो २ अक्षर नाम होता है। एवं ७ योग हो तो ४ अक्षर का नाम होता है ॥ ५६–५७ ॥

(क) एतत्प्रस्तारक्रमश्च (रत्नमा० १७।८)—

स्थापयेल्लघुमधो गुरोः परं स्याद्यथोपरि तथैव पूरयेत् ।
पश्चिमं च गुरुभिः पुनः पुनः सर्वलध्ववधिरित्ययं विधिः ॥५८॥

'ऽ' इस चिह्न को गुरु और '।' इस चिह्न को लघु कहते हैं। प्रथम पंक्तिमें सब गुरु लिखना उसके बाद नीचे की (द्वितीय) पंक्तिमें प्रथम गुरुके नीचे लघु रखके बाकी जैसा ऊपर हो वैसा ही उनके नीचे भी लिख

देना। फिर तीसरी पंक्तिमें भी प्रथम गुरु के नीचे लघु लिख कर उसके आगे सर्वत्र जैसा ऊपर हो वैसा ही लिखना और पीछे जो लघु छूट गये हैं उनके नीचे गुरु रख देना यही क्रम बार २ तब तक करते रहना चाहिये जब तक सबके सब लघु न हो जायँ। ऐसा करनेसे प्रस्तार तैयार हो जायगा (यहाँ ध्रुवादि का प्रस्तार बनानेके लिये ४ गुरु प्रथम पंक्तिमें लिखकर प्रस्तार बनाना चाहिये)॥ ५८॥

(ख) प्रकारान्तरेण (मुहूर्तगण० १८।१०)

लिखेदेकान्तराद्याद्ये एकमेकं गुरुं लघुम्।
द्वयं द्वयं द्वितीये तु चतुरश्चतुरस्त्रिके॥
अष्टावष्टौ चतुर्थेऽयं प्रस्तारः षोडशावधि॥ ५९॥

प्रथम पंक्तिमें ऊर्ध्वाधर १ गुरु फिर १ लघु इस क्रमसे १६ तक लिखे। फिर दूसरी पंक्तिमें दो दो गुरु और दो दो लघु इस क्रमसे लघु बराबर लिखे। उसके बाद ४, ४ गुरु और ४, ४ लघु बराबर लिखे एवं चौथी पंक्तिमें ८ गुरु और ८ लघु लिखे ऐसा करने से १६ गृह का प्रस्तार तैयार हो जायगा॥ ५९॥

एषां विन्यासः (रत्नमालायाम १७।१०)—

प्रदक्षिणं सद्‌मुखादलिन्दं विद्याल्लघुस्थानसमाश्रितश्च।
गृहस्य पूर्वादिगतेष्वलिन्देष्वेवं भवेयुर्दश षट् च भेदाः॥ ६०॥

इसका अर्थ पण्डितोंके लिये अति सरल है॥ ६०॥

एषां प्रपञ्चो (वास्तुप्रदीपे १४१–१४७)—

अथैकशालानि चतुर्गृहाणि धान्यं जयं स्यात्खरदुर्मुखे च।
धान्यं बुधैः पूर्वमुखं निरुक्तं जयं तथा दक्षिणदिङ्मुखं च॥६१॥
स्यात्पश्चिमास्यं खरसंज्ञकञ्च स्याद् दुर्मुखं सौम्यदिगास्यमेव।
ध्रुवं बुधैरूर्ध्वमुखं निरुक्तं चतुर्मुखं स्याद्विजयाभिधानम्॥६२॥
प्रोक्तानि चैवं खलु षड्‌गृहाणि दिशापराणां च दश प्रभेदाः।
नन्दं च कान्तं च मनोरमं च क्रूरं विपक्षं क्षयसंज्ञकं च॥६३॥
द्विशालकान्येव च षड् गृहाणि नन्दादिनामाक्षरवेदितानि।
नन्दं भवेत्प्राग्यमदिङ्मुखं च कान्तं पुनः प्राक्परदिङ्मुखाख्यम्॥६४॥
मनोरमं दक्षिणपश्चिमास्यं क्रूरञ्च पूर्वोत्तरदिङ्मुखं स्यात्।
विपक्षसंज्ञं यमसौम्यदिङ्मुखं क्षयं भवेत्सद्यःपरोत्तरास्यम्॥६५॥
अथ त्रिशालानि चतुर्गृहाणि सुवक्त्रसंज्ञं धनदं गृहं च।

आक्रन्दसंज्ञं विपुलं तथैव त्रिदिङ्मुखान्येव सदोदितानि ॥६६॥
सदोत्तराख्योनमथो सुवक्त्रं पराननोनं धनदं गृहं स्यात् ।
आक्रन्दकं दक्षिणदिङ्मुखोनं पूर्वाननोनं विपुलाह्वयश्च ॥६७॥

इन श्लोकों का अर्थ आगे के प्रस्तारचक्रसे ही अति स्पष्ट है ॥६१-६७॥

संख्या	द्वारदिशा	प्रस्तार	अक्षर सं०	ध्रुवादि नाम	फलानि
१	ऊर्ध्वमुख	SSSS	२	ध्रुवं	धनधान्यसुखप्रदम्
२	पूर्वं	ISSS	२	धान्यं	धनप्रदम्
३	दक्षिण	SISS	२	जयं	विजयप्रदम्
४	पूर्वं दक्षिण	IISS	२	नन्दं	स्त्रीहानिप्रदम्
५	पश्चिम	SSIS	२	खरः	सम्पद्विनाशः
६	पूर्वं पश्चिम	ISIS	२	कान्तं	पुत्रपौत्रप्रदम्
७	पश्चिम दक्षिण	SIIS	४	मनोरमम्	लक्ष्मीप्रदम्
८	पूर्वं पश्चिम दक्षिण	IIIS	३	सुमुखं	भोगदम्
९	उत्तर	SSSI	३	दुर्मुखं	विमुखप्रदम्
१०	पूर्वोत्तर	ISSI	२	उग्रं	सर्वदुःखदम्
११	दक्षिणोत्तर	SISI	३	रिपुदं	शत्रुभीतिदम्
१२	पूर्वदक्षिणोत्तर	IISI	३	वित्तदं	धनदम्
१३	पश्चिमोत्तर	SSII	२	नाशः	सर्वक्षयप्रदः
१४	पूर्वपश्चिमोत्तर	ISII	३	आक्रन्दः	शोकजनकः
१५	दक्षिणपश्चिमोत्तर	SIII	३	विपुलं	श्रीजयप्रदम्
१६	सर्वं दिक्षु	IIII	३	विजयः	लायप्रदः

एषां फलानि (पीयूषधारा (—

ध्रुवसंज्ञं गृहं त्वाद्यं धनधान्यसुखप्रदम् ।
धान्यं धनप्रदं नृणां जयं स्याद्विजयप्रदम् ॥ ६८ ॥
नन्दं स्त्रीहानिदं नूनं खरं सम्पद्विनाशनम् ।
पुत्रपौत्रप्रदं कान्तं श्रीप्रदं स्यान्मनोहरम् ॥ ६९ ॥
सुवक्त्रं भोगदं नूनं दुर्मुखं विमुखप्रदम् ।
सर्वदुःखप्रदं क्रूरं विपक्षं शत्रुभीतिदम् ॥ ७० ॥
धनदं धनदं गेहं क्षयं पर्वक्षयप्रदम् ।
आक्रन्दं शोकजननं विपुलं श्रीजयप्रदम् ॥
विपुलं नामसदृशं धनदं विजयाभिधम् ॥ ७१ ॥

इन श्लोकों का अर्थ प्रस्तारचक्र में ही लिख दिया गया है ॥६८-७१॥

(१२) गृहच्छायाज्ञानम्—

दीर्घत्वं च पृथुत्वेन गुणयेन्नवभिर्भजेत् ।
शेषे छायां विजानीयादुदयाचलमादितः ॥ ७२ ॥
उदयोऽस्ताचलश्चैव हिमविन्ध्याचलौ तथा ।
इन्द्रनारदधूमाश्च कूर्मकौबेरयोः क्रमात् ॥ ७३ ॥

पिण्ड की लम्बाई को चौड़ाई से गुणा करके (अर्थात् पिण्ड में) ६ का भाग देने से १ शेष बचे तो उदयाचल की छाया, २ शेष बचे तो अस्ताचल की छाया, ३ शेष बचे तो हिमाचल की छाया, ४ शेष बचे तो विन्ध्याचल की छाया, ५ शेष बचे तो इन्द्र के पर्वतकी छाया, ६ शेष बचे तो नारदपर्वत की छाया, ७ शेष बचे तो धूमाचल की छाया, ८ शेष बचे तो कूर्माचल की छाया और ६ शेष बचे तो कुवेराचल की छाया मकान में होती है ।

इसका फल मुझे अभी तक किसी भी पुस्तक में नहीं मिला है किन्तु अनुमान से मालूम होता है कि २।६।७ शेष निषिद्ध होते होंगे विज्ञ लोग विचार करलें ॥ ७२–७३ ॥

(१३) गृहेशः (वास्तुराजव० ३।२१)—

दैर्घ्यं पृथुत्वेन च योजनीयं तयोर्यदैक्यं पुनरुच्छ्रयेण ।
शेषोऽधिनाथो वसुभाजितेऽस्मिन् समः प्रशस्तो विषमस्तु नैव ॥७४॥

लम्बाई और चौड़ाई के योग में मकान की ऊँचाई को जोड़ के ८ का भाग देने पर शेष गृहाधीश होते हैं । उनमें सम शेष शुभप्रद है विषम शेष अच्छा नहीं होता ॥ ७४ ॥

कुछ आधुनिक विद्वान् (काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के अध्यापक प० रामयत्न ओझा प्रभृति) यहाँ 'योजनीयं' का अर्थ गुणा करना बतलाते हैं किन्तु वह बिलकुल असङ्गत सा जान पड़ता है। क्योंकि मकान में लम्बाई और चौड़ाई दोनों विषम संख्यायें होती हैं। विषम–विषम संख्याओं का गुणनफल विषम ही होता है। इसको यदि ऊँचाई की संख्या समाङ्क मान के गुणते हैं तो गुणनफल समाङ्क होता है इसमें ८ का भाग देने से सम शेष बचता है। यदि ऊँचाई की संख्या विषमाङ्क मान के गुणा करते हैं तो तीनों का गुणनफल विषमाङ्क होता है। इसमें ८ का भाग देने से विषम शेष बचता है । इससे स्पष्ट है कि यदि ऊँचाई सम संख्या होगी तो तीनों के गुणन में ८ भाग देने से शेष समसंख्याक बचेगा। यदि ऊँचाई विषम संख्या होगी तो तीनों के गुणनफल में ८ का भाग देने से विषम शेष बचेगा। यदि आचार्य को गुणन करना अभिमत होता तो केवल ऊँचाई के ही समत्व विषमत्व से फलादेश कर देते इतना गौरव क्यों करते। और गुणन शब्द

की जगह 'योजनीय' या 'ऐक्य' शब्द लिख कर पण्डितों को सन्देह-सागर में क्यों डालते। इसलिये 'योजनीय' का 'ऐक्य' शब्द का अर्थ गुणा करना दुराग्रह पूर्ण या नितान्त भ्रम है ॥

(१४) गृहभूमिप्रमाणम्—

चरणात्कर्णपर्यन्तं दण्डं सरलवंशजम् ।
पूर्वतः पश्चिमां यावदुत्तराद्दक्षिणां तथा ॥ ७५ ॥
तयोश्च दण्डयोर्योगं कृत्वा भूमौ विलिख्यताम् ।
अष्टभिश्च हरेद्भागं शेषांकेन फलं भवेत् ॥ ७६ ॥
प्रथमं रजकस्थानं चन्द्रवत्फलमादिशेत् ।
द्वितीयं चर्मकारस्य क्षुत्पिपासाकुलो गृही ॥ ७७ ॥
तृतीयं ब्राह्मणस्थानं जनोद्वासकरं महत् ।
चतुर्थं शूद्रकस्थानं धनधान्यप्रदायकम् ॥ ७८ ॥
पञ्चमं योगिनः स्थानं महदौदास्यकारकम् ।
षष्ठं तु गोपकस्थानं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ७९ ॥
सप्तमं क्षत्रियस्थानं सदा युद्धकरं नृणाम् ।
अष्टमं चक्रिणः स्थानं मरणं रोगकारकम् ॥ ८० ॥

कर्ताके दहिने चरणके अँगूठे से दहिने कर्ण (कान) तक ऊँचा एक सीधा बाँस का दण्डा लेकर उससे लम्बाई और चौड़ाई दोनों नाप कर जितना हो उनके योगमें ८ का भाग देनेसे १ शेष बचे तो रजक का स्थान होता है उसका फल चन्द्रमाके सदृश है (अर्थात् सम्पत्ति सर्वदा घटती बढ़ती रहती है)। २ शेष बचे तो चर्मकार का स्थान सर्वदा गृहके मालिक को क्षुधा-पिपासासे व्याकुल रखने वाला, ३ शेष बचे तो ब्राह्मण का स्थान मनुष्योंको उदास रखने वाला, ४ शेष बचे तो शूद्र का स्थान निरन्तर धन-धान्य को देने वाला, ५ शेष बचे तो योगी का स्थान बड़ी उदासीनता करने वाला, ६ शेष बचे तो गोप का स्थान सम्पूर्ण सिद्धियों का देने वाला; ७ शेष बचे तो क्षत्रिय का स्थान सर्वदा युद्ध कराने वाला और ८ शेष बचे तो चक्री (कुम्भकार) का स्थान मृत्यु और शोक का देने वाला होता है ॥

(१५) मण्डलानयनम्—

स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम् ।
नवभिश्च हरेद् भागं शेषं मण्डलमुच्यते ॥ ८१ ॥

दाता च भूपतिश्चैव क्लीवश्चौरो विचक्षणः ।
षष्ठो भोगी धनाढ्यश्च दरिद्रो धनदस्तथा ॥ ८२ ॥

स्वामीके हाथसे पिण्डके लम्बाई-चौड़ाईके हाथों का [1]योग करके ६ का भाग देनेसे शेष तुल्य क्रमसे १ दाता, २ भूपति, ३ क्लीव (नपुंसक), ४ चोर, ५ विचक्षण (पण्डित), ६ भोगी, ७ धनाढ्य, ८ दरिद्र और ९ धनद (कुबेर) ये ९ मण्डल होते हैं । इनका फल नाम सदृश होता है ॥८१–८२॥

ग्रन्थान्तरे विशेषः—

आयामं विस्तृतिं चैव एकस्थं वसुभिः कृतम् ।
गृहेशाख्याक्षरं योज्यं नवभिर्भागमाहरेत् ॥ ८३ ॥

शेषं पूर्ववत् ।

पिण्डके लम्बाई-चौड़ाई के योग को ८ से गुणा करके उस (गुणनफल) में गृहपतिके नामाक्षर को जोड़के ९ का भाग देनेसे पूर्ववत् दाता, नृपति, इत्यादि ९ मण्डल होते हैं ॥ ८३ ॥

(ख) मण्डलेशानयनम्—

स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम् ।
द्विगुणं चाष्टभिर्भक्तं मण्डलाधिप उच्यते ॥ ८४ ॥
इन्द्रो विष्णुर्यमो वायुः कुबेरो धूर्जटिस्तथा ।
विधाता विघ्नराजश्च मण्डलेशाः प्रकीर्तिताः ॥ ८५ ॥
इन्द्रः सौख्यं यशो विष्णुर्यमो दुःखं निरन्तरम् ।
वायुश्चोच्चाटनं कुर्यात् कुबेरो धनदो भवेत् ॥ ८६ ॥
धूर्जटिः कलहो नित्यं धाता सौख्यप्रवृद्धिदम् ।
सर्वसिद्धिं गणाधीशः फलमुक्तं मनीषिभिः ॥ ८७ ॥

स्वामीके हाथसे पिण्ड की लम्बाई-चौड़ाईके योग को २ से गुणा करके ८ से भाग देने पर १ शेष बचे तो इन्द्र, २ शेष बचे तो विष्णु, ३ शेष बचे तो यम, ४ शेष बचे तो वायु, ५ शेष बचे तो कुबेर, ६ शेष बचे तो महादेव, ७ शेष बचे तो विधाता, ८ शेष बचे तो विघ्नराज (गणेश) ये आठ मण्डलेश होते हैं । १ इन्द्र मण्डलेश हों तो सुख, २ विष्णु मण्डलेश हों तो यश, ३ यम हों तो सर्वदा दुःख, ४ वायु हों तो उच्चाटन, ५ कुबेर हों तो धन की वृद्धि, ६ महादेव हों तो कलह की वृद्धि, ७ ब्रह्मा हों

---

१. बृ. वा. मालाकारने सर्वत्र योगका अर्थ गुणा करना लिखा है । उसकी पुष्टिके लिये शास्त्रों में कोई प्रमाण नहीं मिलता अतः पण्डितोंको वचन ढूढ़ने का प्रयत्न करना चाहिये ।

तो सुख की वृद्धि और ८ गणेश मण्डलेश हों तो सब तरह की सिद्धि होती है। ऐसा पण्डितोंने[1] कहा है॥ ८४–८७॥

प्रसङ्गादङ्गणविचारः—

दीर्घविस्तारसङ्ख्यैक्यं चन्द्रैश्च गुणितं तथा।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषमाजिरमुच्यते ॥ ८८ ॥
दाता विचक्षणो भीरुः कलहो नृपदानवौ।
क्लीबश्चौरो धनी चेति नामतुल्यं फलं स्मृतम् ॥ ८९ ॥

आँगन की लम्बाई-चौड़ाईके हाथों को जोड़कर १ से गुणके नव का भाग देने पर शेष १ दाता, २ विचक्षण, ३ भीरु, ४ कलह, ५ नृप, ६ दानव, ७ नपुंसक, ८ चोर और ९ धनी ये आँगन के नाम होते हैं। इनका फल नाम के समान ही होता है॥ ८८–८९॥

अन्यच्च—

दीर्घविस्तारहस्तैक्यं वसुभिर्गुणितं तथा।
नवभिर्भाजिते शेषं वदेद् गेहाङ्गणं सुधीः ॥ ९० ॥
तस्कर-भोगि-विचक्षण-दाता नृपतिर्नपुंसको धनदः।
दारिद्रो भयदाता नामसमानाः फलप्रदास्ते स्युः ॥ ९१ ॥

आँगन की लम्बाई-चौड़ाई के योग को ८ से गुण के ९ से भाग देने पर क्रमसे १ तस्कर, २ भोगी, ३ विचक्षण (पण्डित), ४ दाता, ५ नृपति, ६ नपुंसक, ७ धनद, ८ दरिद्र और ९ भयदाता ये ९ प्रकार के आँगन होते हैं इनका फल भी नामके समान ही होता है॥ ९०–९१॥

अङ्गणशुभाशुभत्वम् (वास्तुराजव० ९।४)—

मध्ये निम्नं त्वङ्गणाग्रं तथोच्चैः
शश्वच्चैवं पुत्रनाशाय गेहम् ॥ ९२ ॥

बीचमें नीचा और चारों ओर ऊँचा आँगन पुत्रनाश करता है। इससे विपरीत (अर्थात् बीचमें ऊँचा और चारो ओर नीचा आँगन) अच्छा फल देने वाला होता है॥ ९२॥

सम्यक्शुभाशुभत्वं विचार्य गृहं विधेयम् (वास्तुरा० ३।२७)—

बहुगुणं लघुदोषसमन्वितं भवनदेवगृहादिकमिष्यते।
जललवेन शिखी बहुतापवान्न शममेति गुणैरधिको यतः ॥ ९३ ॥

---

१. मण्डल और मण्डलेश का विचार पिण्ड, आँगन और घर तीनोंमें पण्डित लोग करते हैं।

इस विधि से सब विषयों का ठीक २ विचार करके अधिक गुणवाला और कम दोष वाला मकान, देव मन्दिर इत्यादि बनवाना शुभकारक होता है। बहुत प्रज्ज्वलित ज्वाला (लवर) वाला अग्नि जलके कण (बिन्दु) से शान्त नहीं होता उसी चालसे वह मकान अधिक गुण वाला रहता है। ज्योतिर्निबन्ध में भी लिखा है—

अल्पदोषं बहुगुणं दोषाय न भवेद् गृहम्॥ इति ॥ ९३ ॥

काऽऽयादयो न विचारणीयाः (ज्यो० नि० पृ० २७०)—

अलिन्दनिर्व्यूहविनिर्गमाद्याश्चतुर्दिशं ये गृहभूषणाय।
आयादिकं तेषु न चिन्तनीयं यतो न ते वास्तुपरिग्रहाः स्युः॥९४॥

अलिन्द, निर्व्यूह, विनिर्गम इत्यादि जो गृहके चारो ओर उसकी शोभा बढ़ाने वाले होते हैं। उनमें आय, वार इत्यादि का विचार नहीं करना चाहिये। क्योंकि ये वास्तुके परिग्रह (उपकरण) नहीं हैं॥ ९४॥

विश्वकर्मप्रकाशे च (२२०)—

एकादशकरादूर्ध्वं यावद्द्वा त्रिंशद्धस्तकम्।
तावदायादिकं चिन्त्यं तदूर्ध्वं नैव चिन्तयेत्॥ ९५ ॥

११ हाथसे लेकर ३२ हाथ तक आय, वार आदि का विस्तार करना चाहिये। इसके उपरान्त आयादि का विचार नहीं करना चाहिये। अन्यत्र भी लिखा है कि—

यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोऽधिकम्।
न तत्र चिन्तयेद्धीमान् गणनायां व्ययादिकम्॥ इति ॥ ९५ ॥

तृणगृहे जीर्णगृहे च नायादिकं चिन्त्यम् (विश्वक० २२१)—

आयव्यौ मासशुद्धिं न जीर्णे चिन्तयेद् गृहे।
शिलान्यासं प्रकुर्वीत मध्ये तस्य विधानतः॥ ९६ ॥

आय-व्यय की शुद्धि और मासशुद्धि पुराने गृहमें नहीं देखना चाहिये। किन्तु शिलान्यास उसके बीचमें विधानपूर्वक करना चाहिये। यहाँ आय व्यय केवल उपलक्षण मात्र है, किसी वस्तु का भी विचार नहीं करना चाहिये। तृणके घरमें भी मासशुद्धि का विचार नहीं करना चाहिये। जैसा कि राजमार्तण्डमें लिखा है—

आयव्ययौ मासशुद्धिं चिन्तयेन्न तृणे गृहे॥ ९६ ॥

इति पिण्डाद्यानयनप्रकरणम्॥ ५ ॥



गृहोपकरणप्रकरणम् ६ ।

पाषाणादिभेदेनान्तबहिर्वा भित्तिः—

पाषाणे पूर्णगेहानि भित्तिर्मध्ये तु ऐष्टिका ।
मृत्तिका गर्भमात्रेण विज्ञेया नाऽत्र संशयः ॥ १ ॥

पत्थर की भित्ति (दिवाल) में पिण्डके बराबर (अर्थात् पिण्डके बाहर) भित्ति बनावे । ईंट के मकान में आधे पर (अर्थात् आधी भित्ति पिण्डके भीतर आधी बाहर) बनानी चाहिये । और मिट्टीके मकानमें पिण्ड के भीतर भित्ति बनानी चाहिये ॥ १ ॥

अन्यदपि—

काष्ठपाषाणयोर्बाह्यमिष्टिकायां तदर्धकम् ।
मृत्तिका गर्भमात्रं तु इति प्राह पराशरः ॥ २ ॥

काठ और पाषाण के मकान में भित्ति बाहर, ईंट के मकान में आधे पर (आधी पिण्ड के भीतर आधी बाहर) और मिट्टी के मकान में गर्भमात्र (पिण्ड के भीतर) भित्ति बनानी चाहिए। ऐसा पराशर का मत है। अन्यत्र भी लिखा है—

पाषाणे सर्वतो बाह्यमिष्टिकायां तदधकम् ।
मृत्तिकायां पिण्डमात्रमित्युक्तं रुद्रयामले ॥ इति ॥ २ ॥

वास्तुराजवल्लभे विशेषः (३।३)—

मध्ये पर्यङ्कासने मन्दिरे च देवागारे मण्डपे भित्तिबाह्या ॥ २½ ॥

चारपाई, आसन और मन्दिर में मध्यसे पिण्ड देखना चाहिये। देवागार, मण्डप में बाहर से भित्ति रखना चाहिये।

इस उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि मिट्टी के मकान में पिण्ड के भीतर ही भित्ति होनी चाहिये। ऐसा ही बृ० वा० मालाकार जीने भी लिखा है। परन्तु कुछ अल्पज्ञलोग मिट्टी के मकान में पिण्ड के बाहर भित्ति बनवाते हैं यह उनकी भूल है। कारिका में जो 'पिण्डाद्बहिर्भित्तिका' ऐसा लिखा है वह केवल पाषाण और काष्ठ के बने मकान के लिये है ॥ २½ ॥

भित्तिस्थापनविधिः (मु० मा० ६।४)—

ज्ञात्वैवं निखनेद् गृहाधिकभुवं नत्वा जलान्तस्तरो ।
यावद्वा पुरुषस्ततः कपिशिरस्तुल्याश्मभिः पूरयेत् ॥ ३ ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे स्थान जानकर कल्पित पिण्ड से कुछ अधिक जमीन जलपर्यन्त या पृथिवीके [1] स्तर (तह अर्थात् जहाँ से दूसरे रङ्ग की मिट्टी

---

१. स्तर का अर्थ बृ. वा. मालाकारजीने भ्रमसे 'समीप के वृक्षतुल्य' लिख दिया है (बृ.वा. मा. पृ. २३ देखिये)।

बदल जाय वहाँ) पर्यन्त अथवा पुरुष पर्यन्त गड्ढा खोदकर उसे बन्दर की खोपड़ीके बराबर पत्थलके टुकड़ोंसे [गारा देकर] भर देना चाहिये ॥३॥

वास्तुराजवल्लभे च [१।२६]—

भित्तेर्मूलं स्थापनीयं जलान्ते पाषाणे वा हेमरत्नैः सगर्भम् ।
शीर्षे गुर्वी लेपहीनाऽधिका वा सन्धिश्रेणीपादहीनार्थहान्यै ॥ ४ ॥

भित्ति का मूल जल पर अथवा पाषाण पर पहले उस में पञ्चरत्न, सुवर्ण इत्यादि छोड़ कर स्थापन करना चाहिये। जो भित्ति शीर्ष पर (ऊपर) भारी (नीचे हलकी) हो, जिसमें गारा कम या अधिक लगा (एक रूप से न लगाया गया) हो या सन्धिश्रेणी मालूम होती हो अथवा भित्ति कहीं मोटी कहीं पतली हो वह धन की हानि करने वाली होती है ॥ ४ ॥

भित्तिमानम्—

विस्तारषोडशांशेन गृहभित्तिं प्रकल्पयेत् ।
हीनाधिका न कर्तव्या गृहभर्तुर्न शोभना ॥ ५ ॥

विस्तार के १६ वें भाग के बराबर भित्ति बनानी चाहिये। इससे मोटी या पतली नहीं बनानी चाहिये क्योंकि गृहस्वामी के लिये अच्छी नहीं होती॥५॥

विशेषः (बृहत्सं० ५२।२३)

व्यासात्षोडशभागः सर्वेषां सद्मनां भवति भित्तिः ।
पक्वेष्टिकाकृतानां दारुकृतानां तु न विकल्पः ॥ ६ ॥

चौड़ाई के १६ वें भाग के बराबर भित्ति की मोटाई होनी चाहिये। परन्तु यदि पकी हुई ईंट या लकड़ी की भित्ति हो तो कोई विकल्प नहीं है अर्थात् यह नियम केवल मिट्टी के दिवाल के लिये है ईंटे या लकड़ी की दिवाल जितनी मोटी या पतली चाहे बनवा सकता है ॥ ६ ॥

आमपक्केष्टिकासंयोगनिषेधः (बृहत्सं० ६६४ पृ०)—

न नवं पुराणयुक्तं न पक्वमामेन संयोज्यम् ।
अन्यच्च स्खलितशिला विशीर्णविच्छिन्नसंस्कारात् ॥ ७ ॥

नई और पुरानी अथवा कच्ची और पक्की ईंट को साथ न लगावे। और टेढ़े-मेढ़े पत्थल के टुकड़ों को भी भित्ति में न लगावे ॥ ७ ॥

आवश्यके तत्संयोजनक्रमः—

आमेष्टकास्त्वधश्चेया पक्काश्च चिनुयात्ततः ।
पक्काश्रितास्त्वधश्चेया यथेष्टमुपरीष्टिकाः ॥ ८ ॥

यदि नई-पुरानी या कच्ची-पक्की ईंट लगाना हो तो कच्ची ईंट को पहले

जोड़ कर उसके ऊपर पक्की ईंट लगावे। फिर कच्ची ईंट लगाकर पक्की ईंट लगावे। इस क्रमसे दोनों प्रकार की ईंटें लगाई जा सकती हैं ॥ ८ ॥

गृहौच्च्यमानम् (बृहत्सं० ५२।२२)

विस्तारषोडशांशः सचतुर्हस्तो भवेद् गृहोच्छ्रायः ।
द्वादशभागेनोनो भूमौ भूमौ समस्तानाम् ॥ ९ ॥

विस्तार (चौड़ाई) के १६ वें हिस्से में ४ हाथ जोड़ने पर जितना हो उतने के बराबर मकान की ऊँचाई होनी चाहिये। यदि दो महला तिमहला बनाना हो तो पहले खण्ड की ऊँचाई में उसी का १२ वाँ हिस्सा कम करने से जो हो उतनी ऊँचाई दूसरे खण्ड (तल) की, एवं दूसरे तलकी ऊँचाई में उसी का १२ वाँ हिस्सा घटाने से जो हो उतनी ऊँचाई तीसरे तलकी बनानी चाहिये। एवं आगे भी जानना चाहिये ॥ ६ ॥

विशेषः (वास्तुराजवल्लभे ५।१५)—

वेश्मव्यासकलांशके युगगुणैर्हस्तैस्त्रिसार्धैर्युते
हर्म्यस्य त्रिविधोदयः क्षितितलाद्यावच्च पट्टोर्ध्वकम् ।
एकैकोऽपि पुनस्त्रिधा निगदितः सर्वे त एकादश
क्षेप्याः षण्नवतौ नखाः शशिकला अष्टादशाद्यास्त्रिधा ॥
त्रिस्थाने युगनागकास्तिथियुता धिष्ण्यैकविंशान्विता
मध्योयं त्रिकरैस्तदंशसहितैः प्रोक्तः कनिष्ठस्त्रिधा ॥ १० ॥

मकान के विस्तार (चौड़ाई) के १६ वें भाग में क्रम से ४, ३½, ३ हाथ जोड़ने से गृह की ऊँचाई (जमीन से पट्टोर्ध्व तक) का मान उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार का होता है। इसमें भी पहले ४ हाथ (या ९६ अङ्गुल) में २०, १८, १६, अङ्गुल जोड़ने से और भी उत्तम के ३ भेद हो जाते हैं। यों ९६ अं०, ९६+२०=११६ अं०, ९६+१८=११४ अं० और ९६+१६=११२ अं० ये ४ उत्तम के भेद होते हैं। एवं सब मिल कर ११ भेद होते हैं। जैसे—३½ हाथ (या ८४ अङ्गुल) को ३ स्थानों में रखके क्रमसे २७, २१, १५ अङ्गुल जोड़ने से ३ तरह के मध्यम के भेद होते हैं। यों ८४ अं०, ८४+२७=१११ अं०, ८४+२१=१०५ अं० और ८४+१५=९९ अं०। ये ४ भेद मध्यम के होते हैं। एवं ३ हाथ (या ७२ अङ्गुल) को ३ स्थानों में रखके २७, २१, १५ अङ्गुल जोड़ने से कनिष्ठ के भी ३ भेद होते हैं। अर्थात् ७२ अं०, ७२+२७=९९ अं०, ७२+२१=९३, ७२+१५=८७ ये ४ भेद कनिष्ठ के होते हैं। यों सब मिल कर १२ भेद होते हैं। किन्तु इनमें (८ वाँ और १० वाँ) दो

भेद आपस में तुल्य होते हैं । अत एव आचार्य ने सब मिल कर ११ भेद लिखा है । स्फुटता के लिये चक्र देखिये ॥ १० ॥

उत्तम				मध्यम				कनिष्ठ			
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
९६	९६ +२०	९६ +१८	९६ +१६	८४	८४ +२७	८४ +२१	८४ +१५	७२	७२ +२७	७२ +२१	७२ +१५
९७	११६	११४	११२	८४	१११	१०५	९९	७२	९९	९३	८७

कस्यां दिश्युन्नतं गृहं विधेयम् (राजमार्तण्डे)—

स्यादुन्नतिः पूर्वनते नराणां वास्तौ धनं दक्षिणभागतुङ्गे ।
क्षयो धनानां पनते प्रतीच्यामुच्चैर्विनाशो ध्रुवमुत्तरेण ॥ ११ ॥

मकान यदि पूर्वके हिस्सेमें नीचा हो तो गृहेश की उन्नति, दक्षिण की ओर ऊँचा हो तो धनवृद्धि होती है । पश्चिम दिशा की ओर नत हो तो धन नाश होता है । इसलिये पश्चिम और दक्षिण का हिस्सा ऊँचा एवं पूर्व और उत्तर की ओर कुछ नीचा मकान होना चाहिये (बृ० वा० मालाकारने 'चारों तरफ जिसमें समान हो वैसा गृह बनाना चाहिये' ऐसा लिखा है न मालूम यह किस पद का अर्थ है । बृ० वा० मा० पृ० २६ श्लो० १४८ दे०) ॥ ११ ॥

पूर्वादिदिक्षु गृहवर्धने फलानि (बृहत्सं० ५२।११४-११५)

इच्छेद्यदि गृहवृद्धिं ततः समन्ताद्विवर्धयेत्तुल्यम् ।
एकोद्देशे दोषः प्रागथवाऽप्युत्तरे कुर्यात् ॥ १२ ॥
प्राग्भवति मित्रवैरं मृत्युभयं दक्षिणेन यदि वृद्धिः ।
अर्थविनाशः पश्चादुदग्विवृद्धिर्मनस्तापः ॥ १३ ॥

यदि गृह (पिण्ड) बढ़ाने की इच्छा हो तो चारो ओर बराबर २ बढ़ावे । एक ही ओर न बढ़ावे । अथवा पूर्व एवं उत्तर तरफ बढ़ा सकता है । पूर्व ओर बढ़ाने से मित्रों से वैर, दक्षिण ओर बढ़ाने से मृत्यु का भय, पश्चिम ओर बढ़ाने से धन का नाश और उत्तर ओर बढ़ाने से अन्तःकरण को ताप होता है ऐसा ही वास्तुराजवल्लभ (५।३६) में भी लिखा है ॥ १२-१३ ॥

माण्डव्यश्च (ज्यो० नि०)—

वस्तुक्षेत्रादर्वाक्प्रत्यग्दिशि नैव गृहं रचयेत् ।
उत्तरस्यां तु पूर्वस्यां गृहात्सर्वं गृहं रचेत् ॥ १४ ॥

वास्तुक्षेत्र के दक्षिण और पश्चिम ओर मकान न बनावे । उत्तर और पूर्व ओर मकान बनाना चाहिये ॥ १४ ॥

पूर्वसद्मन उच्चाद् द्विगुणान्तरे गृहकरणे न दोषः—

सद्मोच्चाद् द्विगुणाधिकान्तरभुवि प्रत्यक्तथा दक्षिणे
गेहं चाशु रचेच्छुभाय भवनं सत्कर्मणां सिद्धये ।
माण्डव्यादिमुनीन्द्रगर्गप्रभवा एवं वदन्तीति च
संशोध्यैव गृहं रचेच्च सुधिया भव्यादिकर्मादिके ॥ १५ ॥

पूर्व पिण्ड के दक्षिण और पश्चिम दिशा में नया मकान बनाना हो तो मकान की ऊँचाई की दूनी दूरी से अधिक दूरी पर मकान बनाने से शुभदायक होता है और शुभकर्मों की सिद्धि होती है। माण्डव्य, गर्ग आदि ऋषिगण ऐसा कहते हैं। अब इन बातों का विचार करके मकान बनवाना श्रेयस्कर होता है ॥ १५ ॥

एकभित्तिगृहद्वयकरणनिषेधः—

नूतने गृहे नूतनं काष्ठादि योज्यम् (ज्यो० नि०)—

नूतने नूतनं काष्ठं जीर्णे जीर्णं प्रशस्यते ।
जीर्णे च नूतनं काष्ठं नो जीर्णं नूतने गृहे ॥ १६ ॥
अन्यवेश्मस्थितं दारु नैवान्यस्मिन्प्रयोजयेत् ।
न तत्र निवशेत्कर्ता वसन्नपि न जीवति ॥ १७ ॥
इष्टिकालोहपाषाणमृत्तिकाजीर्णमायसम् ।
तृणं पत्रं बुधैः प्रोक्तं दारु नूतनं गृहाय यै ॥ १८ ॥

नये मकान में नया काठ (लकड़ी), पुराने मकान में पुराना काठ लगाना अच्छा होता है। पुराने मकान में नया लगाना अच्छा है परन्तु नये मकान में पुराना काष्ठ लगाना अच्छा नहीं। एक मकान में लगे काष्ठ को उजाड़ कर दूसरे मकान में नहीं लगाना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से उस मकान में स्वामी का निवास नहीं होता है। अर्थात् उद्वेग रहता है। यदि निवास भी हो तो मृत्यु होती है। ईंट, लोह, पत्थल, मिट्टी, तृण, पत्ते और काठ (लकड़ी) ये सब नये मकान में नया ही लगाना चाहिये ॥१६–१८॥

गृहे करिसंख्या—

करिसंख्या भवेद् गेहं त्रिभिश्चैव विभाजिते ।
इन्द्रः कालस्तथा भूपो यमांशे मरणं ध्रुवम् ॥ १९ ॥

करि की संख्या में ३ का भाग देने से १ शेष बचे तो इन्द्र, २ शेष बचे तो यम और ३ शेष बचे तो भूप का अंश होता है। यम का अंश मृत्युदायक है ॥ १९ ॥

गृहाच्छादनभेदाः (वास्तुराजव० ६।१७)—

षड्जातिगेहं तृणपर्णपट्टैर्वंशैः कटैर्वापि मृदा शिलाभिः।
छन्नं प्रकारैः कथितं च षड्भिर्लोके प्रसिद्धचापि परीक्षणीयम् ॥२०॥

१ तृण, २ पण (पत्ते), ३ पट्ट (पट्टरे), ४ वंश [वाँस], ५ कट [चटाई], और ६ मिट्टी एवं पत्थल इन वस्तुओं से मकान छाया जाता है। इनके अतिरिक्त और भी लोकप्रसिद्ध वस्तुओं की परीक्षा करनी चाहिये॥

तत्रैव (५।३५)—

उच्छ्रायार्धविनिर्गतं शरयुगांशेनाधिकं शस्यते
छाद्यं पट्टसमानकं सुखकरं नाशाय निम्नोन्नतम्।
तत्काकस्य च पक्षवच्च कुमुदाभं सौर्पकालापदं
प्रालम्बं च करालकं हि विबुधैः प्रोक्तं च तत्षड्विधम् ॥२१॥

छाद्य (ओरी) घर की ऊँचाई से आधे या ऊँचाई के चौथे भाग वा पाँचवें भाग के बराबर भीति के बाहर निकली हो तो शुभ होता है। नीचा-ऊँचा होने से नाशकारक होता है। १ काकपक्ष के ऐसा, २ कमल के सदृश, ३ सूप के समान, ४ मयूरपक्ष के नाई, ५ प्रालम्ब (गच) और ६ करालक (पटरे का छादन) ये ६ प्रकार के छादन के भेद होते हैं॥२१॥

आरोहण (सोपान) विधिः (तत्रैव ५।३६)—

भूम्यारोहणमूर्ध्वतस्तदुपरि प्राग्दक्षिणं शस्यते
द्वारं तूर्ध्वभवं च भूमिरपरा ह्रस्वार्कभागैः क्रमात्।
प्रासादे च मठे नरेन्द्रभवने शैलः शुभो नो गृहे
तस्मिन् भित्तिषु बाह्यकासु शुभदः प्राग्भूमिकुम्भ्यां तथा ॥२२॥

घर में सीढ़ी ऊपर को होनी चाहिये जिसका दरवाजा पूर्व या दक्षिण की ओर हो तो शुभदायक होता है। (अर्थात् सीढ़ी मकान के पश्चिमीय या उत्तरीय भाग में दक्षिणावर्त हो तो अच्छा है)। सीढ़ी के नीचे और ऊपर दोनों ओर दरवाजे हों। नीचे के दरवाजे की अपेक्षा ऊपर का दरवाजा १२ वाँ हिस्सा कम हो। एवं नीचे के महल से ऊपर के महल की ऊँचाई द्वादशांश कम हो (जैसा कि इसी प्रकरण के ९ वें श्लोक में लिखा है) तो उत्तम होता है। प्रासाद (देवमन्दिर), मठ, राजाओं का महल (किला) इनमें पत्थल की दिवाल शुभदायिका होती है। साधारण गृहों में पत्थल की दिवाल बनवाना शुभ नहीं है। यदि पत्थल दिवाल में लगाना हो तो बाहर बाहर होने पर कोई हानि नहीं। आँगन के गच में तथा कुम्भी में भी किसी प्रकार का हानिकारक नहीं होता है॥ २२॥

पिण्डमध्ये उपकरणगृहाणि (मु० चि० १२।२०)—

स्नानस्य पाकशयनास्त्रभुजेश्च धान्य-
भाण्डारदैवतगृहाणि च पूर्वतः स्युः ।
तन्मध्यतोऽथ मथनाज्यपुरीषविद्या-
भ्यासाख्यरोदनरतौषधसर्वधाम ॥ २३ ॥

पूर्व में स्नान का गृह, अग्निकोणमें पाक का गृह, दक्षिण दिशा में शयन का स्थान, नैऋत्य कोण में हथियार का गृह, पश्चिम दिशा में भोजन गृह, वायव्यकोण में धान्य (अन्न) रखने का गृह, उत्तर दिशा में भाण्डार गृह और ईशान कोण में देवता का गृह बनाना उत्तम होता है। एवं पूर्व और अग्नि-कोण के बीच में मथन (दही मथने) का, अग्निकोण और दक्षिण के बीच में घी रखने का, दक्षिण और नैऋत्य के बीच में पुरीष (पाखाना) का, नैऋत्य और पश्चिम के बीच विद्याभ्यास (पढ़ने) का, पश्चिम और वायव्य के बीच में रोदन का, वायव्य और उत्तर के बीचमें रत (मैथुन) का, उत्तर और ईशान के बीच में औषध का घर और ईशान तथा पूर्व के बीच में सर्वधाम बनाना चाहिये ॥ २३ ॥

विशेषः (मु० मा० ६।१८)

स्नानाग्निस्वपिवस्त्रभोजनपशुद्रव्यामरौकस्थितिं
पूर्वादौ जलमीशितुर्दिशि परं वायोरपाङ्मूत्रकम् ।
आल्पे शक्तिभुवो यथारुचि परे गेहस्य दक्षे घर-
ट्टाम्बूलूखलचुल्लिकापितृपदप्रक्षालनान्यूचिरे ॥ २४ ॥

प्रथम अर्ध का अर्थ पूर्ववत् है किन्तु 'नैऋत्य में वस्त्र का, वायव्य में पशु का घर बनाना' इतना विशेष है। जल का स्थान ईशानमें, मूत्र-पुरीषोत्सर्ग का स्थान वायु कोण में बनाना चाहिये। यदि जगह की कमी हो तो यथा-रुचि (जहाँ जिस वस्तु की सुविधा हो वहाँ वह वस्तु रखने का स्थान) बनाना चाहिये। और घरके दक्षिण भागमें जाता, ओखली–मूसल, चुल्हिका, पितृपद प्रक्षालन आदि का स्थान बनवाना चाहिये ॥ २४ ॥

प्रसङ्गात्पाकगृहप्रमाणं रविराशिवशात्—

मेषे च कर्कटे कुम्भे हस्तैकादश आयतम् ।
तुले धनुर्धरे सिंहे सप्तहस्तकमालयम् ॥ २५ ॥
मकरे वृश्चिके कन्यावृषयोर्नवहस्तकम् ।
हस्तत्रयोदश प्रोक्तं गृहं मिथुनमीनयोः ॥ २६ ॥

इन दोनों का अर्थ स्पष्ट है ॥ २५–२६ ॥

केचिदत्रापि वास्तुपुरुषप्रविभागमिच्छन्ति—

श्रीगृहेऽत्र ध्वजः कार्यो धूमश्चैव महानसे।
सिंहो निद्रागृहे कार्यः श्वा कुर्यादायुधाश्रये॥ २७॥
वृषो भोजनशालायां खरो वै धनसञ्चये।
द्रव्यस्थाने तथा भद्रो रिक्तो देवगृहे तथा॥ २८॥

ध्वज आय का घर लक्ष्मी के लिये, धूम आय का गृह रसोई के लिये, सिंह आय का गृह सोने के लिये, श्वान आय का भवन शस्त्र धरने के लिये, वृष आय का गृह भोजन-शाला के लिये, खर आय वाला मकान धनसञ्चय करने के लिये, एवं द्रव्य स्थान के लिये भद्र और देवता के लिए रिक्त मकान बनाना उत्तम होता है॥ २७–२८॥

दीपसंस्थानम् (वास्तुराजव० ५।२१)—

दीपालयो दक्षिणदिग्विभागे सदा विधेयोऽर्गलया समेतः।
वामे च मध्ये न शुभाय गेहे सुरालयो वामदिशीष्टसिद्ध्यै॥२९॥

दीपक रखने का स्थान सर्वदा मकान के दक्षिण भाग में बनाना चाहिये। जिसके वाम भाग में अर्गला लगी है। मध्य या वाम भाग में दीपक का स्थान बनाना शुभद नहीं है। देवता का स्थान वाम भाग में बनाना श्रेष्ठ है॥

पिण्डाच्चतुर्दिक्षु शुभाशुभवृक्षाः (बृहत्सं० ५२।६२ टी०)—

वर्जयेत्पूर्वतोऽश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणतस्तथा।
न्यग्रोधं पश्चिमे भागे उत्तरे चाप्युदुम्बरम्॥ ३०॥
अश्वत्थे तु भयं ब्रूयात् प्लक्षे ब्रूयात्पराभवम्।
न्यग्रोधे राजतः पीडा नेत्रामयमुदुम्बरे॥ ३१॥
वटः पुरस्ताद्धन्यः स्याद् दक्षिणे चाप्युदुम्बरः।
अश्वत्थः पश्चिमे धन्यः प्लक्षस्तूत्तरतः शुभः॥ ३२॥

अश्वत्थ=पीपर, प्लक्ष=पाकड़, न्यग्रोध=वर और उदुम्बर= गूलर को कहते हैं। शेष का अर्थ अति सरल है॥ ३०–३२॥

गृहसमीपे शुभाशुभवृक्षाः (बृहत्सं० ५२।८४–८५)—

आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय।
फलिनः प्रजाक्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेदेषाम्॥ ३३॥
छिद्याद्यदि न तरूंस्ताँस्तदन्तरे पूजितान्वपेदन्यान्।
पुन्नागाशोकारिष्टवकुलपनसान् शमीशालौ॥ ३४॥

मकानके पास काँटे वाले (बैर, बबूल, अकोल्ह, कटारि इत्यादि)

वृक्ष शत्रु से भय देने वाले, दूध वाले (महुआ इत्यादि के) वृक्ष धननाशकर, फल वाले (आम, जामुन इत्यादि के) वृक्ष सन्तान नाशकारक होते हैं। अतः इनको काट देना चाहिये। यदि किसी कारणवश न काट सके तो इन वृक्षों के और मकान के बीच में शुभदायक वृक्ष जैसे पुन्नाग (नागकेशर), अशोक, अरिष्ट, बकुल (मौलश्री), पनस (कटहल), शमी और शाल (साखू) इन पेड़ों को लगा (रोप) देना चाहिये, तो उसका दोष दूर हो जाता है ॥ ३३-३४ ॥

वास्तुप्रदीपे च (२२–२३)—

आसन्नगाः कण्टकिनोऽथ वृक्षाः स्युः शत्रुदास्त्वर्थहराः सदुग्धाः ।
प्रजाक्षया नेष्टफलाः समस्तास्तस्माद्विवर्ज्याः सकलाश्च वृक्षाः ॥३५॥
एषां च काष्ठान्यपि वर्जितानां वर्ज्यानि सद्भिर्गृहमध्यगानि ।
अशोकपुन्नागशमीपलाशाः शस्तास्त्वरिष्टो बकुलाश्च शालाः ॥३६॥

प्रथम पद्य का अर्थ पूर्ववत् है। इन वृक्षों की लकड़ी को भी मकान में लगाना निषिद्ध है। अशोक, पुन्नाग (नागकेशर), शमी, पालाश, अरिष्ट, बकुल (मौलश्री) और शाल ये वृक्ष घर के पास हों तो शुभदायक होते हैं ॥३५–३६॥

अन्ये शुभाऽशुभवृक्षाः—

क्षीरवृक्षा वटाश्वत्थरक्तपुष्पद्रुमास्तथा ।
सकण्टका शाल्मली च प्लक्षोदुम्बरसंज्ञितौ ॥ ३७ ॥
अग्निकोणे सदा दुष्टा मृत्युपीडाप्रदायकाः ।
पुन्नागफलिनी-निम्बदाडिमाशोकजातिकाः ॥ ३८ ॥
नागकेसरसंपुष्पजपाकुसुमकेशराः ।
जयन्ती चन्दनं प्रोक्तं वचा चैवाऽपराजिता ॥ ३९ ॥
मधुबिल्वाम्रभृङ्गाश्च नागरं ककुपादिकाः ।
यत्र तत्र स्थिताश्चैते नारिकेलादयः शुभाः ॥ ४० ॥

दूध वाले पेड़, वट, अश्वत्थ (पीपल), रक्त पुष्प के पेड़, काँट वाले वृक्ष, शाल्मली (सेमर), प्लक्ष (पाकड), उदुम्बर (गूलर) ये वृक्ष मकान से अग्निकोण में रहें तो सर्वथा दुष्टफल देने वाले और पीडा एवं मृत्यु देने वाले होते हैं। पुन्नाग, फलिनी, निम्ब, दाडिम (अनार), अशोक जाती (चमेली), नागकेशर, जपा (अड़हुल), केशर, जयन्ती, चन्दन, वचा, अपराजिता, मधु (महुआ), वेल, आम, भृङ्ग (दालचीनी), नागर और नारियल ये वृक्ष चाहे जहाँ हों शुभदायक ही होते हैं ॥ ३७–४० ॥

वास्तुराजवल्लभे च (१।२८)—

वृक्षा दुग्धसकण्टकाश्च फलिनस्त्याज्या गृहाद् दूरतः
शस्ते चम्पकपाटले च कदली जाती तथा केतकी।
यामादूर्ध्वमशेषवृक्षसुरजा छाया न शस्ता गृहे
पार्श्वे कस्य हरे रवीशपुरतो जैनास्तु चण्ड्याः क्वचिद् ॥४१॥
दुष्टो भूतनिषेवितोऽपि विटपी नोच्छिद्यते शङ्कित-
स्तद्वद्बिल्वशमी त्वशोकबकुलौ पुन्नागसच्चम्पकौ।
द्राक्षापुष्पकमण्डपं च तिलकान्कृष्णां वपेद्दाडिमीं
सौम्यादेः शुभदः कपित्थकवटावौदुम्बराश्वत्थकौ ॥ ४२ ॥

प्रथम पाद का अर्थ सरल है। चम्पा, पाटल (गुलाब), केला, जाती (चमेली), केतकी ये वृक्ष घरके पास रहें तो शुभदायक होते हैं, एक पहर के बाद की सब वृक्षों की छाया घर पर पड़े तो अच्छा नहीं होता। ब्रह्माके मन्दिर के बगल में, विष्णु, सूर्य, शिव इनके मन्दिर के सामने, जैन-मन्दिर के पिछवाड़े और चण्डिका के मन्दिर के चारो ओर घर बनाना शुभदायक नहीं है।

दुष्टवृक्षों और भूत-प्रेतके आश्रय वाले वृक्षों का काटना उचित नहीं होता। बेल, शमी, अशोक, बकुल (मौलसरी), पुन्नाग, चम्पा, द्राक्षा (अंगूर), पुष्पवती लताओं या पुष्प वाले वृक्षों का मण्डप, तिलक (चन्दन), कृष्णा (पीपर), अनार इन पेड़ों का लगाना शुभदायक होता है। घरसे उत्तर ओर कैथ, पूर्व ओर वर, दक्षिण ओर उदुम्बर (गूलर) और पश्चिम ओर पीपल का वृक्ष लगाना अच्छा होता है ॥ ४१–४२ ॥

एषां दूरत्वे नियमः—

प्रथमान्त्ययामवर्ज्यं द्वित्रिप्रहरसम्भवा।
छाया वृक्ष-गृहादीनां सदा दुःखप्रदायिनी ॥ ४३ ॥

पहले और चौथे पहर की छाया को छोड़ कर दूसरे और तीसरे पहर की वृक्षादिकों की छाया मकान पर पड़े तो सर्वदा दुःख देने वाली होती है ॥ ४३ ॥

सूर्यकिरणप्रवेशे नियमः (वास्तुराजव० ५।३०)—

देवालयं वा भवनं मठश्च भानोः करैर्वायुभिरेव भिन्नम्।
तन्मूलभूमौ परिवर्जनीयं छायागता यस्य गृहस्य कूपे ॥४४॥

जो देवालय, मठ या मकान सूर्य की किरण और वायु से वञ्चित रहे वह शुभफल देने वाला नहीं होता है और दिनके दूसरे या तीसरे पहर की

छाया यदि किसी कूप पर पड़े तो भी मकान शुभकारक नहीं होता ॥ ४४ ॥

पूर्वादिदिग्गतजलाशयफलानि (बृहत्सं० ५२।११७)—

प्राच्यादिस्थे सलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयश्च ।
स्त्रीकारकः स्त्रीदौष्टयं नैस्व्यं वित्तात्मजविवृद्धिः ॥४५॥

मकान से पूर्वादिक दिशाओं में जलाशय रहने से यथाक्रम १ पुत्रहानि, २ अग्निभय, ३ शत्रुभय, ४ स्त्रीकलह, ५ स्त्रीदुष्टता, ६ निर्धनता, ७ वित्तवृद्धि और ८ पुत्र की वृद्धि ये फल होते हैं ॥ ४५ ॥

सद्मनः समीपे सचिवादिगृहे फलानि (बृहत्सं० ५२।८७)—

सलिलालयेऽर्थहानिर्धूर्तगृहे सुतवधः समीपस्थे ।
उद्वेगो देवकुले चतुष्पथे भवति चाऽकीर्तिः ॥ ४६ ॥
चैत्ये भयं गृहकृतं वल्मीकश्वभ्रसङ्कुले विपदः ।
गर्तायां तु पिपासा कूर्माकारे धनविनाशः ॥ ४७ ॥

घर के समीप सलिलाशय हो तो धन की हानि, धूत का घर हो तो पुत्र का नाश, देवकुल हो तो उद्वेग, चौराहा हो तो अपयश, चैत्य (डीह) हो तो मकान-सम्बन्धी भय, वल्मीक (वेमउट) और गड़हा हो तो विपत्ति, खाँई हो तो पिपासा से पीड़ा, कूर्माकार (ठड्ढा) हो तो धन का नाश होता है ॥ ४६–४७ ॥

अन्यच्च—

पुष्करिणी देवकुलं चैत्यं कल्पद्रुमश्चेति ।
अशुभा विदिक्षु कथिता पूर्वोत्तरयोः शुभा एव ॥ ४८ ॥

पुष्करिणी (गडही), देवगणों का स्थान, कल्पवृक्ष ये सब विदिशाओं में अशुभ और पूर्व-उत्तर दिशाओं में शुभफल देने वाले होते हैं ॥ ४८ ॥

प्रसङ्गात्प्रशस्तकाष्ठानि—

श्रीपर्णी रोहिणी शाकं सर्जश्च सरलाः शुभाः ।
पतङ्गलोध्रशालाख्यास्तालार्जुनकशिंशपाः ॥ ४९ ॥
चन्दनाशोकबदरी–मधूकाश्च कदम्बकाः ।
प्रशस्ताश्च शमीनिम्बविल्ववर्ज्यं गृहान्तिके ॥ ५० ॥
गेहे दारुगुणैर्युक्ते गृहकर्मणि युज्यते ।
गृहे काष्ठं समं श्रेष्ठमलिन्दे विषमं शुभम् ॥ ५१ ॥

श्रीपर्णी (कायफल), रोहिणी (कुटकी), शाक (सागोन) सर्ज ये वृक्ष सीधे हो तो घरमें लगाने से शुभद होते हैं। पतङ्ग, लोध, शाल (सखुआ),

ताल, अर्जुन, शिंशपा (सीसो), चन्दन, अशोक, बैर, महुआ, कदम्ब, इन वृक्षों का घर के कामों में लगाना शुभदायक है। शमी, निम्ब, बेल ये वृक्ष घर के समीप अच्छे नहीं होते। गुणयुक्त काष्ठों का घर में लगाना अच्छा होता है। गृह में सम संख्यक और अलिन्द में विषम-संख्यक कोष्ठ लगाना अच्छा होता है॥ ४६-५१॥

अशुभा वृक्षाः—

प्लक्षोदुम्बरचूताख्या निम्बस्नुहिविभीतकाः।
दग्धाः कण्टकिनो वृक्षा वटाश्वत्थकपित्थकाः॥ ५२॥
अगस्तिशिग्रुतालाख्यास्तिन्तिणीकाश्च निन्दिताः।
अन्ये च गृहनिर्माणे योजनीयाः समा द्रुमाः॥ ५३॥

पाकड़, गूलर, आम, नीम, स्नुही (सेहुड़), विभीतक (बहेड़ा) जला-हुआ, कांटे वाला वट, पीपर, कैथ, अगस्त, शिग्रु (सहिजन), ताल, तिन्तिणी (इमली) इन काठों का घर में लगाना सर्वथा निन्दित है। अन्य सीधे काठों का लगाना शुभदायक होता है॥ ५२-५३॥

बृहत्संहितायाञ्च (५८।२)

पितृवनमार्गसुरालयवल्मीकोद्यानतापसाश्रमजाः।
चैत्यसरित्सङ्गमसम्भवाश्च षड्तोयसिक्ताश्च॥ ५४॥
कुब्जानुजातवल्लीनिपीडिता वज्रमारुतोपहता।
स्वपतितहस्तिनिपीडितशुष्काग्निप्लुष्टमधुनिलयाः॥ ५५॥
तरवो वर्जयितव्याः शुभदाः स्युः स्निग्धपत्रकुसुमभवाः।
सुरदारुचन्दनसमा मधूकतरवः शुभा द्विजातीनाम्॥५६॥
क्षत्रस्यारिष्टास्त्वश्वत्थखदिरविल्वा विवृद्धिकराः।
वैश्यानां जीवकखदिरसिन्धूकचन्दनाश्च शुभफलदाः॥५७॥
तिन्दुककेशरसर्जार्जुनोत्थशालाश्च शूद्राणाम्।
सर्वेषां वा शस्ताः सर्वे वृक्षाश्च निन्दिता ये न॥ ५८॥

पितृवन (श्मशान), रास्ता, देवालय, वल्मीकयुक्त बगीचा और तपस्वियों का आश्रम इन स्थानों पर पैदा हुए वृक्षों को, चैत्य [डीह] और नदीसंगम पर पैदा हुए, घड़े के जल से सींचे हुए, वन की वल्लियों से लपेटे हुए बिजली और वायु (आँधी) के आघात से गिरे हुए, नीच जाति और हाथी से पीडित, सूखे, जले, मधुमक्खियों के छत्ते से संयुक्त इन वृक्षों को घर में लगाना निषिद्ध है। चिकने या सुन्दर पत्तों और फूलों वाला पेड़ घर

में लगाना उत्तम होता है। ब्राह्मणों को देवदारु, चन्दन और महुआ, क्षत्रियों को अरिष्ट, पीपर, खैर और बेल, वैश्यों को जीवक (विजयसार), खैर, सिन्धूक (म्योड़ी), चन्दन एवं शूद्रों को तिन्दुक, नागकेशर, सर्ज और अर्जुन इन वृक्षों को घर में लगाना उत्तम होता है। अथवा ग्राह्यवृक्ष सभी वर्णों के लिये शुभ और निषिद्ध काष्ठ सभी वर्णों के लिये मकान में लगाने से अशुभ होते हैं। वास्तुराजवल्लभ (५।१६–१७) में भी ऐसा ही लिखा है॥

विशेषः (विश्वकर्मप्र० १००८)

एकजात्या द्विजात्या वा त्रिजात्या वा महीरुहाः।
कारयेत्सर्वगेहेषु तदूर्ध्वं नैव कारयेत् ॥५९॥
एकदारुमया गेहाः सर्वशल्यनिवारकाः।
द्विजात्या मध्यमा प्रोक्तास्त्रिजात्या अधमाः स्मृताः ॥६०॥

मकान में १ जाति के अथवा २ जाति के या ३ जाति के काष्ठों को लगाना चाहिये। इससे अधिक जाति (४, ५ इत्यादि प्रकार) के वृक्षों को मकान में नहीं लगाना चाहिये। एक ही जाति के काठों को लगाने से सम्पूर्ण शल्यजनित दोषशान्त हो जाते हैं। दो जाति का काष्ठ लगाने से मध्यम (न उत्तम और न निषिद्ध) है। तीन जाति का काष्ठ लगाना अधम होता है॥ ५९–६०॥

प्रसङ्गाद् वृक्षच्छेदनमुहूर्तः (वि० क० प्र०)—

द्व्यङ्गराशिगते सूर्ये माघे भाद्रपदे तथा।
वृक्षाणां छेदनं कार्यं सञ्चयार्थं न कारयेत् ॥ ६१ ॥
सिंहे नक्रे च दारूणां छेदनं नैव कारयेत्।
ये मोहाच्च प्रकुर्वन्ति तेषां गेहेऽग्नितो भयम् ॥ ६२ ॥

द्विस्वभाव (३।६।९।१२) राशियों में सूर्य के रहने पर विशेष कर भाद्रपद या माघ महीने में वृक्षों का काटना शुभदायक होता है। इनमें सञ्चय के लिये काटना ठीक नहीं है। सिंह और मकर के सूर्य में (उक्त-महीनों में भी मकान बनवाने के निमित्त) पेड़ काटना उत्तम नहीं होता। जो मनुष्य मोहवश इसमें पेड़ काटता है उसके मकान में अग्नि का भय होता है॥ ६१–६२॥

सौम्यं पुनर्वसुं मैत्रं करं मूलोत्तरात्रये।
स्वाती च श्रवणं चैव वृक्षाणां छेदने शुभम् ॥ ६३ ॥

मृगशिरा, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, स्वाती और श्रवण ये ९ नक्षत्र वृक्षच्छेदन (पेड़ काटने) में उत्तम हैं॥६३॥

सूर्यभाद्वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसम्मिते ।
चन्द्रर्क्षे दारुकाष्ठानां छेदनं शुभदायकम् ॥ ६४ ॥

सूर्य के नक्षत्र से ४,६, ६, १०, १३, २० इन नक्षत्रों में (अर्थात् रवियोग में) वृक्ष का काटना उत्तम फल दायक होता है ॥ ६४ ॥

कृष्णपक्षे चदुर्दश्यां रेवतीरोहिणीयुते ।
यदा तदा गुरौ लग्ने गृहार्थं तु हरेद् द्रुमान् ॥ ६५ ॥

कृष्ण पक्ष में चतुदशी को यदि रेवती या रोहिणी नक्षत्र हो और लग्न में बृहस्पति बैठे हों तो मकान के निमित्त पेड़ काटना उत्तम होता है ॥६५॥

लग्ने शुक्रे गुरौ केन्द्रेष्वगराशौ गृहोपरि ।
तृणादिभिः समाच्छाद्यो न चैवाग्निभयं भवेत् ॥ ६६ ॥

लग्न में शुक्र, केन्द्र (१।४।७।१०) में बृहस्पति हों और स्थिर राशि (२।५।८।११) का लग्न हो तो तृणादिकों से घर का छादन करना उत्तम होता है और उसमें अग्नि का भय नहीं होता ॥ ६६ ॥

वृक्षच्छेदनविधिः (बृहत्सं० ५२।११६)—

रात्रौ कृतबलिपूजं प्रदक्षिणं छेदयेद्दिवा वृत्तम् ।
धन्यमुदक्प्राग्वदनं न ग्राह्योऽन्यथा पतितः ॥ ६७ ॥

रात्रि में वृक्ष को बलि देकर और उसकी पूजा करके प्रातःकाल दक्षिणावर्त से उसे काटने पर यदि पूर्व और उत्तर की ओर गिरे तो अच्छा है। अन्य दिशा में गिरे तो उसको घर में लगाना अच्छा नहीं होता ॥ ६७ ॥

वृक्षप्रार्थना (बृ० सं० ५८।११६)—

यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् ।
अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु ते चाऽद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥६८॥
वृक्षं प्रभाते सलिलेन सिक्त्वा मध्वाज्यलिप्तेन कुठारकेण ।
पूर्वोत्तरस्यां दिशि सन्ति कृत्यं प्रदक्षिणं शेषमतो विहन्यात् ॥६९॥

'जो भूतगण इस वृक्ष पर निवास करते हैं वे मेरे द्वारा विधिपूर्वक दी हुई बलि को ग्रहण करके अन्यत्र (दूसरी जगह) अपना निवास स्थान बनावें और वे मेरी इस धृष्टता को क्षमा करें। उनको मैं प्रणाम करता हूँ।' ऐसा कह कर प्रातः काल वृक्ष को जल से सींच कर, कुल्हाड़े में मधु और घी लगाकर पहले पूर्व या उत्तर की ओर से काटना आरम्भ करे और उसे दक्षिणावर्त काटे ॥ ६८-६९ ॥

दिक्षु वृक्षपतनफलं (विश्वकर्मप्र० १०३५)—

छेदयेद्वर्तुलाकारं पतनञ्चोपकल्पयेत् ।
प्राग्दिशि पतने कुर्याद्धनधान्यसमर्चितम् ॥ ७० ॥
आग्नेयामग्निदाहः स्याद्दक्षिणे मृत्युमादिशेत् ।
नैऋत्यां कलहं कुर्यात्पश्चिमे पशुवृद्धिदम् ॥ ७१ ॥
वायव्ये चौरभीतिः स्यादुत्तरे च धनागमः ।
ईशाने च महच्छ्रेष्ठं नानाश्रेष्ठं तथैव च ॥ ७२ ॥

उपर्युक्त विधि से वृक्ष को वर्तुलाकार (गोलाकार) काटे। काटने पर यदि पूर्वदिशा की ओर पेड़ गिरे तो धनधान्य की वृद्धि, अग्निदिशा में गिरे तो अग्नि का भय, दक्षिण दिशा में गिरे तो मृत्यु, नैऋत्य कोण में गिरे तो कलह (लड़ाई-झगड़ा), पश्चिम में गिरे तो पशुओं की वृद्धि, वायव्य में गिरे तो चोरभय, उत्तर दिशा की ओर गिरे तो धन की प्राप्ति और ईशान कोण में गिरे तो अनेक प्रकार से अत्यन्त उत्तम फल होता है ॥ ७०-७२ ॥

काष्ठसंस्कारः (विश्वकर्मप्र० १०४०)—

काष्ठं नो भक्ष्यते कीटैर्यदि पक्षं धृतं जले ।
कृष्णपक्षे छेदनञ्च न शुक्ले कारयेद् बुधः ॥ ७३ ॥

वृक्ष को काट कर १५ दिन तक यदि जल में रख दिया जाय तो उसे कीडे नहीं काटते। कृष्णपक्ष में वृक्षों का काटना उत्तम होता है। शुक्लपक्ष में काटना अच्छा नहीं होता ॥ ७३ ॥

जलप्रवाहविचारः

शुभं मृतिश्च निर्धनं क्षयं च पुत्रनाशनम् ।
सुखं च राज्यसम्पदा धनं क्रमेण पूर्वतः ॥ ७४ ॥

पूर्वादिक दिशाओं में जल गिरने का स्थान हो तो उक्त फल होता है। स्फुटता के लिये चक्र देखिये ॥ ७४ ॥

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	दिशा
शुभ	मृत्यु	निर्धन	क्षय	पुत्रनाश	सुख	राज्यसम्पद्	धनाप्ति	फल

अन्यच्च—

पूर्ववाहे धनं किञ्चिदग्निकोणे धनक्षयः ।
याम्ये रोगभयं विद्यान्नैऋत्ये कलहागमः ॥ ७५ ॥

पश्चिमे मरणं सूनोर्वायव्ये बन्धुदर्शनम्।
उत्तरे सर्वसिद्धिः स्यादीशाने सुखसम्पदः ॥ ७६ ॥

इसका अर्थ पूर्वके चक्रसे स्पष्ट है ॥ ७५-७६ ॥

गृहे न रामायणभारताहवं चित्रं कृपाणाहवमिन्द्रजालिकम्।
शिलोच्चयारण्यमयं सदासुरं भीष्मं कृताक्रन्दनरं त्वनम्वरम् ॥७७॥
वाराहशार्दूलशिवापृदाकवो गृद्धाभिधोलूककपोतवायसाः।
सश्येनगोधादिवकादिपत्रिणो विचित्रिता नो शरणे शुभावहाः ॥७८॥

घर में रामायण महाभारत इत्यादि के युद्धों का चित्र, खड्गयुद्ध (तलवार का युद्ध) का चित्र, इन्द्रजालिक चित्र और पत्थर एवं काष्ठ की बनी राक्षसों की भयङ्कर मूर्ति, रोते हुए मनुष्य की मूर्ति इत्यादि बनाना अच्छा नहीं होता। वराह (सूअर), शार्दूल, शिवा (सिआरिन), पृदाकु (सर्प), गिद्ध, उल्लू, कबूतर, कौवा, बाज, गोह, बकुला इत्यादि पक्षियों का चित्र (फोटो या तसवीर) भी घरमें बनाना शुभ नहीं होता है ॥ ७७-७८ ॥

इति गृहोपकरणप्रकरणम् ॥ ६ ॥



इष्टिकाप्रकरणम् ७

इष्टिकाप्रमाणम् (विश्वकर्मप्र० ४४४-४४५)—

शिलाप्रमाणं क्रमशः प्रदिष्टं वर्णानुपूर्वेण तथाङ्गुलानाम्।
अथैकविंशद्घनविश्वनन्दा विस्तारके व्यासमितं तदर्धम् ॥ १ ॥
तदर्धमानं त्वथ पिण्डिका स्यादूर्ध्वाधिका न्यूनतरा न कार्या।
प्रमाणहीना सुतनाशकारिणी, व्यङ्गा व्ययं, भ्रष्टविवर्णदेहा ॥
धनार्तिदा, प्रस्तरगेहमाने कार्या शिला शिल्पिजनाऽनुकूला ॥ २ ॥

ब्राह्मण को २१ अङ्गुल लम्बी, $\frac{२१}{२}=१०\frac{१}{२}$ अङ्गुल चौड़ी और $\frac{२१}{४}=५\frac{१}{४}$ अङ्गुल मोटी, क्षत्रिय को १७ अङ्गुल लम्बी, $\frac{१७}{२}=८\frac{१}{२}$ अङ्गुल चौड़ी और $\frac{१७}{४}=४\frac{१}{४}$ अङ्गुल मोटी, वैश्य को १३ अङ्गुल लम्बी, $\frac{१३}{२}=६\frac{१}{२}$ अङ्गुल चौड़ी और $\frac{१३}{४}=३\frac{१}{४}$ अङ्गुल मोटी एवं शूद्र को ९ अङ्गुल लम्बी, $\frac{९}{२}=४\frac{१}{२}$ अङ्गुल चौड़ी और $\frac{९}{४}=२\frac{१}{४}$ अङ्गुल मोटी ईंट शुभफल को देने वाली होती है। इससे कम अथवा अधिक मान की ईंट बनाना शुभदायक नहीं होती, क्योंकि उक्त प्रमाणसे कम या अधिक मानवाली ईंट पुत्र का नाश करने वाली, छिन्न-भिन्न (टेढ़ी-मेढ़ी) ईंट व्यय (अधिक खर्च) कराने वाली,

खरदरी और देखने में बदरूप ईंट धनसम्बन्धी दुःख देनेवाली होती है। पत्थर के मकान में शिल्पिजनों (कारीगरों) की इच्छा के अनुसार पत्थर की ईंट बनानी चाहिये। स्मृति में भी ब्राह्मणादि वर्णों के लिये यही प्रमाण लिखा है—एकविंशद् द्विजाग्र्याणां क्षत्राणां दशसप्त च।

त्रयोदश तु वैश्यानां शूद्राणां तु नवांगुलम्॥ इति॥ १-२॥

प्रासादे तु हस्तायामाः कार्याः (विश्वकर्मप्र०)—

प्रासादादौ विधानेन कर्तव्याः सुमनोहराः।
चतुरस्राः समाः कृत्वा समन्ताद्धस्तसम्मिताः॥ ३॥

प्रासाद (राजभवन अथवा देवमन्दिर में लगाने के लिये) विधिपूर्वक सुन्दर, मनोहर चारों तरफ से बराबर (चौखूटी) एक २ हाथ लम्बी-चौड़ी ईंट बनानी चाहिये॥ ३॥

विशेषः (वास्तुराजव० ५।१२)—

दैर्घ्ये चन्द्रकलाङ्गुलोत्तमशिला मध्याङ्गुलोनान्तिमा
व्यासो दिङ्नवभूभृदुच्छ्रितिरपि त्र्यंशेन विस्तारतः॥ ४॥

१६ अङ्गुल लम्बी, १० अङ्गुल चौड़ी ईंट उत्तम, १५ अङ्गुल लम्बी, ९ अङ्गुल चौड़ी मध्यम (न उत्तम न निकृष्ट) एवं १४ अङ्गुल लम्बी, ८ अङ्गुल चौड़ी ईंट निकृष्ट होती है और इनके चौड़ाई के तृतीयांश के बराबर इन की मोटाई बनानी चाहिये॥ ४॥

अन्यच्च—

तिथ्यङ्गुलानि विजया मङ्गला सप्तचन्द्रकैः।
पक्षेन्दुभिर्निर्मला स्यात्सुखदा रामपक्षकैः॥
प्रमाणमिष्टिकायाश्च गर्गाद्यैर्मुनिभिः स्मृतम्॥ ५॥

१५ अङ्गुल लम्बी ईंट को विजय, १७ अङ्गुल की ईंट को मङ्गला, १२ अङ्गुल लम्बी ईंट को निर्मला और १३ अङ्गुल ईंट को सुखदा कहते हैं। ऐसा गर्गादि मुनियों का मत है॥ ५॥

इष्टिकारम्भमुहूर्तः—

उत्तराश्विश्रवे पुष्ये ज्येष्ठान्त्ये रोहिणी करे।
स्थिरेऽङ्गेऽर्के गुरौ मन्दे इष्टकारम्भणं चरेत्॥
तथा गेहे सुधालेपः इष्टिकारम्भमादिषु॥ ६॥

तीनों उत्तरा (उ० फ०, उ० षा०, उ० भा०), अश्विनी, श्रवण, पुष्य, ज्येष्ठा, रेवती, रोहिणी और हस्त इन नक्षत्रों में, स्थिर संज्ञक (२, ५, ८, ११) लग्नोंमें और सूर्य, गुरु, शनि इनके वारोंमें ईंट का आरम्भ करना और मकानमें चूना लगाना, पलस्तर इत्यादि कराना अच्छा होता है॥ ६॥

इष्टिकारम्भचक्रम्—

पञ्चत्रिकं त्रिकं पञ्च सप्त पञ्चावनीजभात्।
सौख्यं मृत्युः क्रमेणैव इष्टिकारम्भणे मतः॥ ७॥

मङ्गल जिस नक्षत्र पर हों उस नक्षत्रसे ५ नक्षत्रोंमें ईंट का पकाना आरम्भ करे तो सुख, फिर उसके बाद ३ नक्षत्रोंमें आरम्भ करे तो मृत्यु, उसके बादसे इसी क्रमसे ३ नक्षत्रोंमें सुख, फिर ५ नक्षत्रोंमें मृत्यु, फिर ७ नक्षत्रोंमें सुख, फिर ५ नक्षत्रोंमें मृत्यु होती है। स्पष्टताके वास्ते चक्र देखिये॥ ७॥

भौमभात्—

५	३	३	५	७	५	२८ नक्षत्र
सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	सौख्य	मृत्यु	फल

इष्टिकायामग्निदानचक्रम्—

गिरिबाणमुनिश्रुतिबाणमिते दुःखदोऽप्यथ लाभरुजोऽप्यशुभः।
दुःखदः खलु चेष्टिकवह्निविधौ कुजभादितिश्रेष्ठबुधैः कथितः॥ ८॥

मङ्गलके नक्षत्रसे ७ नक्षत्रोंमें ईंट पकानेके निमित्त अग्नि डाले तो दुःख, फिर उसके बाद ५ नक्षत्रोंमें लाभ, ७ नक्षत्रोंमें रोग, ४ नक्षत्रोंमें अशुभफल, फिर ५ नक्षत्रों में सौख्य होता है। स्फुटताके लिये नीचे का चक्र देखिये॥ ८॥

भौमभात्—

७	५	७	४	५	२८ नक्षत्र
दुःख	लाभ	रोग	अशुभ	सौख्य	फल

इष्टिकानिःसारणचक्रम्—

त्रिकं पञ्च त्रिकं सप्त पञ्चवेदमितैश्च भैः।
शुभाशुभं क्रमेणैवमिष्टिनिःसारणे बुधात्॥ ९॥

बुध के नक्षत्र से ३, ५, ३, ७, ५ और ४ इन नक्षत्रों में क्रमसे (पूर्व कथनानुसार) शुभ और अशुभ फल होते हैं। इसका अभिप्राय नीचे का चक्र देखने से और भी स्पष्ट हो जायगा॥ ९॥

३	५	३	७	५	४	२७ नक्षत्र
शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	फल

प्रसङ्गाच्छिलाभेदनमुहूर्तः (बृहद्दैवज्ञरञ्जने ८६।३२६)—

कृष्णाष्टम्यां च सप्तम्यां रौद्रभे यस्य कस्यचित् ।
राशौ लग्ने कुजांशे वा शिलाभेदः प्रशस्यते ॥ १० ॥

इसका अर्थ सरल है ॥ १० ॥

इति इष्टिकाप्रकरणम् ॥ ७ ॥

द्वारप्रकरणम् ८

(१) गृहेशराशिवशाद् द्वारदिग्विभागः (ज्योतिर्निबन्धे)—

कुलीरालिझषाणां च पूर्वद्वारं शुभावहम् ।
कन्यामकरयुग्मानां दक्षिणद्वारमिष्टदम् ॥ १ ॥
तुलाकुम्भवृषाणां च पश्चिमाभिमुखं स्मृतम् ।
सौम्यद्वारं शुभाय स्यान्मेषसिंहधनुर्भृताम् ॥ २ ॥

कर्क, वृश्चिक और मीन राशिवालों के लिये पूर्वदिशा में, कन्या, मकर और मिथुन राशिवालों के लिये दक्षिण दिशा में; तुला, कुम्भ और वृष राशिवालों के लिये पश्चिम दिशा में एवं मेष, सिंह और धनुराशिवालों के लिये उत्तर दिशा में द्वार (मकान का मुख=सदर दरवाजा) बनाना उत्तम फलदायक होता है ॥ १-२ ॥

विशेषः (वास्तुराजव० १।१२)—

राशीनामलिमीनसिंहभवनं पूर्वाननं शोभनं
कन्याकर्कटनक्रराशिगृहिणां याम्याननं मन्दिरम् ।
राशेर्धन्वितुलायुगस्य सदनं शस्तं प्रतीचीमुखं
पुंसां कुम्भवृषाजराशिजनुषां सौम्याननं स्याद् गृहम् ॥ ३ ॥

वृश्चिक, मीन और सिंह राशिवालों के लिये पूर्वदिशा में; कन्या, कर्क और मकर राशिवालों के लिये दक्षिण दिशामें; धनु, तुला, और मिथुन राशिवालों के लिये पश्चिमदिशा में और कुम्भ, वृष तथा मेषराशिवालों के लिये उत्तर दिशामें मकान का दरवाजा बनाना उत्तम होता है ॥ ३ ॥

अन्यो विशेषः (बृहद्दैवज्ञर० (८६।३५४)—

पूर्वे ब्राह्मणराशीनां वैश्यानां दक्षिणे शुभम् ।
शूद्राणां पश्चिमे द्वारं नृपाणामुत्तरे स्मृतम् ॥ ४ ॥

ब्राह्मण राशि (४।८।१२) वालों को पूर्वदिशा में; वैश्य राशि (२।६।१०) वालों के लिये दक्षिण दिशा में, शूद्रराशि (३।७।११) वालों के लिये पश्चिम

दिशा में एवं क्षत्रिय राशि (१।५।९) वालों के लिये उत्तर दिशा में घर का द्वार बनाना उत्तम होता है ॥ ४ ॥

यद्यपि उपर्युक्त कई विकल्प (भेद) शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं तथापि यह अन्तिम भेद ही माना जाता है और इसी की पुष्टि के लिये अधिक वचन भी मिलते हैं। यथा (वास्तुप्रदीपे ४६)—

स्यात्प्राङ्मुखं ब्राह्मणराशिसद्म वोदङ्मुखं क्षत्रियराशिकानाम्।
वैश्यस्य ज्ञेयं यमदिङ्मुखं हि शूद्राभिधानामथ पश्चिमास्यम् ॥ इति।

(२) आयवशाद् द्वारविचारः (वास्तुराजव० ३।७)—

देयाः सिंहगजध्वजाश्च वृषभा सिंहध्वजौ कुञ्जरे
सिंहो वै ध्वज इष्यते न वृषभोऽन्यत्रापि देयो बुधैः ॥ ५ ॥

सामान्यतः मकान की सिंह, गज, ध्वज और वृष ये ४ आय शुभदायक होती है। कुञ्जर (गज) आय वाले मकान में सिंह और ध्वज आय (अर्थात् सिंह आय की दिशा दक्षिण और ध्वज आय की दिशा पूर्व) का द्वार (सदर दरवाजा) बनाना उत्तम है। ध्वज आय वाले मकान में सिंह आय (दक्षिण दिशा) का द्वार होना चाहिये। परन्तु वृष आय वाले मकान में सिंह आय (दक्षिण दिशा) का द्वार बनाना शुभदायक नहीं होता है॥

ज्योतिर्निबन्धे गर्गः—

सर्वद्वारे ध्वजो देयः पश्चिमास्यं विना हरिः।
प्राङ्मुखे दक्षिणे चैव गजः पूर्वमुखे वृषः ॥ ६ ॥

ध्वज आय वाले मकान का मुख (द्वार) चारो ओर, सिंह आय वाले मकान का द्वार पश्चिम दिशा को छोड़ कर अन्य तीनों (पूर्व, दक्षिण और उत्तर) तरफ, गज आय वाले मकान का मुख (दरवाजा) पूर्व और दक्षिण दिशा में और वृष आय वाले मकान का मुख पूर्व दिशा में बनाना उत्तम होता है ॥ ६ ॥

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	दिशा
कर्कट वृश्चिक मीन	कन्या मकर मिथुन	तुला कुम्भ वृष	मेष सिंह धनु	ज्योतिर्निबन्धोक्त
वृश्चिक मीन सिंह	कन्या कर्कट मकर	धनु तुला मिथुन	मेष वृष कुम्भ	वास्तुराजवल्लभोक्त
ब्राह्मणराशि ४।८।१२	वैश्यराशि २।६।१०	शूद्रराशि ३।७।११	नृपराशि १।५।९	बृहद्दैवज्ञरञ्जनोक्त

(३) ब्राह्मणादिवर्णपरत्वेन—

ध्वजे परास्यं विप्राणां राज्ञां सिंहेप्युदङ्मुखम् ।
गजे शूद्रस्य याम्यास्यं विशः पूर्वमुखं वृषे ॥ ७ ॥

ध्वज आय वाले मकान में और ब्राह्मण के लिये पश्चिम दिशा में, सिंह आयवाले मकान में और क्षत्रिय को उत्तर दिशा में, गज आय वाले मकान में और शूद्र को दक्षिण दिशा में और वृष आय वाले मकान में और वैश्य को पूर्व दिशा में मुख (द्वार) बनाना उत्तम होता है ॥ ७ ॥

इससे यह भी झलकता है कि ब्राह्मणों के लिये ध्वज आय, क्षत्रियों के लिये सिंह आय, वैश्यों के लिये वृष आय और शूद्रों के लिये गज आय का मकान बनाना उत्तम होता है । इसी लिये मुहूर्तचिन्तामणि में रामदैवज्ञने भी लिखा है—

ध्वजादिकाः सर्वदिशि ध्वजे मुखं कार्यं हरौ पूर्वयमोत्तरे तथा ।
प्राच्यां वृषे प्राग्यमयोर्गजेऽथवा पश्चादुदक्पूर्वयमे द्विजादितः ॥ इति ।

(४) ध्रुवादिनामवशात्प्रस्तारक्रमोक्तं ज्ञेयम् (द्र० प्रक० ५।६१–६७)—

(५) गेहारम्भमासवशाच्च (रत्नमालायाम् १७।१४–१५)—

कर्किनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि ।
तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखानि च कुर्यात् ॥ ८ ॥
अन्यथा यदि करोति दुर्मतिर्व्याधिशोकधननाशमश्नुते ।
मीनचापमिथुनाङ्गनागते कारयेन्न गृहमेव भास्करे ॥ ९ ॥

कर्क (श्रावण), नक्र (माघ), सिंह और कुम्भ राशिके सूर्यमें गृहारम्भ हो तो पूर्व और पश्चिम मुख (द्वार) का मकान बनवाना चाहिये। तुला, मेष, वृष और वृश्चिक राशिके सूर्य में यदि गृह बनाना हो तो दक्षिण और उत्तर मुख का मकान बनवाना उत्तम होता है। इससे विपरीत जो दुरात्मा मकान का द्वार (दरवाजा) बनवाता है वह व्याधि (शारीरिक रोग), शोक और धननाश का अनुभव करता है। मीन, धनु, मिथुन और कन्या इन राशियोंके सूर्यमें कदापि मकान बनवाना अच्छा नहीं है ॥ ८-९ ॥

सविशेषः (मुहूर्तगणपतौ १८।५४–५५)

कुम्भेऽर्के फाल्गुने मासि श्रावणे सिंहकर्कयोः ।
पौषे नक्रे गृहं कुर्यात् पूर्वपश्चिमदिङ्मुखम् ॥ १० ॥
मार्गे तुलाऽलिगे भानौ वैशाखे वृषभाजयोः ।
दक्षिणे दिङ्मुखं श्रेष्ठं मन्दिरं नेष्टमन्यथा ॥ ११ ॥

फाल्गुन महीना और कुम्भराशि के सूर्य में, श्रावण महीना और कर्क या सिंह राशि के सूर्य में, पौष महीना और मकर राशि के सूर्य में गेहा-

रम्भ हो तो पूर्व या पश्चिम मुह का (पूर्व या पश्चिम दशा में दरवाजे वाला) घर बनाना उत्तम है। मार्गशीर्ष (अगहन) महीना और तुला या वृश्चिक राशि के सूर्य में, वैशाख महीना और वृष या मेष राशि के सूर्य में दक्षिण मुह (दरवाजे) का मकान बनवाना श्रेष्ठ होता है। इससे विपरीत नेष्टहोता है॥

ज्योतिनिबन्धे च—

नभस्यादिषु मासेषु त्रिषु त्रिषु यथाक्रमम्।
पूर्वादिदिक्शिरो वास्तु कुर्यात्तद्दिङ्मुख गृहम् ॥ १२ ॥
प्रतिकूलमुखं गेहं दुःखशोकभयप्रदम्।
सर्वतो मुखगेहानामेष दोषो न विद्यते ॥ १३ ॥

भाद्रपद से आरम्भ करके ३, ३ महीनों में क्रम से राहु का शिर पूर्व आदि चारो दिशाओं में रहता है। अर्थात् भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक महीनों में पूर्व दिशा में; मार्गशीर्ष, पौष और माघ महीनों में दक्षिण दिशा में; फाल्गुन, चैत्र और वैशाख महीनों में पश्चिम दिशा में और ज्येष्ठ, आषाढ़ तथा श्रावण महीनों में उत्तर दिशा में राहु का शिर रहता है। इसलिये राहु के शिर की दिशा में मकान का मुख (सदर दरवाजा) बनाना चाहिये। इससे विपरीत दिशा में मकान का मुखबनाने से दुःख, शोक और नाना प्रकार का भय होता है। परन्तु यदि चारो ओर घर का द्वार हो तो यह उपर्युक्त प्रतिबन्ध नहीं होता॥ १२-१३॥

सौरमासवशाद्देव एष क्रम उक्तः (वास्तुराजव० १।६)—

कन्यादित्रिषु पूर्वतो यमदिशि त्याज्यं च चापादितो
द्वारं पश्चिमतस्त्रिके जलचरात्सौम्ये रवौ युग्मतः।
तस्माद्व्यस्तदिशामुखं तु भवनद्वारादिकं हानिकृत्
सिंहे चाऽथ वृषे च वृश्चिकघटं याते हितं सर्वतः ॥ १४ ॥

कन्या, तुला और वृश्चिक राशि के सूर्य में पूर्व दिशा में; धनु, मकर और कुम्भ राशि के सूर्य में दक्षिण दिशा में; मीन, मेष और वृष राशि के सूर्य में पश्चिम दिशा में और मिथुन, कर्क एवं सिंह राशि के सूर्य में उत्तर दिशा में वत्स का मुख रहता है। वत्स के मुख की दिशा में मकान का मुख बनाना उत्तम नहीं होता। और उसके विपरीत (अर्थात् सामने की) दिशा में भी द्वार नहीं बनाना चाहिये। सिंह, वृष, वृश्चिक और कुम्भ राशि के सूर्य में चारो दिशाओं में दरवाजा बनाना उत्तम होता है (अर्थात् चाहे जिस दिशा में द्वार बना सकता है)॥ १४॥

(६) गेहारम्भतिथिवशाच्च (पी० धा०)—

पूर्णिमातोऽष्टमीं यावत्पूर्वास्यं वर्जयेद्गृहम्।

उत्तरस्यां न कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशीम् ॥ १५ ॥
अमातश्चाष्टमीं यावत्पश्चिमास्यं विवर्जयेत् ।
नवम्यादौ दक्षिणास्यं यावच्छुक्लचतुर्दशीम् ॥ १६ ॥

मकान के आरम्भ का मुहूर्त यदि पूणिमा से लेकर कृष्णपक्ष की अष्टमी के भीतर हो तो मकान का मुख (द्वार) पूर्व दिशा में न बनवावे। यदि कृष्ण पक्ष की नवमी से चतुर्दशी के भीतर आरम्भ का मुहूर्त हो तो उत्तर दिशा की ओर द्वार न बनवावे। अमावास्या से शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक आरम्भ का मुहूर्त हो तो पश्चिम दिशा में द्वार न बनावे। एवं शुक्ल पक्ष की नवमी से चतुर्दशी के अन्दर गेहारम्भ का दिन निश्चित हो तो दक्षिण दिशा में मकान का सदर दरवाजा न बनावे ॥ १५—१६ ॥

(७) गृहनक्षत्रवशात्सारण्युपरितनी पंक्तिरवलोक्या।

(८) पूर्वादिदिक्षु द्वारभेदास्तत्रैकाशीतिपदस्य विभागप्रदर्शनम्।

वाराहसंहितायाम् (५२। ४२)—

एकाशीतिविभागे दश दश पूर्वोत्तरायता रेखाः।
अन्तस्त्रयोदश सुरा द्वात्रिंशद्बाह्यकोणस्थाः ॥ १७ ॥

एकाशीति ८१ पद का वास्तु बनाने के लिये १० रेखा पूर्व—पश्चिम और १० रेखा उत्तर—दक्षिण को बनाना (ऐसा करने से ८१ कोठे हो जायंगे) उनमें भीतर १३ देवता और बाहर ३२ देवता होते हैं ॥ १७ ॥

वास्तुपूजन के समय ४५ देवताओं का ८१ कोठे के अन्दर विन्यास करना पड़ता है। इस अभिप्राय से यहाँ ४५ देवताओं का उल्लेख किया है। किन्तु द्वार में बाहरी ३२ देवताओं के भागों का ही प्रयोजन पड़ता है। इसलिये आगे के श्लोकों से केवल उन्हीं का विभागक्रम दिखाते हैं—

एकाशीतिपदचक्रम्।

१ शिखी	२ पर्जन्यः	३ जयन्तः	४ इन्द्रः	५ सूर्यः	६ सत्यः	७ भृशः	८आकाशः	९ वायुः
३२ दितिः	४२ आपः						४३सवित्र	१० पूषा
३१ अदितिः		४१ आपव	३४ अर्यमा			३५ सविता	११ वितथः	
३० सर्पाः		४० पृथ्वीधरः	३३ ब्रह्मा			३६ विवस्वान्	१२ बृहत्क्षतः	
२९ सोमः							१३ यमः	
२८ भल्लाटः							१४ गन्धर्वः	
२७ मुख्यः		३९ राजयक्ष्मा	३८ मित्रः			३७ इन्द्रः	१५ भृङ्गराजः	
२६ अहिः	४५ रुद्रः	२३ शोषः	२२ असुरः	२१ वरुणः	२० पुष्पदन्तः	१९ सुग्रीवः	४४विजय	१६ मृग
२५ रोगः	२४ पापः						१८ दौ०	१७ पि०

तत्र ३२ बाह्यकोणास्था देवाः—

शिखिपर्यन्यजयन्तेन्द्रसत्या भृशोऽन्तरिक्षश्च।
ऐशान्यादि क्रमशो दक्षिणपूर्वेऽनिलः कोणे ॥ १८ ॥
पूषावितथबृहत्क्षतयमगन्धर्वाख्यभङ्गराजमृगाः।
पितृदौवारिकसुग्रीवकुसुमदन्ताऽम्बुपत्यसुराः ॥ १९ ॥
शेषोऽथ पापयक्ष्मा रोगः कोणे ततोऽहिमुख्यौ च।
भल्लाटसोमभुजगास्ततोऽदितिदितिरिति क्रमशः ॥ २० ॥

१७ वें श्लोक के अनुसार बनाये हुये ८१ कोठों के वास्तुपद में ईशान कोण से आरम्भ करके अग्नि कोण तक १ शिखि, २ पर्यन्य, ३ जयन्त, ४ इन्द्र, ५ सूर्य, ६ सत्य, ७ भृश, ८ आकाश इन आठो देवताओं का और पूर्व तथा दक्षिण (अग्नि) कोण में ९ वायु का भाग होता है। उसके बाद अग्नि कोण से नैऋत्य कोण तक १० पूषा, ११ वितथ, १२ बृहत्क्षत, १३ यम, १४ गन्धर्व, १५ भृङ्गराज, १६ मृग, १७ पितृ, इनका फिर नैऋत्य कोण से वायव्य कोण तक १८ दौवारिक, १९ सुग्रीव, २० पुष्पदन्त, २१ वरुण, २२ असुर, २३ शोष, २४ पाप और २५ रोग इनका उसके बाद वायव्य कोण से ईशान कोण तक २६ अहि, २७ मुख्य, २८ भल्लाट, २९ सोम, ३० सर्प, ३१ अदिति और ३२ दिति इन देवताओं का भाग क्रम से होता है। स्पष्टता के लिये चक्र देखिये ॥ १८—२० ॥

६४ पदविभागस्तत्रैव (५२ । ५५-५६)—

अष्टाष्टकपदमथवा कृत्वा रेखाश्च कोणगास्तिर्यक्।
ब्रह्मा चतुष्पदोऽस्मिन्नर्धपदा ब्रह्मकोणस्थाः ॥ २१ ॥
अष्टौ च बहिष्कोणेष्वर्धपदास्तदुभयस्थिताः सार्धाः।
उक्तेभ्यो ये शेषास्ते द्विपदा विंशतिस्ते च ॥ २२ ॥

अथवा ६४ पद का वास्तु बनावे। पूर्व विधि से ९ रेखायें पूर्वपश्चिम को और ९ रेखायें उत्तर दक्षिण को बनाने से ६४ कोष्ठ का वास्तुपद होता है। इस में कोणों में लगी तिर्यक् रेखायें बनानी चाहिये। एवं इसके बीच में चार पद का ब्रह्मा का स्थान होता है। कोणों में आधा २ पद होता है। यों ४ कोणों में मिल कर ८ अर्धपद होते हैं कहे हुए से जो अवशिष्ट हैं वे दो दो पद के होते हैं। इनकी स्पष्टता के लिये नीचे का चक्र देखिये ॥ २१-२२ ॥

६४ वास्तुचक्रम् ।

१ शिखी / ३२ दिति	२ पर्यन्त	३ जयन्त	४ इन्द्र	५ सूर्य	६ सत्य	७ भृश	८ आकाश / ९ वायु
३१ अदिति							१० पूषा
३० भुजग							११ वितथ
२९ सोम							१२ बृहत्क्षत
२८ भल्लाट							१३ यम
२७ मुख्य							१४ गन्धर्व
२६ अहि							१५ भृङ्गराज
२५ रोग / २४ पापयक्ष्मा	२३ शोष	२२ असुर	२१ वरुण	२० पुष्पदंत	१९ सुग्रीव	१८ दौवारिक	१६ मृग / १७ पितृ

तत्र द्वारफलानि तत्रैव (५२।६६–७३)—

नवगुणसूत्रविभक्तान्यष्टगुणेनाऽथ वा चतुःषष्टेः ।
द्वाराणि यानि तेषामनलादीनां फलोपनयः ॥ २३ ॥
अनिलभयं स्त्रीजननं प्रभूतधनतां नरेन्द्रवाल्लभ्यम् ।
क्रोधपरता नृतत्वं क्रौर्यं चौर्यं च पूर्वेण ॥ २४ ॥
अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भैक्ष्यपानसुतवृद्धिः ।
रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ॥ २५ ॥
सुतपीडा रिपुवृद्धिर्न सुतधनाप्तिः श्रुतार्थफलसम्पत् ।
धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ॥ २६ ॥
वधबन्धो रिपुवृद्धिः सुतधनलाभः समस्तु गुणसम्पत् ।
पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः स्त्रियां नैःस्व्यम् ॥ २७ ॥

नव गुणित सूत्र से विभाजित करने पर अर्थात् ८१ पद में अथवा

अष्टगुणित सूत्र से विभाजित ६४ पद में उपर्युक्त देवताओं के विभाग कहे गये हैं। उनके फलों का आगे के पद्यों से आदेश करना चाहिये। पूर्व ओर १ शिखि के भाग में द्वार बनाने से अग्नि का भय, २ पर्यन्य के भाग में द्वार बनाने से कन्याओं की वृद्धि, ३ जयन्त के भाग में द्वार बनाने से प्रचुर धनका लाभ, ४ इन्द्र के भाग में द्वार बनाने से राजप्रियता, ५ सूर्य के भाग में द्वार बनाने से क्रोध की अधिकता, ६ सत्य के भाग में घर का द्वार बनाने से असत्यभाषण की अधिकता, ७ भृश के भाग में द्वार बनाने से क्रूरता और ८ आकाश के भाग में द्वार बनाने से चोरी का भय होता है। दक्षिण ओर ९ वायु के भाग में द्वार बनाने से सन्तान की कमी, १० पूषा के भाग में द्वार बनाने से सेवकाई, ११ वितथ के भाग में द्वार बनाने से नीचता, १२ बृहत्क्षत के भाग में द्वार बनाने से भक्ष्य, पान और पुत्र इनकी वृद्धि, १३ यम के भाग में द्वार बनाने से भयंकरता, १४ गन्धर्व के अंश में द्वार बनाने से कृतघ्नता, १५ भृङ्गराज के हिस्से में द्वार बनाने से निर्धनता और १६ मृग के भाग में घर का द्वार बनाने से पुत्र के पराक्रम का नाश होता है। पश्चिम दिशा में १७ पितृ के भाग में द्वार बनाने से अल्पायु और निर्धनता, १८ दौवारिक के भाग में द्वार बनाने से व्यय की अधिकता, १९ सुग्रीव के अंश में द्वार बनाने से धननाश, २१ वरुण के भाग में द्वार हो तो भोग की प्राप्ति, २२ असुर के हिस्सेमें द्वार बनाया जाय तो राजभय, २३ शोष के भाग में द्वार बनवाने से रोग की अधिकता और पाप के हिस्से में द्वार करने से पाप का सञ्चय होता है। एवं उत्तर दिशा में २५ रोग के अंश में द्वार बनाने से वधबन्ध का भय, २६ अहिके भाग में दरवाजा करने से शत्रुओं की वृद्धि, २७ मुख्य के हिस्से में द्वार बनाने से पुत्र और धन का लाभ, २८ भल्लाट के भाग में दरवाजा लगाने से विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति, २९ सोम के भाग में द्वार के होने से धर्म और शील की उन्नति, ३० सर्प के भाग में द्वार करने पर पुत्रों से शत्रुता, ३१ अदिति के भाग में द्वार बनाने पर स्त्रीयों में दुष्टता और ३२ दिति के भाग में घर का द्वार करने से निर्धनता होती है॥ २३-२७॥

उदाहरण—

२५×२७½=६८७ पिण्ड है पूर्व दिशा की ओर गृह का द्वार करना है तो २७½ हाथ लम्बाई में ९ नव का भाग दे दिया तो $\frac{२७\frac{१}{२}}{९}$=३ हाथ १½ अंगुल के करीब एक एक भाग का मान हुआ। अब उत्तर ओर से ३ हाथ १½ अंगुल का एक एक क्रम से शिखि, पर्याय, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश और आकाश इन ८ देवताओं का ८ भाग हुआ अग्निकोण में नववाँ वायु का भाग पड़ेगा। जिसकी

गिनती दक्षिण के तरफ होगी। एवं चारो दिशाओं में देवताओं का भाग कल्पना कर के नीचे लिखे चक्रानुसार फल की कल्पना करे।

३२ बाह्यदेवताभागे द्वारफलबोधकचक्रम्।

पूर्व	१ शिखि	२ पर्यन्य	३ जयन्त	४ इन्द्र	५ सूर्य	६ सत्य	७ भृश	८ आकाश
	अग्निभय	स्त्रीलाभ	बहुधन	नृपवाल्लभ्य	क्रोध	असत्यता	क्रूरता	चोरी
दक्षिण	९ वायु	१० पूषा	११ वितथ	१२ बृहत्क्षत	१३ यम	१४ गन्धर्व	१५ भृंगराज	१६ मृग
	अल्पापत्य	सेवकत्व	नीचत्व	सन्तति	क्षुद्रकर्मा	कृतघ्नता	निर्धनता	सुतवीर्य नाश
पश्चिम	१७ पितृ	१८ दौवारिक	१९ सुग्रीव	२० पुष्पदन्त	२१ वरुण	२२ असुर	२३ शोष	२४ पाप
	स्वल्पायु निर्धन	व्यय	धन नाश	धन वृद्धि	भोग	राजभय	अतिरोग	पापसञ्चय
उत्तर	२५ रोग	२६ अहि	२७ मुख्य	२८ भल्लाट	२९ सोम	३० सर्प	३१ अदिति	३२ दिति
	वधबन्ध	शत्रुभय	धनपुत्रलाभ	विपुललक्ष्मी	धर्मशील	बहुवैर	स्त्रीदोष	धननाश

(६) प्रचलितः प्रकारः (ज्या० नि०)—

नवभागं गृहं कुर्यात् पञ्च भागं तु दक्षिणे।
त्रिभागमुत्तरे कृत्वा शेषे द्वारं प्रकल्पयेत् ॥ २८ ॥

मकान की लम्बाई (जिस दिशामें द्वार बनाना हो उस ओर की लम्बाई) का बराबर ९ नव हिस्सा करके ५ भाग दाहिने ओर और ३ भाग बाँये तरफ छोड़ कर शेष (अर्थात् बायें ओर से चौथे) भाग में द्वार बनाना चाहिये ॥ २८ ॥

ग्रन्थान्तरे विशेषः—

दैर्घ्ये नवांशात्पदमत्र सव्याद्द्वारं शुभं प्राक् त्रिचतुर्थभागे।
चतुर्थषष्ठे दिशि दक्षिणस्यां पश्चाच्चतुः पञ्चमके तथोदक् ॥ २९ ॥

बाँये ओर से लम्बाई के तीसरे और चौथे नवांश में पूर्व दिशा में, चौड़ाई (दक्षिण दिशा के लम्बाई) के चौथे और छठे नवमांश में दक्षिण दिशा में, लम्बाई और चौड़ाई के चौथे और पाँचवें नवमांशों में पश्चिम और उत्तर दिशा में द्वार बनवाना उत्तम होता है ॥ २९ ॥

दक्षिणवामविचार (ज्यो० नि०)—

व्यासगृहाणि च विद्याद्द्विपादीनामुदग्दिशाद्यानि।
विशतां यथा भवनं भवन्ति तान्येव दक्षिणतः ॥ ३० ॥

ब्राह्मणादि वर्णों के लिये उत्तरादि दिशाओं में द्वारवाला मकान शुभदायक होता है अर्थात् ब्राह्मण को उत्तर मुहका, क्षत्रिय को पूर्वदिशा का,

वैश्य को दक्षिण दिशा का और शूद्र को पश्चिम दिशा का द्वार बनाना चाहिये। घरमें प्रवेश करते समय जो भाग दाहिने ओर पड़े वही दाहिना होता है॥

मकान के दाहिने तरफ ५ हिस्सा और बांये ओर ३ हिस्सा छोड़ कर बीच वाले हिस्से में द्वार बनाना पूर्वोक्त वचनों से स्पष्ट सिद्ध है। और मकान का दाहिना भाग वही है जो मकान से निकलते हुए मनुष्य का दाहिना भाग होता है। एवं मकान का बायां भाग वह है जो निकलने के समय मनुष्य का बायां भाग होता है। हम यदि पूर्व ओर मुख करके खड़े हो जाँय तो हमारा दाहिना अङ्ग दक्षिण दिशा की ओर और बायां अङ्ग उत्तर दिशा की ओर हो जायगा वैसे ही यदि मकान का मुख पूर्व ओर हो तो मकान का दाहिना हिस्सा दक्षिण दिशा की ओर और बायां भाग उत्तर दिशा की ओर होगा। और हमारे सामने खड़े हुए मनुष्य का दाहिना-बायां अङ्ग नहीं होता, विपरीत होता है अर्थात् हमारा दाहिना हाथ उसके बायें हाथ की ओर और उसका दाहिना हाथ हमारे बांये हाथ की ओर पड़ता है इस चाल से मनुष्य के मकान में प्रवेश करते समय मनुष्य का बांया भाग मकान के दाहिने भाग की ओर और मनुष्य का दाहिना भाग मकान के बायें भाग की ओर पड़ेगा। यही बृ० वा० मालाकार जी का भी मत है। इसीलिये उन्होंने 'नवमभागं गृहं कुर्य्या'दित्यादि श्लोक की टीका में।

'दक्षिणाङ्गः स वै प्रोक्तेः मन्दिरान्निःसृते सति।
यो भूयाद्दक्षिणे भागे वामे भूयात्स वामगः॥'

इस श्लोक को उपन्यस्त किया है। इति दिक्।

(१०) द्वारशुभाशुभज्ञानाय द्वारपालविचारः—

दिशश्च स्वरमादाय ग्रामनामेति गण्यते।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं शेषं च द्वारपालकाः॥ ३१॥
रविश्चन्द्रः कुजः सौम्यः शनिर्जीवस्तमो भृगुः।
शुभग्रहे शुभं नित्यं पापे दुःख प्रजायते॥ ३२॥

जिस दिशा में दरवाजा बनाना हो उस दिशा, ग्राम और मकान का स्वामी इन तीनों के स्वरों (१।२६ श्लो० दे०) का योग करके ८ का भाग देने से १ शेष बचे तो सूर्य, २ शेष बचे तो चन्द्रमा, ३ शेष बचे तो मङ्गल, ४ शेष बचे तो बुध, ५ शेष बचे तो शनि, ६ शेष बचे तो बृहस्पति, ७ शेष बचे तो राहु और ८ शेष बचे तो शुक्र ये आठ द्वारपाल होते हैं। शुभग्रह (अर्थात् २ चन्द्रमा, ४ बुध, ६ बृहस्पति और ८ शुक्र) द्वारपाल हों तो सर्वदा सुख और पापग्रह (अर्थात् १ सूर्य, ३ मङ्गल, ५ शनैश्चर और ७ राहु) द्वारपाल हो तो निरन्तर दुःख होता रहता है। ३१—३२॥

अन्यच्च—

सम्मुखे स्वरमादाय ग्रामनामसमन्वितः।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं शेषं द्वारं विनिर्दिशेद्॥ ३३॥

निर्धनः धनवान् चैव दाता चैव नपुंसकः ।
लक्ष्मीपतिर्धनाढ्यश्च सर्वशून्यं दरिद्रता ॥ ३४ ॥

सम्मुख वाली दिशा का स्वर और ग्राम का नाम (अर्थात् नामाक्षर) जोड़ के आठ का भाग देना यदि १ शेष बचे तो निर्धन, २ शेष बचे तो धनवान् , ३ शेष बचे तो दाता, ४ शेष बचे तो नपुंसक, ५ शेष बचे तो लक्ष्मीपति (विष्णु), ६ शेष बचे तो धनाढ्य, ७ शेष बचे तो सर्वशून्य और ८ शेष बचे तो दरिद्र नाम का द्वार होता है। जैसा जिसका नाम वैसा ही उसका फल भी होता है (१, ४, ७, ८ ये अशुभ और २, ३, ५, ६ ये शुभफलदायक होते हैं) ॥ ३३—३४ ॥

प्रकारान्तरेण द्वाराधिपाः—

दक्षिणे गृहबाणघ्नं पतिनामाक्षरैर्युतम् ।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषं द्वाराधिपाः स्मृताः ॥ ३५ ॥
रवौ सन्तानहानिः स्याच्चन्द्रे कन्या कुजे शिखी ।
बुधे धनं शनौ रोगं गुरौ पुत्रं त्वगौ रिपुः ॥ ३६ ॥
भृगौ सौख्यं मृतिः केतौ द्वारस्य नवभेदकम् ।
प्रवेशे दक्षिणे ग्राह्यं निर्गमे वामतस्तथा ॥ ३७ ॥

प्रवेश करने के समय दाहिने, घर में से निकलने के समय बायें भाग में दरवाजे से लेकर पिण्ड के प्रान्त तक जितने हाथ हों उनको ५ से गुणा करके गुणन फल में मकान के मालिक के नाम के अक्षर को जोड़ कर ९ का भाग देना यदि १ शेष बचे तो सूर्य द्वाराधिपति होते हैं यह सन्तान की हानि करने वाले हैं। २ शेष बचे तो चन्द्रमा कन्याओं की अधिकता करने वाले, ३ शेष बचे तो मङ्गल अग्निका भय करने वाले, ४ शेष बचे तो बुध धनलाभ करने वाले, ५ शेष बचे तो शनि रोगकारक, ६ शेष बचे तो बृहस्पति पुत्र देने वाले, ७ शेष बचे तो राहु शत्रु पैदा करने वाले, ८ शेष बचे तो शुक्र नाना प्रकार का सुख देने वाले और ९ शेष बचे तो केतु मृत्यु को देने वाले होते हैं (अर्थात् १, ३, ५, ७ और ९ शेष बचे तो शुभफल होता है) ॥ ३५–३७ ॥

प्रधानद्वारमपहाय सर्वाणि द्वाराणि तुल्यप्रमाणानि विधेयानि
(वस्तुराजवल्लभे ५।७३–७४)—

द्वारोर्ध्वे यद्द्वारमस्य प्रमाणं सङ्कीर्णं वा शोभनं नाऽधिकं यत् ।
ह्रस्वद्वाराण्येव यानि पृथूनि तेषां शीर्षाण्येकसूत्राणि कुर्यात् ॥३८॥
सर्वद्वारं चोयमानं रुजायै यद्वा ह्रस्वं तत्करोत्यर्थनाशम् ।
गेहाद्यं यत्पूर्ववास्तुस्वरूपं तेषां भङ्गान्नैव सौख्यं कदाचित् ॥३९॥

एक दरवाजे के ऊपर यदि दूसरा दरवाजा बनाना हो तो उसको नीचे के दरवाजे की अपेक्षा छोटा बनाना चाहिये। बड़ा कदापि नहीं बनाना चाहिये। छोटे बड़े जितने दरवाजे लगाये जाँय उन सबों का शीर्ष एक सूत अर्थात् एक सीध में बनाना उत्तम है। द्वार का मान यदि प्रमाण से अधिक हो तो रोग देने वाला और प्रमाण से कम हो तो धन का नाश करने वाला होता है। वास्तुस्वरूप जो गृह, द्वार इत्यादि हैं उनका अङ्ग-भङ्ग हो जाय तो उस मकान में बसने वालों को कदापि सुख नहीं होता॥ ३८-३९॥

प्रधानद्वारापेक्षयाऽन्येषां हीनत्वं तल्लक्षणञ्च (बृहत्सं० ५२।७९)—

मूलद्वारं नान्यैरभिसन्दधीत रूपद्धर्या।
घटफलपत्रप्रमथादिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात्॥ ४०॥

प्रधान द्वार (सदर दरवाजा) की अपेक्षा अन्य दरवाजों को रूप और समृद्धि विशिष्ट नहीं बनवाना चाहिए और उस प्रधान द्वार में घट, पत्र, फल इत्यादि माङ्गलिक चिह्न बनाना उत्तम होता है॥ ४०॥

द्वारप्रमाणं (वास्तुराजव० ५।१३)—

षष्ट्या वाऽथ शतार्धसप्ततियुतैर्व्यासस्य हस्ताङ्गुलै-
र्द्वारस्योदयको भवेच्च भवने मध्यं कनिष्ठोत्तमौ।
दैर्घ्यार्धेन च विस्तरः शशिकलाभागोधिकः शस्यते
दैर्घ्यात्त्र्यंशविहीनमर्धरहितं मध्यं कनिष्ठं क्रमात्॥ ४१॥

मकान के व्यास (विस्तार) के तुल्य अङ्गुल में ५० अङ्गुल और जोड़ देने पर कनिष्ठ द्वार की ऊँचाई, ६० अङ्गुल और जोड़ देने से मध्यम द्वार की ऊँचाई और ७० अङ्गुल और जोड़ देने से उत्तम द्वार की ऊँचाई होती है। लम्बाई के १३ वें हिस्से से युक्त लम्बाई के आधे के बराबर उत्तम द्वार की चौड़ाई, लम्बाई में लम्बाई का तृतीयांश $\frac{१}{३}$ कम (अर्थात् $\frac{२ \text{ लम्बाई}}{३}$ के बराबर) मध्यमद्वार की चौड़ाई और तथा लम्बाई के आधे के तुल्य निकृष्ट द्वार की चौड़ाई का मान होता है॥ ४१॥

प्रसङ्गाद् ब्राह्मणादिवर्णानां द्वारप्रमाणम् (बृहत्सं० ५२।२५)—

विप्रादीनां व्यासात्पञ्चांशोऽष्टादशाङ्गुलसमेतः।
साष्टांशो विष्कम्भे द्वारस्य द्विगुण उच्छ्रायः॥ ४२॥

ब्राह्मणादि वर्णों के लिये जो चौड़ाई कही है। परिशिष्ट प्र० का चक्र देखिये (उसके पञ्चमांश ($\frac{१}{५}$ वें हिस्से) में १८ अङ्गुल और जोड़ के फिर चौड़ाई के अष्टमांश ($\frac{१}{८}$ वें भाग) से युक्त करके जो अङ्क आवे उतने

अंगुल द्वार की चौड़ाई और द्वार की चौड़ाई का दूना द्वार की ऊँचाई बनानी चाहिये ॥ ४२ ॥

नृपसेनापत्योश्च (तत्रैव ५२ । २५)

एकादशभागयुतः ससप्ततिर्नृपबलेशयोर्व्यासः ।
उच्छ्रायोङ्गुलतुल्यो द्वारस्यार्धेन विष्कम्भः ॥ ४३ ॥

राजा, सेनापति के मकान के चौड़ाई का एकादश भाग (१/११ वा हिस्सा) में ७० और जोड़ देने से जितने हाथ हों उतने अङ्गुल राजा और सेनापति के द्वार की ऊँचाई बनानी चाहिये और द्वार के ऊँचाई के आधे के बराबर द्वार की चौड़ाई बनाना उत्तम होता है ॥ ४३ ॥

दशधा द्वाराणि (वास्तुराजवल्लभे ५ । २८)—

दैर्घ्ये सार्धशताङ्गुलं च दशभिर्हीनं चतुर्धा विधिः
प्रोक्तश्चाऽथ शतं त्वशीतिसहितं युक्तं नवत्या शतम् ।
तद्वत्षोडशभिः शतं च नवभिर्युक्तं तथाऽशीतिकं
द्वारं मत्स्यमताऽनुसारि दशकं योग्यं विधेयं बुधैः ॥ ४४ ॥

(१) पहला १५० अंगुल का और दूसरे इत्यादि क्रम से १०, १० अंगुल कम अर्थात् (२) दूसरा १४० अंगुल का, (३) तीसरा १३० अंगुल का, (४) चौथा १२० अंगुल का, (५) पाचवाँ १८० अंगुल, (६) छठाँ १६० अंगुल, (७) सातवाँ ११६ अंगुल, (८) आठवाँ १०६ अंगुल, (९) नवाँ ८० अंगुल और (१०) दशवाँ ११० अंगुल का द्वार होता है। ऐसा मत्स्यपुराण का मत है ॥ ४४ ॥

द्वाराभावे गवाक्षः कार्यः—

द्वारं चतुर्विधं प्रोक्तं वास्तुसंक्रान्तिमायजम् ।
कृत्वा चान्यतमं मुख्यं गवाक्षाद्यैः पराणि च ॥ ४५ ॥

वास्तु-सम्बन्धी, मास-सम्बन्धी, नक्षत्र-सम्बन्धी और आय-सम्बन्धी ये ४ प्रकार के द्वार होते हैं। इनमें किसी को मुख्य मान के उसी ओर सदर दरवाजा बनाना चाहिये और शेष दिशा में गवाक्ष (झरोखा = खिड़की) बनाना चाहिये ॥ ४५ ॥

गवाक्षलक्षणम् (वास्तुराजव० ८।६—११)

वातायनं लुम्बिकया विहीनं बुधैरुदीर्णस्त्रिपताक एव ।
द्विलुम्बिकश्चोभयसंज्ञकश्च यः स्वस्तिकोऽसौ युगलुम्बियुक्तः ॥४६॥
स्याद् बाणैः प्रियवक्त्र एव सुमुखः षड्भिर्युतश्चेति च
छाद्यैकेन युतः सुवक्त्र उदितो द्वाभ्यां प्रियङ्गो भवेत् ।

एकेनोपरिपद्मनाभ उदितस्तद्दीपचित्रो युगै-
र्वैचित्र्यं शरपङ्क्तिभिस्तु विविधाकारैर्युतः पञ्च च ॥ ४७ ॥
सिंहो दैर्घ्यविवृद्धितो हि पृथुले हंसो गवाक्षो भवे-
त्तुल्योऽसौ मतिदोऽपि भद्रसहितो ज्ञेयस्तु बुद्ध्यर्णवः ।
द्वारेणैव युगास्त्रकेण गरुडः पक्षद्वये जालकं
प्रोक्ताः पञ्चदशैव रूपमटलावेद्यादिकक्षासनैः ॥ ४८ ॥

जिस वातायन (खिड़की या झरोखा) में लुम्बिका (बाहर का मेहराब) न हो उसको पण्डित लोग त्रिपताक कहते हैं। जिसमें दो लुम्बिकायें हों उसको उभय, जिसमें ४ लुम्बिकायें हों उसको स्वस्तिक, जिसमें ५ लुम्बिकायें लगी हों उसको प्रियवक्त्र और जिसमें ६ लुम्बिकायें हों उसको सुमुख कहते हैं।

जिसमें एक छाद्य (छाजन) हो उसको शुवक्त्र, जिसमें दो छाजन हो उसको प्रियङ्ग, जिसमें ३ छाजन हो उसे पद्मनाभ, जिसमें ४ छाजन हो उसको दीपचित्र और ५ छाद्य वाले को वैचित्र्य कहते हैं।

जिसमें लम्बाई अधिक हो उसको सिंह, जिसमें चौड़ाई अधिक हो उसको हंस और जिसमें लम्बाई-चौड़ाई दोनों बराबर हों उसे मतिद नाम का गवाक्ष कहते हैं। जो गवाक्ष भद्रयुक्त हो उसको शुद्ध्यर्णव, जिसके चारो तरफ द्वार हों उसको गरुड और जिस गवाक्ष के दो ओर द्वार हों उसको जालक कहते हैं। इस प्रकार से रूप, मटला, वेदी और कक्षासन इनके सम्बन्ध से १५ प्रकार के गवाक्ष (झरोखे) होते हैं ॥ ४६—४८ ॥

द्वारसंख्यापि (तत्रैव ८।३१)—

एकं द्वारं प्राङ्मुखं शोभनं स्याच्चातुर्वक्त्रं धातृभूतेशजैने ।
युग्मं प्राच्यां पश्चिमेऽथ त्रिकेषु मूलद्वारं दक्षिणे वर्जनीयम् ॥४९॥

यदि मकान में एक ही दरवाजा बनाना हो तो पूर्व दिशा में बनाना उत्तम होता है। ब्रह्मा, भूतेश (महादेव) और जैन इनके मन्दिर में चारो ओर द्वार बनाना श्रेष्ठ है। यदि मकान में दो ओर दरवाजा बनाना हो तो पूर्व और पश्चिम दिशा में कदापि दरवाजा न बनावे ॥ ४९ ॥

विशेषः—

बहुद्वारेष्वलिन्देषु न द्वारनियमः स्मृतः ।
तथोपसदने जीर्णे द्वारे सन्धारणेऽपि च ॥ ५० ॥

जिसमें बहुत से द्वार और अलिन्द हों उस मकान में द्वार का कोई नियम नहीं अर्थात् जिस ओर चाहे दरवाजा बनवावे। मुख्य गृह के अति-

रिक्त अन्य गृहों में भी द्वार का कोई नियम नहीं है। वहाँ यथारुचि द्वार बनवाना चाहिये ॥ ५० ॥

द्वारवेधः (बृहत्संहितायाम् ५२ । ७४)—

मार्गतरुकोणकूपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम् ।
उच्छ्रायाद् द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥ ५१ ॥

मार्ग (रास्ता), पेड़, कोण, कूप, स्तम्भ (खम्भा), भ्रम (कोल्हू, मशीन इत्यादि यन्त्र) दरवाजे के सामने हों तो शुभदायक नहीं होते। किन्तु द्विगुणित ऊँचाई से अधिक दूरी पर ये सब हों तो दोष नहीं होता है॥

पृथक् २ फलानि तत्रैव—

रथ्याविद्धं द्वारं नाशाय कुमारदोषदं तरुणा ।
पङ्कद्वारे शोको व्ययोम्बुनिःस्राविणा प्रोक्तः ॥ ५२ ॥
कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे ।
स्तम्भेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्राह्मणाभिमुखे ॥ ५३ ॥

रथ्या (रास्ता) के सामने द्वार हो तो गृह के स्वामी का नाश होता है। वृक्ष के सामने का द्वार बालकों को दोषकारक होता है। जिस दरवाजे के सामने सर्वदा पङ्क (कीचड़) रहा करे वह शोककारक होता है। जिसके सामने सर्वदा पानी बहता रहता है वह धन का अपव्यय (फजूल खर्ची) करने वाला होता है। एवं यदि द्वार के सामने कूप हो तो अपस्मार (मृगी) रोग, देवता का मन्दिर हो तो विनाश, स्तम्भ (खम्भ) हो तो स्त्रियों में दोष और ब्राह्मण का मकान हो तो कुल का विनाश होता है ॥ ५२-५३ ॥

विशेषः (वास्तुराजव० ५ । २७)—

द्वारं विद्धमशोभनं च तरुणा कोणभ्रमस्तम्भकैः
कूपेनापि च मार्गदेवभवनैर्विद्धं तथा कीलकैः ।
उच्छ्रायाद् द्विगुणां विहाय पृथिवीं वेधो न भित्त्यन्तरे
प्राकारान्तरराजमार्गपरता वेधो न कोणद्वये ॥ ५४ ॥

वृक्ष, कोण, कोल्हू इत्यादि भ्रमण यंत्र, खम्भा, कूप, देवमन्दिर और कील इन वस्तुओं से द्वार वेधित हो अर्थात् दरवाजे के सामने ये वस्तु हों तो शुभ नहीं होता है। परन्तु मकान की ऊँचाई की दूनी जमीन छोड़ कर (दूनी दूरी से अधिक दूरी पर) हों तो वेध का दोष नहीं होता है। एवं गृह तथा वेधवस्तु के बीच राजमार्ग (सड़क) हो तो वेध नहीं होता॥

द्वारसम्मुख एव वेधः—

पृष्ठतः पार्श्वयोर्वापि न वेधं चिन्तयेद् बुधः ।
प्रासादे वा गृहे वापि वेधमग्रे विनिर्दिशेत् ॥ ५५ ॥

प्रासाद (राजभवन) अथवा साधारण मकान के पीछे या बगल में ये सब वस्तु हों तो वेध नहीं होता। केवल सम्मुख रहने पर ही वेध होता है ॥

अथान्ये विशेषाः—

द्वारमायामतः कार्यं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।
विस्तारकोणं द्वारं यद् दुःखशोकभयप्रदम् ॥ ५६ ॥

विस्तार के बीच में (जहाँ पर द्वार बनाना विहित है) द्वार बनाने से पुत्र, पौत्र और धन का लाभ होता है। विस्तार के कोण में द्वार बनाने से दुःख, शोक और भयदायक होता है ॥ ५६ ॥

विशेषः (विश्वकर्मप्रकाशे)—

भित्तिमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यधान्यविनाशनम्।
आवहेत्कलहं शोकं नारीर्वा संप्रदूषयेत् ॥ ५७ ॥

भित्ति के बीच में द्वार बनाने से धन, धान्य इत्यादि का नाश होता है। अथवा सर्वदा कलह होता रहता है या स्त्रियों में दोष पैदा हो जाता है ॥

विशेषः (ज्यो० नि०)—

द्वारस्योपरि यद् द्वारं द्वारं द्वारस्य सम्मुखम्।
न कार्यं व्ययदं यच्च संकटं तद्दरिद्रकृत् ॥ ५८ ॥

द्वार के ऊपर का द्वार और द्वार के सामने का द्वार व्यय कराने वाला और दरिद्रता का देने वाला होता है ॥ ५८ ॥

मध्यभागे द्वारकरणे विशेषः—

देवागारे विहारे च प्रजायां मण्डपेषु च।
प्रतोल्यां च मखे चैव मध्ये द्वारं निवेशयेत् ॥ ५९ ॥

देवताओं का मन्दिर, भवन (साधारण मकान), प्रजागृह (सर्व साधारण भवन), मण्डप, प्रतोली (गली), यज्ञमण्डप इनके बीचोबीच में द्वार बनाना चाहिये ॥ ५९ ॥

कपाटस्य स्वयमुद्घाटनादिके दोषाः (बृ० सं० ५२।७६-७८)—

उन्मादः स्वयमुद्घाटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः।
मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनमेव नीचे च ॥ ६० ॥
द्वारं द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय संकटं यच्च।
आव्यातं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनम् भवति ॥ ६१ ॥
पीडाकरमतिपीडितमन्तर्विनतं भवेदभावाय।
बाह्यविनते प्रणाशो दिग्भ्रान्ते दस्युभीः पीडा ॥ ६२ ॥

दरवाजे की किवाड़ी यदि अपने आप खुल जाय तो उन्माद (पागलपन), स्वयं बन्द हो जाय तो कुल का विनाश, प्रमाण से अधिक हो तो राजभय, प्रमाण से कम हो तो चोर भय और व्यसन (दुःख) होता है। द्वार के ऊपर द्वार बनाया जाय तो अमङ्गल होता है। कपाट मोटाई में पतला या अधिक मोटा हो तो क्षुधा से भय और टेढ़ा हो तो विनाश करता है। यदि जोड़ लगा हो तो मकान मालिक को दुःख, गृह के भीतर लटका रहे तो स्वामी का मरण और बाहर को झुका हो तो विदेश वास कराता है। यदि दिशा का ठीक २ परिज्ञान (पता) न हो तो चोरों से भय और पीडा होती है ॥ ६०–६२ ॥

वास्तुराजवल्लभे च (५।२६)—

स्वयमपि च कपाटोद्घाटनं वा पिधानं
भयदमधिकहीनं शाखयोर्वा त्रिचाले।
पुरुषयुवतिनाशं स्तम्भशाखाविहीनं
भयदमखिलकाष्ठाग्रं यदाधःस्थितं स्यात् ॥ ६३ ॥

कपाट (किवाड़) अपने आप खुल जाय या बन्द हो जाय तो भयदायक होता है। चौखट एक ओर छोटा दूसरी ओर बड़ा हो जाय तो भी शुभ फल का विघातक होता है। द्वार स्तम्भ (बाजू) और शाखा से हीन हो तो स्त्री-पुरुष का नाश करता है। लकड़ी का अग्रभाग नीचे पड़ जाय तो भी अच्छा फल नहीं होता ॥ ६३ ॥

द्वारस्थापनमुहूर्तः (पीयूषधारायाम्)—

अश्विनी चोत्तरा हस्तपुष्यश्रुतिमृगेषु च।
रोहिण्यां स्वातिभेऽन्त्ये च द्वारशाखां प्ररोपयेत् ॥ ६४ ॥

अश्विनी, तीनो उत्तरा, हस्त, पुष्य, श्रवण, मृगशिरा, रोहिणी, स्वाती और रेवती इन ११ नक्षत्रों में द्वारशाखा (चौखट) बैठाना चाहिये ॥६४॥

मुहूर्तमुक्तावल्याम्—

भवेत्पूषणी मैत्रपुष्ये च शाक्रे करे दस्रचित्राऽनिले चादितौ च।
गुरुश्चन्द्रशुक्रार्कसौम्ये च वारे तिथौ नन्दपूर्णाजया द्वारशाखा ॥६५॥

रेवती, अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु इन ९ नक्षत्रों में, बृहस्पति, चन्द्र, शुक्र, सूर्य, बुध इन वारों में और नन्दा (१।६।११), पूर्णा ((५।१०।१५) और जया (३।८।१३) इन तिथियों में द्वारशाखा (चौखट) का स्थापन करना (बैठाना) उत्तम होता है ॥६५॥

प्रत्येकतिथिफलानि—

पञ्चमी धनदा नित्यं मुनिनन्दवसौ शुभम् ।
प्रतिपत्सु न कर्तव्यं कृते दुःखमवाप्नुयात् ॥ ६६ ॥
द्वितीयायां द्रव्यहानिः पशुपुत्रविनाशनम् ।
तृतीया रोगदा ज्ञेया चतुर्थी भङ्गकारिणी ॥ ६७ ॥
कुलक्षयस्तथा षष्ठ्यां दशमी धननाशिनी ।
विरोधकृदमा पूर्णा न स्याच्छाखावरोपणम् ॥ ६८ ॥

इनका अर्थ सुस्पष्ट है ॥ ६६-६८ ॥

द्वारस्थापनचक्रम् (मु० चि० १२।२६)

सूर्यर्क्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कोणभै-
र्नागैरुद्वशनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवे ।
देहल्यां गुणभैर्मृति गृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः
सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम् ॥६९॥

सूर्याधिष्ठित नक्षत्र से जिस नक्षत्र में द्वारशाखा स्थापन करना हो उस नक्षत्र तक दिन के पहले चार नक्षत्र शिर में पड़े तो लक्ष्मी की प्राप्ति फिर आठ नक्षत्र कोण में स्थापन करे उसका फल उद्वास, उसके बाद आठ नक्षत्र शाखाओं में पड़े तो सुख, पुनः तीन नक्षत्र देहली में पड़े तो गृहपति की मृत्यु, उसके आगे चार नक्षत्र मध्य में स्थापन करे उसका फल सौख्य होता है ॥ ६९ ॥

मुहूर्तकल्पद्रुमे च—

सूर्यभाद्युगनागाष्टगुणवेदैः शुभाशुभम् ।
शिरःकोणद्वारशाखादेहलीमध्यगैः क्रमात् ॥ ७० ॥

इसका फल ऊपर के श्लोक के समान ही है ॥ ७० ॥

द्वारस्थापनचक्रम्—

शिर	कोण	शाखा	देहली	मध्य	स्थान
४	८	८	३	४	२७ नक्षत्र
लक्ष्मीप्रा०	उद्वास	सौख्य	मृति	सुख	फल

देहलीचक्रम (बृहद्दैवज्ञर०)—

मूले भौमं त्रिऋक्षं गृहपतिमरणं पञ्च गर्भे सुखं स्या-
न्मध्ये देयाब्धितारा धनसुतसुखदा पुच्छदेशेऽष्टहानिः ।

पश्चाद्देयाऽष्टतारा गृहपतिसुखदा भाग्यपुत्रार्थदेयं
सूर्यर्क्षाचन्द्रऋक्षं प्रतिदिनगणनाद्भौमचक्रं विलोक्यम् ॥ ७१ ॥

इसके अर्थ की स्पष्टता के लिये नीचे का चक्र देखिये ॥ ७१ ॥

मूल	गर्भ	मध्य	पुच्छ	पृष्ठ	स्थान
३	५	४	८	८	२८ नक्षत्र
गृहेशमृति	सुख	धनसुतसु०	हानि	सौख्य	फल

कपाटमुहूर्तः—

चरे स्थिरे च नक्षत्रे बुधशुक्रदिने तिथौ ।
शुभे कपाटयोगः स्याद् द्विस्वभावोदये गृहे ॥ ७२ ॥

चर (स्वाती, पुनर्वसु , श्रवण, धनिष्ठ, शतभिषा), स्थिर (रोहिणी, उत्तरा फल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपदा) इन ६ नक्षत्रों में बुध, शुक्र वारों में, शुभ (१।२।३।५।७।१०।११।१३।१५ इन) तिथियों में और द्विस्वभावराशि (३।६।७।१२) के लग्नों में कपाट लगाना शुभदायक होता है ॥७२॥

इति द्वारप्रकरणम् ॥ ८ ॥



गेहारम्भप्रकरणम् ९

तत्र तावत्समयशुद्धिः—

कर्मसिद्धिः सुखायूंषि निमित्तशकुनादिभिः ।
ज्ञात्वा प्रष्टुर्गृहारम्भे कीर्तयेत्समयं सुधीः ॥ १ ॥

निमित्त शकुन आदि के द्वारा प्रश्नकर्ता के कर्म की सिद्धि, सुख और आयु इत्यादि का विचार करके गृहारम्भ का मुहूर्त पण्डितों को बताना चाहिये ॥१॥

निमित्तशकुनादि—

कालनरस्य यदङ्गं सौम्यग्रहवीक्षितं युतं वापि ।
तच्चेत् स्पृशति प्रष्टा तदास्य निर्माणमादेश्यम् ॥ २ ॥

काल पुरुष के जिस अङ्ग[1] को शुभग्रह पूर्ण दृष्टि से देखता हो, उस अङ्ग को स्पर्श करके यदि प्रश्नकर्ता गृह का विषय पूछे तो घर का निर्माण-काल बताना चाहिये ॥ २ ॥

आरम्भं च समाप्तिं च प्रासादपुरवेश्मनाम् ।
उत्थिते केशवे कुर्यान्न प्रसुप्ते कदाचन ॥ ३ ॥

१. इसके लिये मेरी बनाई 'लघुजातक' की टीका देखिये ।

श्रीविष्णु भगवान् के जागते रहने पर (आषाढ़ सुदी ११ से कार्तिक सुदी ११ के भीतर) प्रासाद (राजमन्दिर), पुर और मकान इनका आरम्भ और प्रवेश करना चाहिये। विष्णु भगवान् के सोने पर नहीं करना चाहिये। यह सामान्य वचन है सामान्य से विशेष बलवान् होता है ॥ ३ ॥

गेहारम्भ इति कर्तव्यता (रत्नमालायाम्)—

विवाहोक्तान्महादोषानृते जामित्रशुद्धितः।
रिक्ताकुजार्कवारौ च चरलग्नं चरांशकम् ॥ ४ ॥
गुरुशुक्रार्कचन्द्रेषु स्वोच्चादिबलशालिषु।
गुर्वर्केन्दुबलं लब्ध्वा गेहारम्भः प्रशस्यते ॥ ५ ॥
द्वारशुद्धिं निरीक्ष्यादौ भशुद्धिं वृषचक्रतः।
निष्पञ्चके स्थिरे लग्ने द्व्यङ्गे चालयमारभेत् ॥ ६ ॥
त्यक्त्वा कुजार्कयोश्चांशं पृष्ठे चाग्रे स्थितं विधुम्।
बुधेज्यराशिगं चार्कं कुर्याद्गेहं शुभाप्तये ॥ ७ ॥

विवाह में कहे गये महादोष, जामित्र, रिक्ता (४।९।१४) तिथि, भौम, रवि ये वार, चर (१।४।७।१०) लग्न, चरलग्न का नवांश इन सबों को त्याज्य करके; बृहस्पति, शुक्र, सूर्य और चन्द्रमा इनके स्वोच्चादि बल से युक्त रहने पर; और अपनी राशि से गुरु, सूर्य और चन्द्रमा इनके बली होने पर गृहारम्भ करना शुभदायक होता है।

पहले द्वारशुद्धि और वृषवास्तुचक्र देख कर पञ्चम राशि (अर्थात् सिंह) को छोड़ कर स्थिर (२।८।११) संज्ञक और द्विस्वभाव (३।६।९।१२) लग्नों में गृहारम्भ करना चाहिये। बुध और बृहस्पति के राशि (३।६।९।१२) के सूर्य को छोड़कर शुभ फलों की प्राप्ति के लिये गृह बनाना आरम्भ करे ॥

त्याज्यमासादयः (वास्तुराजव० ११।१३)—

सूर्ये कार्मुकमीनगे सुरगुरौ सिंहे विधौ दुर्बले
गण्डान्तव्यतिपातवैधृतिदिने दग्धे तिथौ भे तथा।
शुक्रेऽस्तेऽथ गुरौ च पातसमये विष्ट्यां च मासेऽधिके
चन्द्रे पापविलोकिते च सहिते कार्यं न किञ्चिच्छुभम् ॥८॥

धनु और मीन के सूर्य (पौष, चैत्र) सिंह के बृहस्पति, क्षीण चन्द्रमा, तिथि, नक्षत्र और लग्न गण्डान्त, व्यतिपात, वैधृति, [1]दग्धातिथि, [2]दग्धनक्षत्र, गुरुशुक्र का अस्त, महापात (गणित के द्वारा इसका ज्ञान होता है),

१. इसके लिये मेरा बनाया 'फलितनवरत्नसंग्रह' (५।६३-६४) देखें।
२. इसके लिये 'फलितनवरत्नसंग्रह' का (१।६७-६८) श्लो० देखें।

भद्रा, अधिमास (मलमास) पापग्रह से दृष्ट या युक्त चन्द्रमा इन सबों के रहने पर कोई शुभकार्य नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥

ग्रन्थान्तरे विशेषः—

अस्तदोषोऽत्र न ग्राह्यः प्रतिदैवसिको बुधैः ॥ ९ ॥

गुरु, शुक्र, चन्द्रमा इत्यादि ग्रहों का दैनिक अस्त त्याज्य नहीं है ॥ ९ ॥

मासशुद्धिस्तत्र सौराः (पी० धा०)—

गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषस्थे शुभदं भवेत् ।
वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं ध्रुवम् ॥ १० ॥
कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्धनम् ।
कन्यायां रुक् तुले सौख्यं वृश्चिके धनवर्धनम् ॥ ११ ॥
कार्मुके च महाहानिर्मकरे स्याद्धनागमः ।
कुम्भे तु रत्नलाभः स्यान्मीने सद्म भयावहम् ॥ १२ ॥

मेष राशि के सूर्य में गृहारम्भ करना शुभ, वृष राशि के सूर्य में धन की वृद्धि, मिथुन राशि के सूर्य में स्वामी का मरण, कर्क राशि के सूर्य में शुभ फलों की प्राप्ति, सिंह राशि के सूर्य में भृत्यों (नौकरों) की वृद्धि, कन्या राशि के सूर्य में रोग, तुला राशि के सूय में सौख्य, वृश्चिक राशि के सूर्य में धन की वृद्धि, धन राशि के सूर्य में महती हानि, मकर राशि के सूर्य में धन लाभ, कुम्भ राशि के सूर्य में रत्नों का लाभ, और मीन राशि के सूर्य में मकान बनाने का आरम्भ करने से भयदायक होता है अर्थात् द्विस्वभाव राशियों ३ । ६ । ९ । १२ के सूर्य में निषिद्ध और चर तथा स्थिर राशियों १।२।४।५।७।८।१०।११ के सूर्य में गृहारम्भ करना उत्तम होता है ॥

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	म.	कुम्भ	मीन	राशि
शुभ	धन वृद्धि	मरण	शुभ	भृत्य वृद्धि	रोग	सुख	धन वृद्धि	महती हानि	धनागम	रत्न लाभ	भय	फल

चान्द्रमासाः (ज्यो० नि०)—

सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः ।
मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यफलप्रदाः ॥१३॥

मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण, कार्तिक इन मासों में गृहारम्भ करने से पुत्र, आरोग्य इत्यादि की प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥

वशिष्ठः—

मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्विषे ।
ऊर्जे च गृहनिर्माणं पुत्रपौत्र-धनप्रदम् ॥ १४ ॥

१ इसके लिये 'फलितनवरत्नसंग्रह' का (१ । ९७-९८) श्लो० देखें ।

तपस्य (फाल्गुन), माघ, वैशाख, श्रावण, आश्विन और कार्तिक ये महीने गृहनिर्माण में पुत्र-पौत्र-धन इत्यादि की वृद्धि करनेवाले होते हैं ॥१४॥

रत्नमालायाम्—

आषाढचैत्राश्वयुजोर्जमाघज्येष्ठेषु सप्रोष्ठपदेषु नूनम् ।
निकेतनानां घटनं नृपाणां योगेश्वराचार्यमते न शस्तम् ॥
(निषिद्धम्) ॥ १५ ॥

आषाढ, चैत्र, आश्विन, कातिक, माघ, ज्येष्ठ और भाद्रपद इन महीनों में योगेश्वराचार्य के मतसें घर का आरम्भ करना निषिद्ध है ॥ १५ ॥

पृथक् २ फलानि (वास्तुराजवल्लभे १।७)—

चैत्रे शोककरं गृहादिरचितं स्यान्माधवेऽर्थप्रदं
ज्येष्ठे मृत्युकरं शुचौ पशुहरं तद्वृद्धिदं श्रावणे ।
शून्ये भाद्रपदे त्विषे कलिकरं भृत्यक्षयं कार्तिके
धान्यं मार्गसहस्ययोर्दहनभीर्माघे श्रियं फाल्गुने ॥ १६ ॥

इसका अर्थ चक्रसें देखिये ॥ १६ ॥

चैत्र	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्र	आश्विन	कार्तिक	मार्ग	पौष	माघ	फाल्गुन	मास
शो०	धन प्रा०	मरण	पशु हा०	पशुवृ	शून्य	कलह	भृत्य नाश	धान्य	धा०	अग्नि भय	श्री	फल

एवं सौरचान्द्रमासभेदेन मिथो विरोधादेकवाक्यतोक्ता रामेण—

कैश्चिन्मेषरवौ मधौ वृषभगे ज्येष्ठे शुचौ कर्कटे
भाद्रे सिंहगते घटेऽश्वयुजि चोर्जेऽलौ मृगे पौषके ।
माघे नक्रघटे शुभं निगदितं गेहं तथोर्जे न सत्
कन्यायां च तथा धनुष्यपि न सत्कृष्णादि मासाद्भवेत् ॥१७॥

बहुतों के मत में मेषराशि में सूर्य के रहने पर चैत्र में, वृष के सूर्य हों तो ज्येष्ठ में, कर्क राशि के सूयं हों तो आषाढ़ में, सिह राशि में सूर्य के रहने पर भाद्रपद में, तुला राशि के सूर्य हों तो आश्विन मास में, वृश्चिक राशि के रवि हों तो कार्तिक में, मकर राशि पर सूर्य स्थित हों तो पौष में, और मकर या कुम्भ राशि पर सूर्य व्यवस्थित हों तो माघ मास में गृहारम्भ करना उत्तम होता है। कन्या राशि के सूर्य हों तो कार्तिक में, धन राशि के सूर्य हों तो माघ में गृहारम्भ करना अच्छा नहीं होता, क्योंकि इन में कृष्णादिमास होता है। ऐसा ही वास्तुप्रदीप (१।१७) में भी लिखा है—

चैत्रेऽजगेऽर्के वृषभे च ज्येष्ठे कर्के शुचौ सिहगते च भाद्रे ।
घटे तथा चाश्विन ऊर्जकेऽलौ नक्रे च पौषे गृहमामनन्ति ॥

माघे तथा नक्रघटे च शस्तं केचित्तथोर्जे नहि तत्फलाप्तौ ।
शुक्लादिकृष्णादिभिराह्वयेन चान्द्रेण सौरे शितिनिर्गमत्वात् ॥ १७ ॥

जीर्णगृहनिर्माणे मासशुद्धिः—

जीर्णोद्धारे जलाग्न्यादिभयतः पतिते गृहे ।
श्रावणोर्जे तथा माघे कारयेत्सुखदं गृहम् ॥ १८ ॥

जल, अग्नि और वायु इत्यादि के द्वारा गिरे हुए मकान का जीर्णोद्धार कराने के लिये श्रावण, कार्तिक और माघ में आरम्भ करने से शुभ होता है॥

इस श्लोक से स्पष्ट जान पड़ता है कि आचार्य ने मुहूर्त-सङ्कोच से नये मकान को पूर्वोक्त पद्यों द्वारा श्रावण, कार्तिक और माघ में आरम्भ करना लिखा है। किन्तु मार्गशीर्ष, वैशाख, फाल्गुन और ज्येष्ठ इन्हीं ४ महीनों में मकान का आरम्भ करना सर्वसम्मत है ॥ १८ ॥

तृणकाष्ठादिगृहे न मासनियमः—

निषिद्धेष्वपि ऋक्षेषु स्वानुकूले शुभे दिने ।
तृणदारुगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ॥ १९ ॥
पाषाणेष्ट्यादिगेहानि निन्द्यमासे न कारयेत् ।
तृणदारुगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ॥ २० ॥

निषिद्धनक्षत्रों में भी शुभदिन हो और अपने अनुकूल चन्द्रमा हों तो तृण और काठ के द्वारा बने (फूस के) मकान में मास-शुद्धि का विचार नहीं करना चाहिये। पत्थल, ईंट इत्यादि के मकान को निन्द्यमहीनों में आरम्भ करना अशुभ है। किन्तु तृण और काष्ठ के मकान में मासदोष का विचार नहीं होता है॥ १९-२० ॥

विशेषः—

शस्तं पशुगृहं ज्येष्ठेऽप्याश्विने धान्यपीडकम् ।
पानीयशालिका माघे चैत्रे धारागृहं तथा ॥ २१ ॥

पशुओं का मकान ज्येष्ठ में, अन्न और चिड़ियों का घर आश्विन में, जलशाला माघ में और धारागृह (जल प्रवाह, फौहारा, गङ्गामहल इत्यादि) चैत्र में बनाना उत्तम होता है ॥ २१ ॥

पक्षशुद्धिः—

शुक्लपक्षे भवेत्सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम् ।
तस्माद्विचार्य कर्तव्यं यदीच्छेच्छ्रियमात्मनः ॥ २२ ॥

शुक्लपक्ष में गृहारम्भ करने से सौख्य और कृष्णपक्ष में गृहारम्भ करने से चोरभय होता है। इसलिये अपनी भलाई चाहने वाले व्यक्ति को इनका बिचार करके मकान बनवाना चाहिये ॥ २२ ॥

अथ पञ्चाङ्गशुद्धिस्तत्रादौ तिथिशुद्धिः—

द्वितीया पञ्चमी मुख्या तृतीया षष्ठिका तथा ।
सप्तमी दशमी चैव द्वादश्येकादशी तथा ॥ २३ ॥
त्रयोदशी पञ्चदशी तिथयः स्युः शुभावहाः ।
दारिद्र्यं प्रतिपत्कुर्याच्चतुर्थी धनहारिणी ॥ २४ ॥
अष्टम्युच्चाटनं चैव नवमी शस्यघातिनी ।
दर्शे राजभयं ज्ञेयं भूते दारविनाशनम् ॥ २५ ॥

द्वितीया, पञ्चमी, तृतीया, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, पूर्णिमा, ये तिथियाँ गृहारम्भ में शुभ फल देने वाली होती हैं । प्रतिपदा दारिद्र्य को देने वाली, चतुर्थी धनकी हानि करने वाली, अष्टमी उच्चाटन करनेवाली, नवमी धान्य का नाश करने वाली, अमावास्या राजभय को देने वाली और चतुर्दशी स्त्रियों का विनाश करनेवालीहोती है॥२३-२५॥

वाराः (रत्नमालायाम्)—

सौरेन्दुजीवसौम्यानां भार्गवस्य च वासरे ।
सूतपातादिकं कार्यमिष्टं समभिवाञ्छता ॥ २६ ॥

सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति, बुध और शुक्र इनके वारों में सूतपात इत्यादि करना चाहिये । इसलिये ग्रन्थान्तर में भी लिखा है—

आदित्यभौमवर्जन्तु सर्वे वाराः शुभावहाः । इति ॥ २६ ॥

कृत्यं वेश्मभवं दिवैव विहितं रात्रौ प्रवेशः क्वचित् ।

मकान सम्बन्धी सम्पूर्ण कृत्यों को दिन में ही करना चाहिये । किसी किसी का मत है कि रात्रि में प्रवेश हो सकता है ।

नक्षत्राणि (ज्योतिर्नि०)—

उत्तरेपि च रोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करद्वये ।
धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते ॥ २७ ॥

तीनों उत्तरा (उत्तरा फल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरा भाद्रपदा), रोहिणी, पुष्य, अनुराधा, हस्त, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिष और रेवती इन ११ नक्षत्रों में गृहारम्भ करना प्रशस्त होता है ॥ २७ ॥

पीयूषधारायाम्—

चित्राशतभिषक्स्वाती हस्तः पुष्यः पुनर्वसुः ।
रोहिणी रेवती मूलं श्रवणोत्तरफल्गुनी ॥ २८ ॥

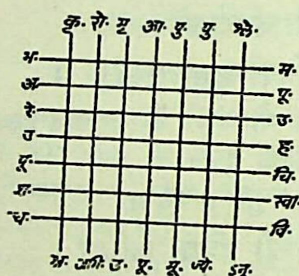
धनिष्ठा चोत्तराषाढा तथा भाद्रपदोत्तरा ।
अश्विनी मृगशीर्षे द्वे अनुराधा तथैव च ॥ २९ ॥
वास्तुपूजनमेतेषु नक्षत्रेषु करोति यः ।
स प्राप्नोति नरो लक्ष्मीमिति प्राह पराशरः ॥ ३० ॥

इन श्लोकों का अर्थ सरल है ॥ २८–३० ॥

विशेषः (बृहद्दैवज्ञर० ८६।३१४)—

चक्रे सप्तशलाकाख्ये कृत्तिकादीनि विन्यसेत् ।
ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च पुरः पृष्ठे च नो शुभम् ॥ ३१ ॥

सप्तशलाका चक्र में ईशान कोण से कृत्तिकादि नक्षत्रों के क्रम से न्यास करने से यदि वास्तु और चन्द्रमा के नक्षत्र आपस में आगे पीछे पड़े तो शुभ नहीं होता, पार्श्व में पड़े तो शुभ होता है ॥ ३१ ॥



यहाँ कृत्तिका से लेकर आश्लेषा तक पूर्वदिशा के, मघा से विशाखा तक दक्षिण दिशा के, अनुराधा से श्रवण तक पश्चिम दिशा के और धनिष्ठा से भरणी तक उत्तर दिशा के नक्षत्र हैं। यदि पूर्व दिशा के नक्षत्रों में से कोई नक्षत्र वास्तु का हो तो पश्चिम दिशा के नक्षत्रों में एवं यदि पश्चिम दिशा के किसी नक्षत्र में वास्तु (गृह) का नक्षत्र हो तो पूर्व दिशा के नक्षत्रों में गृहारम्भ करना अशुभ होता है। इससे विपरीत (अर्थात् पूर्व या पश्चिम दिशा का नक्षत्र वास्तु का हो तो उत्तर या दक्षिण के नक्षत्रों में और उत्तर या दक्षिण दिशा का नक्षत्र वास्तु का हो तो पूर्व या पश्चिम दिशा के नक्षत्रों में) गृहारम्भ करना उत्तम होता है। इसी से यह भी सिद्ध होता है कि जिस दिशा के नक्षत्रों में वास्तु का नक्षत्र हो उसी दिशा में मकान का द्वार भी बनाना शुभ नहीं होता। उसकी पार्श्व की दिशाओं में प्रधान द्वार बनाना उत्तम होता है। (गृहसारणी के ऊपर की पङ्क्ति देखिये)।

योगाः—

वज्रव्याघातशूलेषु व्यतीपातातिगण्डयोः ।
विष्कम्भगण्डपरिघे चाष्टयोगे न कारयेत् ॥ ३२ ॥

वज्र, व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड, विष्कुम्भ, गण्ड और परिघ

इन आठ योगों में गृहारम्भ नहीं करना चाहिये । शेष योगों में गृहारम्भ करना श्रेष्ठ होता है ।। ३२ ।।

ग्रन्थान्तरे मुहूर्ता अप्युक्ताः—

स्वैत्रे मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वे भगरोहिणी ।
तथा वैरोचे सावित्रे मुहूर्ते गृहमारभेत् ।। ३३ ।।

स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, गन्धर्व (धनिष्ठा), पूर्वाफल्गुनी, रोहिणी, मूल, हस्त इन ७ मुहूर्तों में गृहारम्भ करना उत्तम होता है ।। ३३ ।।

वृषवास्तुचक्रम् (मु० चिं० प्रमिताक्षरायाम १२।१३-१४)—

त्रिवेदवेदाग्नियुगाग्निवेदत्रिकेषु भानोः शशिभं गृहेषु ।
दाहो विनाशः स्थिरता धनं श्रीः शूलं च दारिद्र्यमृती क्रमेण ।।३४।।

सूर्य की नक्षत्र से चन्द्रमा की नक्षत्र तक गिने यदि गिनने से प्रथम तीन नक्षत्रों में गृहारम्भ का नक्षत्र पड़े तो दाह, उसके बाद ४ नक्षत्रों में गृहारम्भ का नक्षत्र हो तो विनाश एवं क्रम से उसके बाद ४ नक्षत्रों में स्थिरता, ३ नक्षत्रों में धनलाभ, ४ नक्षत्रों में लक्ष्मीप्राप्ति, ३ नक्षत्रों में शून्यता, ४ नक्षत्रों में दरिद्रता और ३ नक्षत्रों में मृत्यु होती है ।। ३४ ।।

वास्तुचक्रम्—

मस्तक	अग्रपाद	पृष्ठपाद	पृष्ठ	वामकुक्षि	दक्षकुक्षि	पुच्छ	मुख	स्थान
३	४	४	३	४	३	४	३	२८नक्षत्र
अग्निदाह	विनाश	स्थैर्य	धन	लक्ष्मी	शून्य	दारिद्र्य	मृत्यु	फल

अस्य निष्कृष्टार्थः—

रविभात्सप्त नेष्टानि शुभान्येकादशाष्टभात् ।
दश शेषाण्यनिष्टानि साभिजिद्वृषवास्तुनि ।। ३५ ।।

वृषवास्तुचक्र में सूर्याक्रान्त नक्षत्र से अभिजित्सहित चन्द्र नक्षत्र तक गिन के पहले ७ नक्षत्र तक अशुभ फिर ८ वें नक्षत्र से १८ तक शुभ उसके बाद १९ वें नक्षत्र से २८ तक अशुभ होता है ।। ३५ ।।

चक्रम्—

७	११	१०	२८ नक्षत्र
अशुभ	शुभ	अशुभ	फल

वास्तुपुरुषस्थितिज्ञानम्—

सवेदास्तिथयो द्विघ्ना नामाक्षरसमन्विता ।
त्रिभिश्चैव हरेद्भागं शेषं पुरुष उच्यते ।। ३६ ।।

एके च वसते स्वर्गे द्वाभ्यां पाताल एव च ।
शून्ये तु मृत्युलोके स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥ ३७ ॥
स्वर्गलोके भवेल्लाभः पातालेषु सदा श्रियः ।
मृत्युलोके भवेन्मृत्युर्विचिन्त्य गृहमारभेत् ॥ ३८ ॥

गृहारम्भ की तिथि संख्या में ४ जोड़ कर दूना करके उसमें गृहपति के नामाक्षर संख्या को जोड़ के ३ का भाग देना यदि १ शेष बचे तो स्वर्ग में, २ शेष बचे तो पाताल में एवं शून्य शेष बचे तो मृत्युलोक में वास्तु पुरुष का निवासी होता है ऐसा पराशर जी ने कहा है। स्वर्गलोक में वास्तु पुरुष का निवास हो तो लाभ, पाताल में वास्तु पुरुष की स्थिति हो तो निरन्तर लक्ष्मी की प्राप्ति और मृत्युलोक में वास्तु पुरुष का वास हो तो मृत्यु होती है। इसका विचार करके गृहारम्भ करना चाहिये ॥ ३६–३८ ॥

कूर्मचक्रम् (ज्योतिःप्रकाशे)—

तिथिस्तु पञ्चगुणिता कृत्तिकाद्यर्क्षसंयुता ।
तथा द्वादशमिश्रास्तु नवभिश्च विभाजिता ॥ ३९ ॥
जले वेदा मुनिश्चन्द्रः स्थले पञ्चद्वये वसु ।
त्रिषष्ठनवके व्योम्नि त्रिविधं कूर्मलक्षणम् ॥ ४० ॥
जले लाभस्तथा प्रोक्तः स्थले हानिस्तथैव च ।
आकाशे मरणं प्रोक्तमिदं कूर्मस्य चक्रकम् ॥ ४१ ॥

आरम्भ की तिथि संख्या को ५ से गुणा कर के कृत्तिकादिक नक्षत्र संख्या युक्त करके १२ और जोड़ देना उसमें ९ का भाग देने पर यदि ४। ७। १ शेष बचे तो जल में, ५। २। ८ शेष बचे तो भूमि पर और ६। ३। ९ शेष बचे तो आकाश में कूर्म का वास होता है। जल में कूर्म का वास हो तो लाभ, स्थल में कूर्म का वास हो तो हानि और आकाश में कूर्म का वास हो तो मृत्यु होती है ॥ ३९–४१ ॥

भूमिसुप्तज्ञानम्—

प्रद्योतनात्पञ्चनगाङ्कसूर्यनवेन्दुषड्विंशमितेषु भेषु ।
शेते मही नैव गृहं विधेयं तडागवापीखननं न शस्तम् ॥४२॥

सूर्य के नक्षत्र से ५। ७। ९। १२। १९। २६ इन नक्षत्रों में भूमि-सुप्त होता है। इस भूमि सुप्त में मकान बनाना, तड़ाग, वापी, कूप इत्यादि खनना शुभ नहीं होता ॥ ४२ ॥

ग्रन्थान्तरे परिहारः—

वेदाष्टपञ्चाग्निरसाद्रिघस्यः क्रमान्मही उक्तदिनेषु शेते ।

कूपे तडागे त्वथवाऽऽद्यगेहे बीजोप्तिलाङ्गल्यमुखेऽशुभः स्यात् ॥४३॥

आवश्यकता में सूर्याक्रान्त नक्षत्र से पूर्वोदित (५।७।९।१२।१९।२६) नक्षत्रों की क्रम से ४।८।५।३।६।७ घटी में पृथिवी सुप्त होती है। इनको छोड़ कर शेष घटियों में कूप, तडाग, गेहारम्भ, बीजपवन, हल चलाना इत्यादि कार्य करना चाहिये ॥ ४३ ॥

पञ्चाङ्गशुद्धिसहिता लग्नशुद्धिः (मु० चि० १२।१५)—

भौमार्करिक्तामाद्यूने चरोनेऽङ्गे विपञ्चके ।

व्यष्टान्त्यस्थैः शुभैर्गेहारम्भस्त्र्यायारिगैः खलैः ॥ ४४ ॥

भौमवार, रविवार, रिक्ता (४।९।१४) और अमावस्या तिथि इनको त्याज्य (छोड़) कर अन्य वार तिथियों में, चर (१।४।७।१०) और ५ वें सिंह लग्न को छोड़कर अन्य अर्थात् स्थिर और द्विस्वभाव (२।३।६।८।९।११।१२) लग्नों में, लग्न से १२ वें और आठवें स्थानों को छोड़ अन्य (१।२।३।४।५।६।७।९।१०।११) स्थानों में शुभ ग्रहों (गुरु, शुक्र, पूर्णचन्द्र, और पापसंगरहित बुध) के एवं तीसरे, छठवें और ग्यारहवें स्थानों में पाप ग्रहों के रहने पर गेहारम्भ करना उत्तम होता है ॥ ४४ ॥

कुछ लोग 'विपञ्चके' का अर्थ 'बाणपञ्चकरहित' बतलाते हैं। किन्तु गेहारम्भ में कोई बाणपञ्चक निषेध का आर्ष प्रमाण नहीं मिलता। अतः 'विपञ्चके' का 'बाणपञ्चक रहित' यह अर्थ युक्तिसङ्गत नहीं जँचता। और—

नृपाख्यं राजसेवायां गृहणगोपेऽग्निपञ्चकम् ।
याने चौरं व्रते रोगं त्यजेन्मृत्युं करग्रहे ॥

एवं—व्रते विवर्जयेद्रोगं गृहगोपेऽग्निपञ्चकम् ।
यात्रायां राजचोराख्यौ विवाहे मृतपञ्चकम् ॥

मुहूर्तचिन्तामणि (६।७२) में—

······अथ व्रतगेहगोपनृपसेवायानपाणिग्रहे
वर्ज्याश्च क्रमतो बुधै रुगनलक्ष्मापालचौरा मृतिः ।

इत्यादि जो अनेक वचन शास्त्रों में उपलब्ध होते हैं उनमें गृहाच्छादन के लिये ही अग्निबाण का निषेध लिखा है गेहारम्भ के लिये नहीं।

एवं गेहारम्भ में धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराषाढा और रेवती इन नक्षत्रों का ग्रहण होने के कारण पञ्चकशब्द से धनिष्ठादि पञ्चक का भी निषेध नहीं हो सकता। इस लिये यहाँ 'विपञ्चके' को 'चरोनेऽङ्गे' का विशेषण मानकर 'पञ्चम लग्न रहित चरोन (स्थिर एवं द्विस्वभाव) लग्नों में अर्थात् सिंह और चर (मेष, कर्क, तुला और मकर) लग्नों को छोड़ कर शेष (२।३।६।८।९।११।१२) लग्नों में, ऐसा अर्थ करना युक्तियुक्त होता है। और शास्त्रों में इस की पुष्टि के प्रमाण भी मिलते हैं। जैसा कि वास्तुप्रदीप (१२१ श्लो०) में लिखा है—

नष्टेन्दुरिक्ता कुजसूर्यवर्जे चरोनभे सिंहविहीनलग्ने।
पापैस्त्रिषष्ठायगतैः शुभैश्च व्यन्त्याष्टगैर्गेहविधिः शुभः स्यात्॥

और भी—

द्वारशुद्धिं निरीक्ष्यादौ भशुद्धिं वृषचक्रतः।
निष्पञ्चके स्थिरे लग्ने द्व्यङ्गे चालयमादिशेत्॥ इति।

गोविन्द दैवज्ञने पीयूषधारा टीका में 'स्तम्भोच्छ्रायकोयं निषेधः' ऐसा लिख कर जो 'विपञ्चके' पद की स्तम्भोच्छ्राय-विषयक व्याप्ति बतलाई है वह भी भ्रान्ति-मूलक ही प्रतीत होती है। अतः ज्यौतिषशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् पक्षपात-विहीन हो कर सदसद्विवेकिनी बुद्धि से इस मेरे कथन पर विचार करें।

विशिष्टयोगः—

शनिः स्वाती सिंहलग्नं शुक्लपक्षश्च सप्तमी।
शुभयोगः श्रावणश्च सकाराः सप्त कीर्तिताः॥ ४५॥
सप्तानां योगतो वास्तुः पुत्रपौत्रप्रदः सदा।
गजाश्वधनधान्यादि पुरे तिष्ठन्ति सर्वतः॥ ४६॥

शनिवार, स्वाती नक्षत्र, सिंह लग्न, शुक्ल पक्ष, सप्तमी तिथि, शुभ योग और श्रावण मास ये सात सकार होते हैं। इन सातों के योग से वास्तु (गृहारम्भ) गज, अश्व, धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, आदि का देने वाला होता है॥ ४५–४६॥

यहाँ सिंह लग्न का शुभत्व सातों के योगप्रयुक्त होता है। अन्यथा केवल सिंह लग्न में पूर्वकथित वचनों से गेहारम्भ अनिष्टदायक ही होता है।

लग्नशुद्धिः (रत्नमालायाम् १७।१०–२६)

द्व्यङ्गे स्थिरे वा भवने विलग्ने सौम्यग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते च।
कर्मस्थितैर्वीर्ययुतैश्च सौम्यैर्निर्माणमाहुर्भवनस्य सन्तः॥ ४७॥

द्विस्वभाव (३।६।९।१२) और स्थिर (२।८।११) राशि का लग्न हो उसमें शुभ ग्रह (गुरु, शुक्र, पूर्णचन्द्र और पाप ग्रह योग रहित बुध) बैठे हों या लग्न को शुभ ग्रह देखते हों एवं शुभ ग्रह बलवान् होकर दशम में बैठे हों तो गेहारम्भ करना उत्तम होता है॥ ४७॥

पापैस्त्रिषष्ठायगतैस्त्रिकोणकेन्द्रस्थितैः साधुभिरालयस्य।
वदन्ति निर्माणमिहाष्टमस्थः क्रूरस्तु कर्तुर्मरणं करोति॥ ४८॥

(३।६।११) इन स्थानों में पाप ग्रह और त्रिकोण (९।५) तथा केन्द्र (१।४।७।१०) में शुभ ग्रह बैठे हों तो गेहारम्भ करना शुभ होता है। यदि ८ वें स्थान में क्रूर ग्रह पड़े हों तो गृहेश की मृत्यु होती है॥ ४८॥

रवौ गृहस्थो गृहिणी शशाङ्के धनं सिते देवगुरौ च सौख्यम् ।
विनाशमायान्ति बलेन हीने नीचस्थिते चास्तमुपागते च ॥४९॥

सूर्य निर्बल हो तो गृहेश का, चन्द्रमा निर्बल या अस्त हो तो गृहस्वामिनी का, शुक्र निर्बल, नीच गत या अस्त हो तो धन का, बृहस्पति बलहीन या अपने नीच गत या अस्त हो तो सौख्य का नाश होता है ॥ ४९ ॥

उदये गुरुरस्तगृहे शशिजः सहजेऽथ शनिश्च रविश्च रिपौ ।
जलगश्च सितो भवनस्य तदा शरदां शतमायुरुशन्ति बुधाः ॥५०॥

लग्न में बृहस्पति, सप्तम में बुध, तीसरे स्थान में शनैश्चर, षष्ठ स्थान में सूर्य और चतुर्थ में शुक्र बैठे हों तो ऐसे समय में गृहारम्भ करने से उस गृह की १०० वर्ष की आयु होती है ॥ ५० ॥

यदि विलग्नगते भृगुजोऽम्बरे शशिसुतः खलु केन्द्रगतो गुरुः ।
दिनकृतायगतश्च तदा बुधैः शतमितायुरुदीरितमालयम् ॥५१॥

गेहारम्भ काल में यदि लग्न में शुक्र, दशम स्थान में बुध, केन्द्र (१।४।७।१०) में बृहस्पति और ११ वें स्थान में सूर्य व्यवस्थित हों तो गृह की १०० वर्ष की आयु होती है ॥ ५१ ॥

लग्ने भृगुः पुत्रगतश्च जीवः षष्ठे कुजस्तिग्मकरस्तृतीयः ।
निवेशने यस्य गृहस्य तद्धि शतद्वयं तिष्ठति वत्सराणाम् ॥ ५२ ॥

एवं लग्न में शुक्र, पाचवें बृहस्पति, छठवें मङ्गल, तीसरे सूर्य गेहारम्भ काल में पड़ा हो तो उस मकान की २०० वर्ष की आयु होती है ॥ ५२ ॥

शशाङ्कजीवौ खरसातलस्थौ कुजार्कजौ लाभगतौ च यस्य ।
प्रारम्भकाले भवनस्य यस्य स्थितिर्निरुक्ता शरदामशीतिः ॥ ५३ ॥

चन्द्रमा दशवें, बृहस्पति चौथे, मङ्गल और शनि ग्यारहवें स्थान में स्थित हों तो ऐसे समय में मकान का आरम्भ करने से ८० वर्ष की आयु होती है ॥ ५३ ॥

स्वोच्चवर्तिनि भृगौ विलग्नगे देवमन्त्रिणि रसातलेऽथवा ।
स्वोच्चगे रविसुतेऽथवायगे स्यात् स्थितिः खलु चिरं सहश्रिया ॥५४॥

अपने उच्च राशि का शुक्र लग्न में, अथवा अपने उच्च (कर्क) राशि का बृहस्पति चतुर्थ में, अथवा अपने उच्च राशि (तुला) का शनैश्चर ग्यारहवें स्थान में पड़ा हो तो गेहारम्भ करने से बहुत दिनों तक लक्ष्मी (सम्पत्ति) युक्त वह मकान रहता है ॥ ५४ ॥

स्वर्क्षे चन्द्रे लग्नगे केन्द्रगेज्ये लक्ष्मीवत्स्यात्तद्गृहं भूरिकाले ।
मित्रस्वोच्चांशस्थितैः खेचरेन्द्रैर्नीचारिस्थैर्जायते निर्धनत्वम् ॥५५॥

कर्क लग्न हो उस में चन्द्रमा पड़े हों और केन्द्र (१।४।७।१०) में बृहस्पति बैठा हो तो गेहारम्भ करने से वह मकान बहुत दिनों तक लक्ष्मी युक्त रहता है। एवं जो ग्रह अपनी राशि, अपनी उच्च राशि, अपना नवमांश इस में स्थित रहता है वह भी मकान को लक्ष्मीयुक्त बनाता है। तथा जो ग्रह अपनी नीच राशि, शत्रु की राशि में बैठा हो वह गृहेश को निर्धन करता है ॥ ५५ ॥

एकोऽपि नूनं परभागवर्ती वियत्स्मरस्थः खचरोऽब्दमध्ये ।
करोति नूनं परहस्तयातं स्याद् दुर्बलश्चेदिह वर्णनाथः ॥५६॥

एक भी ग्रह शत्रु की राशि नवमांश में पड़कर दशवें या सातवें स्थान में व्यवस्थित हो और वर्णपति[1] निर्बल हों तो १ वर्ष के भीतर ही उस मकान को दूसरे के हाथ में (आधीन) कर देता है ॥ ५६ ॥

अथ तन्वादिषु पृथक्पृथग्रव्यादिग्रहाणां स्थितिफलानि ।

तत्र तावत्तनुस्थानाम्—

लग्नेऽर्के वज्रपातः स्यात्कोशहानिश्च शीतगौ ।
मृत्युर्विश्वम्भरासूनौ दारिद्र्यं रविनन्दने ॥ ५७ ॥
जीवे धर्मार्थकामाः स्युः सुतोत्पत्तिश्च भार्गवे ।
चन्द्रजे कुशला शक्तिर्जनस्यायुः प्रवर्धते ॥ ५८ ॥

आरम्भलग्न में सूर्य स्थित हो तो वज्रपात, चन्द्रमा स्थित हो तो हानि, मङ्गल हो तो मृत्यु, शनि हो तो दारिद्र्य, बृहस्पति हो तो धर्म-अर्थ-कामकी प्राप्ति, शुक्र हो तो पुत्र की प्राप्ति, बुध हो तो सामर्थ्य और आयु की वृद्धि होती है ॥ ५७–५८ ॥

द्वितीये—

द्वितीयस्थे रवौ हानिश्चन्द्रे शत्रुक्षयो भवेत् ।
भूसुते बन्धनं प्रोक्तं नानाविघ्नाश्च भानुजे ॥ ५९ ॥
बुधे द्रविणसम्पत्तिर्गुरौ धर्मसमागमः ।
यथाकामविनोदेन भृगौ कालं व्रजेदिह ॥ ६० ॥

तृतीये—

सौम्यग्रहास्तृतीयस्थाः पापा अपि विशेषतः ।
सिद्धिः स्यादचिरादेव यथाभिलषितं प्रति ॥ ६१ ॥

---

१. वर्णपति के लिये मेरा बनाया 'फलितनवरत्नसंग्रह' ४।१३ देखिये ।

चतुर्थे—

चतुर्थस्थानगे जीवे पूजा सम्पद्यते नृपात् ।
चन्द्रजे च सदा लाभो भूमिलाभस्तु भार्गवे ॥ ६२ ॥
वियोगः सुहृदा भानौ मित्रभेदो धरासुते ।
बुद्धिनाशो निशानाथे महालाभोऽर्कनन्दने ॥ ६३ ॥

पञ्चमे—

पञ्चमस्थे सुराचार्ये भिन्नवस्त्रधनागमः ।
शुक्रे पुत्रधनप्राप्तिर्हेमाभरणमिन्दुजे ॥ ६४ ॥
सुतदुःखं सदा सूर्ये शशांके कलहप्रियः ।
भौमे कामविरोधः स्याच्छनौ कामविमर्दनम् ॥ ६५ ॥

षष्ठे—

षष्ठस्थानगते सूर्ये पूजा सम्पद्यते नृपात् ।
चन्द्रे पुष्टिः कुजे प्राप्तिः सौरे शत्रुबलक्षयः ॥ ६६ ॥
गुरौ चार्थोदयः प्रोक्तो भृगौ विद्यागमो भवेत् ।
मानज्ञानस्य कौशल्यं नक्षत्रपतिनन्दने ॥ ६७ ॥

सप्तमे—

लग्नात्सप्तमगे जीवे बुधे दैत्यपुरोहिते ।
गजवाजिधरित्रीणां क्रमाद्भोगं विनिर्दिशेत् ॥ ६८ ॥
भास्करे कीर्तिभङ्गः स्यात्कुजे विग्रहमादिशेत् ।
चन्द्रे मन्दे युते मान्द्यं हीनाङ्गत्वं भयं तथा ॥ ६९ ॥

अष्टमे—

निधनस्थे सहस्रांशौ शत्रुतो विपदः सदा ।
हानिः शीतमयूखे च मङ्गले रविजे भयम् ॥ ७० ॥
बुधे मानधनप्राप्तिः सुरेज्ये विजयो महान् ।
शुक्रः स्वजनतो दद्यात्सुखं पुंसां विशेषतः ॥ ७१ ॥

नवमे—

नवमस्थानगे जीवे बुद्धिभाग्यविवर्धनम् ।
बुधे विविधभोगाप्तिः शुक्रे मन्दोदयो भवेत् ॥ ७२ ॥

चन्द्रे धातुक्षयः प्रोक्तो धर्महानिश्च भास्करे ।
कुजे सामर्थ्यहानिः स्याद्रविजे कामदूषणम् ॥ ७३ ॥

दशमे—

दशमस्थानगे शुक्रे शयनासनसिद्धयः ।
सुराचार्ये महत्सौख्यं विजयश्च तथा बुधे ॥ ७४ ॥
मार्तण्डे धनवृद्धिश्च चन्द्रे कोशविवर्धनम् ।
भौमे बलं सदा पुंसां भानौ कीर्तिविलोपनम् ॥ ७५ ॥

एकादशद्वादशयोः—

लाभस्थानगताः सर्वे प्रयच्छन्ति शुभं फलम् ।
व्यये सर्वे सदौदास्यं प्रयच्छन्ति विशेषतः ॥ ७६ ॥

इन १८ पद्यों का अर्थ ५७–५८ इन पद्यों के नाई होने के कारण स्पष्ट है । आगे का चक्र देखिये ॥ ५९–७६ ॥

सूर्यस्य	इन्दोः	भौमस्य	विदः	गुरोः	भृगोः	शनेः	ग्रहाः
वज्रपात	कोशहानि	मृत्यु	सामर्थ्य	त्रिवर्ग	पुत्रोत्पत्ति	दारिद्र्य	१ तनु
हानि	शत्रुक्षय	बन्धन	धनसंपत्	धर्मलाभ	विनोद	नानाविध	२ धन
विशेषशुभ	शुभ	अतिशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अतिशुभ	३ तृतीय
महालाभ	बुद्धिनाश	मित्रभेद	लाभ	नृपमान्य	भूमिलाभ	मित्र वियोग	४ चतुर्थ
पुत्रपीडा	कलह	कार्यहानि	स्वर्णप्राप्ति	मित्रार्थ लाभ	पुत्रार्थ लाभ	कामनाश	५ पंचम
राजपूजा	पुष्टि	लाभ	मानज्ञान कौशल्यला	धनलाभ	विद्यालाभ	शत्रुहानि	६ षष्ठ
कीर्तिभंग	रोग	विग्रह	हयभोग	गजभोग	भूमिभोग	नानाभय	७ सप्तम
शत्रुजन्य दुःख	हानि	भय	मानधन प्राप्ति	विजय	स्वजनसुख	भय	८ अष्टम
धर्महानि	धातुक्षय	सामर्थ्य हानि	नानाभोग लाभ	बुद्धिभाग्य वृद्धि	मन्दोदय	कामदूषण	९ नवम
धनवृद्धि	कोशवृद्धि	बलवृद्धि	विजय	महत्सौख्य	शय्यास-नादिसुख	कीर्तिलोप	१० दशम
शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	११ एकादश
हानि	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि	१२ द्वादश

अथान्ये योगाः (चि० १२।२६-२८)—

पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैः सजीवै-
स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात् ।
द्वीशाश्वितक्षवसुपाशिशिवैः सशुक्रै-
र्वारे सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात् ॥ ७७ ॥

पुष्य, ध्रुव (३ उत्तरा रोहिणी), मृगशिरा, श्रवणा, आश्लेषा, पूर्वाषाढा, इन नक्षत्रों में से किसी पर बृहस्पति बैठा हो और उस नक्षत्र मे बृहस्पति वार हो तो गृहारम्भ करने से पुत्र-राज्य का सुख होता है। विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा, आर्द्रा इन में से किसी पर शुक्र अधिष्ठित हो और वह नक्षत्र शुक्रवारको हो तो गृहारम्भ करने से धन-धान्य की वृद्धि होती है ॥ ७७ ॥

सारैः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः कौजेह्नि वेश्माग्निसुतार्तिदं स्यात् ।
सज्ञैः कदास्त्रार्यमतक्षहस्तैर्ज्ञस्यैव वारे सुखपुत्रदं स्यात् ॥ ७८ ॥

हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढा, मूल इन नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र में मङ्गल पड़ा हो और उसी नक्षत्र में भौम वार हो तो गृहारम्भ करने से पुत्रपीडा और अग्निभय होता है। रोहिणी, अश्विनी, उत्तरा फल्गुनी, चित्रा, हस्त इनमें से किसी नक्षत्र में बुध व्यवस्थित हो और वही नक्षत्र बुधवार को पड़े तो गेहारम्भ करने से सुख और धन की प्राप्ति होती है ॥ ७८ ॥

अत्रैजपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्राऽनिलान्तकैः ।
समन्दैर्मन्दवारे च रक्षोभूतयुतं गृहम् ॥ ७९ ॥

पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाती, भरणी ये नक्षत्र शनि से युक्त हों और शनि वार हो तो मकान बनाने से वह राक्षस-भूतों से युक्त रहता है ॥ ७९ ॥

प्रसङ्गाज्जीर्णोद्धारविधिः (वास्तुराजव० ५ । ३८)—

जीर्णं गृहं भित्तिभग्नं विशीर्णं तत्पातव्यं स्वर्णनागस्य दन्तैः ।
गोश्रृङ्गैर्वा शिल्पिना निश्चयेन पूजां कृत्वा वास्तुदोषो न तस्य ॥८०॥

घर के पुराना हो जाने पर, भित्ति के गिर जाने पर, विशीर्ण (भ्रष्ट) हो जाने पर सोने की खूँटी या गोश्रृङ्गसे वास्तु पूजनपूर्वक गिरवाने से वास्तु भंग का दोष नहीं होता ॥ ८० ॥

सूतिकागृहनिर्माणे विशेषः—

पुनर्वसौ च सूतिका गृहस्य निर्मितिः शुभा ।
विरिञ्चिविष्णुभान्तरे प्रवेशनं हितं भवेत् ॥ ८१ ॥

पुनर्वसु नक्षत्र में सूतिकागृह का बनवाना और अभिजित्-श्रवण के बीच में प्रवेश करना शुभ होता है। लल्लाचार्य्य ने भी ऐसा ही कहा है—

पुनर्वसौ नृपादीनां कर्तव्यं सूतिकागृहम्।
श्रवणाऽभिजितोर्मध्ये प्रवेशं तत्र कारयेत् ॥ इति ॥ ८१ ॥

विशेषः (ज्यो० नि०)—

वारेऽनुकूले राशौ तु दग्धदोषादिवर्जिते।
स्वानुकूलदिशि प्रोक्तं सूतिकाभवनं बुधैः ॥ ८२ ॥

शुभग्रह के वारों में अच्छी राशियों में दग्धादि खराब योगों को छोड़ कर अपनी अनुकूल दिशा में सूतिकागार बनाना अच्छा होता है ॥ ८२ ॥

कालनियमः—

आसन्नप्रसवे मासि कुर्याच्चैव विशेषतः।
तद्वत्प्रसवकाले स्यादिति शास्त्रेषु निर्णयः ॥ ८३ ॥

जब प्रसव का समय नजदीक आ जाय तब सूतिकागृह में प्रवेश करना उत्तम होता है। यही शास्त्रों में निर्णय है ॥ ८३ ॥

वराहश्च—

हस्तादित्यशशांकतिष्यपवनप्राज्येशमित्रोत्तरा-
श्चित्राश्विश्रवणेषु वृश्चिकघटौ हित्वा विरिक्ते तिथौ।
शुक्राचार्य्यशनैश्चरज्ञशशिनां वारेऽनुकूले विधौ
सद्भिर्वेश्मनि सूतिकागृहविधिः क्षेमंकरः कीर्तितः ॥ ८४ ॥

हस्त, पुनर्वसु, मृगशिरा, पुष्य, स्वाती, शतभिषा, अनुराधा, ३ उत्तरा, चित्रा, अश्विनी, श्रवण इन नक्षत्रों में वृश्चिक-कुम्भ को छोड़ अन्य लग्नों में, रिक्ता को छोड़ अन्य तिथियों में, शुक्र, बृहस्पति, शनैश्चर, बुध और चन्द्र वारों में, अपनी राशि से चन्द्रमा के अनुकूल होने पर मकान में सूतिका गृह की व्यवस्था करना कल्याणकारी होता है ॥ ८४ ॥

सूतिकागारप्रवेशमुहूर्तः—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सूतिकागारवेशनम्।
मासे तु नवमे प्राप्ते पूर्वपक्षे शुभे दिने ॥
प्रसूतिसम्भवे काले सद्य एव विशेद् गृहम् ॥ ८५ ॥

गर्भ से नववें महीने में शुक्ल पक्ष में शुभग्रहों के दिनों में और यदि प्रसवकाल समीप हो तो तुरत सूतिकागार में प्रवेश करे ॥ ८५ ॥

तत्र नक्षत्राणि (ज्यो० नि०)—

रोहिण्यैन्दवपौष्णेषु स्वातीवारुणयोरपि ।
पुनर्वसौ पुष्यहस्तधनिष्ठात्र्युत्तरासु च ॥ ८६ ॥
मैत्रे त्वाष्ट्रे तथाश्विन्यां सूतिकागारवेशनम् ।
गृहाऽनुकूले राशौ तु रिष्फषष्ठाष्टवर्जिते ॥ ८७ ॥
सर्वे चाथ शुभाः खेटे पापाश्च त्रिषडायगाः ।
शुभांशे शुभराशौ च सूतिकावेशनं शुभम् ॥ ८८ ॥

रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, स्वाती, शतभिष, पुनर्वसू , पुष्य, हस्त, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, अनुराधा, चित्रा, अश्विनी इन १५ नक्षत्रों में, १२।६। ८ इन स्थानों में कोई ग्रह न हों, केन्द्र में शुभग्रह और ६।३।११ स्थानों में पापग्रह स्थित हों और लग्न में शुभग्रहों की राशि और नवमांश हो तो अनुकूल गृह में सूतिका का प्रवेश करना श्रेष्ठ होता है ॥ ८६-८८ ॥

आरम्भादिष्वेकविंशन्महादोषा अपि वर्ज्याः—

एकविंशन्महादोषास्त्वेते ब्रह्ममुखोदिताः ।
कदाचिन्नैव सीदन्ति गुणानां कोटिकोटिभिः ॥ ८९ ॥
तस्मादेतेषु दोषेषु कदाचिन्नाचरेच्छुभम् ।
विवाहे विधवा नारी मरणं व्रतबन्धने ॥ ९० ॥
ग्रामनाशः प्रतिष्ठायां सीमन्ते गर्भनाशनम् ।
नवान्नभोजने मृत्युः कृषौ तत्फलनाशनम् ॥ ९१ ॥
कर्तुर्नाशो गृहारम्भे प्रवेशे पतिनाशनम् ।
यात्रायां कर्तृनाशः स्याद् युद्धयाने विशेषतः ॥
लभ्यते सुमहत्पुण्यमेषु श्राद्धादिकर्मभिः ॥ ९२ ॥

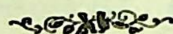
ब्रह्मा के मुख से कहे गये २१ महादोषों में भूल से भी कोई शुभकार्य नहीं करना चाहिये। इन महादोषों में विवाह करने से स्त्री विधवा, व्रतबन्ध हो तो बालक का मरण, प्रतिष्ठा में ग्राम का नाश, सीमन्त हो तो गर्भनाश, नवान्न भोजन में मृत्यु, कृषिकर्म में फल (कृषि) का नाश, गृहारम्भ में कर्ता का नाश, वधूप्रवेश में पतिका नाश, यात्रा में यात्री का नाश, युद्धयात्रा में विशेष कर युद्धयात्री का नाश होता है। इन २१ महादोषों में श्राद्धादिकर्म करने से महाफल होता है ॥ ८९-९२ ॥

ते दोषाश्च (ज्यो० नि०)—

पञ्चाङ्गशुद्धिरहितो दोषस्त्वाद्यः प्रकीर्तितः ।
उदयास्तशुद्धिरहितो द्वितीयः सूर्यसंक्रमः ॥ ९३ ॥
तृतीयः पापषड्वर्गो भृगुः षष्ठः कुजोऽष्टमः ।
गण्डान्तं कर्तरी रिष्फषडष्टेन्दुश्च सग्रहः ॥ ९४ ॥
दम्पत्योरष्टमं लग्नं राशेर्विषघटी तथा ।
दुर्मुहूर्तो वारदोषः खार्जूरिकसमाङ्घ्रिभम् ॥ ९५ ॥
ग्रहणोत्पातभं क्रूरविद्धर्क्षं क्रूरसंयुतम् ।
कुनवांशो महापातो वैधृतिश्चैकविंशतिः ॥ ९६ ॥

[1]पञ्चाङ्गशुद्धि, उदयास्तशुद्धि, सूर्य की संक्रान्तियाँ, पापग्रहों के [2]षड्वर्ग, लग्नसे षष्ठस्थ शुक्र, अष्टमस्थ भौम, लग्न-नक्षत्र-तिथि गण्डान्त, कर्तरीयोग १२।६।८ वे स्थान में स्थित चन्द्रमा, सग्रह, जन्मलग्न और जन्मराशि से अष्टम राशि का लग्न, विषघटी, दुर्मुहूर्त, वारदोष, खार्जूर, ग्रहण और उत्पात का नक्षत्र, क्रूरग्रह से विद्ध और युक्त नक्षत्र, पाप ग्रहों का नवमांश, महापात और वैधृति ये २१ महादोष होते हैं ॥ ९३-९६ ॥

इति गृहारम्भप्रकरणम् ॥ ९ ॥



गृहप्रवेशप्रकरणम् १०

तत्र तावत्प्रवेशलक्षणम्—

अपूर्वसंज्ञः प्रथमः प्रवेशो यात्राऽवसाने च सपूर्वसंज्ञः ।
द्वन्द्वाऽऽह्वयस्त्वग्निभयादिजातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

एकदम नवीन मकान में प्रवेश करने को अपूर्व प्रवेश, यात्रा से लौट कर प्रवेश करने को सपूर्वप्रवेश और अग्नि, जल, वायु, विजुली इत्यादि के द्वारा गिरे हुए मकान का पुनरुद्धार करके उसमें प्रवेश करने को द्वन्द्व-प्रवेश कहते हैं ॥ १ ॥

कालशुद्धिः—

प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः ।
माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः ॥ २ ॥

---

१. मेरे 'फलितनवरत्नसंग्रह' का (१।२१) प्र० देखिये ।
२. मेरा बनाया 'जन्मपत्रदीपक' देखिये ।

शुभः प्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयोः ।
वस्विज्यवारुणस्वातीदास्रमैत्रकरोडुषु ॥ ३ ॥
व्यर्कारवारतिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मङ्गलप्रदः ॥ ४ ॥

मार्गशीर्ष और कार्तिक में गृहप्रवेश करना सामान्य फलदायक है । फाल्गुन, वैशाख, और ज्येष्ठ महीनों में उत्तम होता है । बृहस्पति और शुक्र उदय हों, धनिष्ठा, पुष्य, शतभिषा, स्वाती, अश्विनी, अनुराधा और हस्त इन नक्षत्रों में, रवि और भौमवार को छोड़ अन्य (सोम, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर) वारों में, रिक्ता (४।६।१४) और अमावास्या को छोड़ शेष (१।२।३।५।६।७।८।१०।११।१२।१३।१५) तिथियों में दिन वा रात्रि में प्रवेश करना उत्तम होता है ॥ २-४ ॥

प्रत्येकमासफलानि—

माघेऽर्थलाभः प्रथमप्रवेशे पुत्राऽर्थलाभः खलु फाल्गुने च ।
चैत्रेऽर्थहानिर्धनधान्यलाभो वैशाखमासे पशुपुत्रलाभः ॥ ५ ॥
ज्येष्ठे च मासेषु परेषु नूनं हानिप्रदः शत्रुभयप्रदश्च ।
शुक्ले च पक्षे सुतरां विवृद्ध्यै कृष्णे च यावद्दशमीं च तावत् ॥ ६ ॥

माघ महीने में प्रवेश करने से धन का लाभ, फाल्गुन में प्रवेश करने से पुत्र और धन का लाभ, चैत्र में प्रवेश करने से धनकी हानि, वैशाख मास में प्रवेश करने से धन और धान्य का लाभ, ज्येष्ठ मास में प्रवेश करने से पशु और पुत्र का लाभ और शेष (आषाढ, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और पौष) महीनों में हानि और शत्रुभय होता है । शुक्ल पक्ष में निरन्तर वृद्धि होती है और कृष्णपक्षमें दशमी तक गृहप्रवेश लाभप्रद होता है ॥ ५-६ ॥

प्रवेशे सौरा मासा न व्यवहर्तव्याः—

मृगादिषड्राशिषु संस्थितेऽर्के नवप्रवेशः शुभदः सदैव ।
कुम्भं विनाऽन्येष्वपि केचिदूचुर्न सौरमिष्टं खलु सन्निवेशे ॥ ७ ॥

मकरादि ६ राशियों के (सौम्यायन) सूर्य में नवगेह-प्रवेश करना शुभदायक होता है । 'कुम्भ को छोड़कर अन्य महीनों में गृहप्रवेश करना शुभ होता है' ऐसा किसी २ का मत है । परन्तु सौर मास प्रवेश में ग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥

---

१. 'दिन वा रात्रि में' इस का अभिप्राय यह है कि दिन में मुख्य और रात्रि में गौण काल गृहप्रवेश का होता है ।

मुहूर्तचिन्तामणौ (१३।१-२)—

सौम्यायने ज्येष्ठतपोन्त्यमाधवे यात्रानिवृत्तौ नृपतेर्नवे गृहे ।
स्याद्वेशनं द्वास्थमृदुध्रुवोडुभिर्जन्मर्क्षलग्नोपचयोदये स्थिरे ॥ ८ ॥
जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि मार्गोर्जयोः श्रावणिकेऽपि सत्स्यात् ।
देशोऽम्बुपेज्याऽनिलवासवेषु नाऽवश्यमस्तादिविचारणाऽत्र ॥ ९ ॥

(उपर्युक्त वचनों से चन्द्र और सौर मासों में द्वैविध्य होने के कारण श्रीरामदैवज्ञने स्पष्ट लिखा है)—

सौम्यायन सूर्य में भी ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख इन ४ महीनों में जिस दिशा का द्वार हो उस दिशा के और मृदु (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), ध्रुव (३ उत्तरा, रोहिणी) संज्ञक नक्षत्रों में; जन्मलग्न और जन्मराशि से उपचय (३।६।१०।११) राशि एवं स्थिर (२।५।८।११) राशि के लग्नों में यात्रा से निवृत्त होने (लौटने) पर अथवा नूतन गृहमें प्रवेश करना शुभदायक होता है ।

पुराने मकान में या जल, अग्नि, वायु, बिजुली के द्वारा गिरे हुए मकान का जीर्णोद्धार किये गये मकान में मार्गशीर्ष, कार्तिक और श्रावण इन महीनों में और शतभिष, पुष्य, स्वाती और धनिष्ठा इन नक्षत्रों में गृहप्रवेश करना श्रेयस्कर होता है । इस जीर्णोद्धार किये हुये मकान के प्रवेश में अस्तादिक का विचार करना आवश्यक नहीं है ॥ ८-९ ॥

सपूर्वप्रवेशस्तृणागारप्रवेशो वा याम्यायनेऽपि कार्यः—

गृहारम्भोदितैर्मासैर्धिष्ण्यैर्वारैर्विशेद् गृहम् ।
विशेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारे तु सर्वदा ॥ १० ॥

नवीन गृह में गेहारम्भोदित मास, नक्षत्र, वारों में और तृणागार में प्रवेश करना शुभ होता है । (रामचन्द्र जीने चित्रकूट में पर्णकुटी बनाकर उसमें प्रवेश किया था अतः तृणादि कुटी में भी प्रवेश करना विहित है)॥

वशिष्ठः—

नवप्रवेशे त्वथ कालशुद्धिर्न द्वन्द्वसौपूर्वकयोः कदाचित् ।
प्रवेशपञ्चाङ्गदिनेषु लग्ने वास्त्वर्चनं पूर्ववदेव कार्यम् ॥११॥

नवीन गृहप्रवेश में ही समयशुद्धि देखनी चाहिये । द्वन्द्व और सपूर्व प्रवेश में समय-शुद्धि देखना आवश्यक नहीं है । केवल पञ्चाङ्गशुद्धि देख कर वास्त्वर्चन और प्रवेश पूर्ववत् करना चाहिये ॥ ११ ॥

विशेषः (ज्योतिःप्रकाशे)—

नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके ।
वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ॥ १२ ॥

रोज २ की यात्रा में, पुराने घर के प्रवेश में, अन्नप्राशन और वस्त्र-परिधान में, वधूप्रवेश में और सामान्य माङ्गलिक कार्य में बृहस्पति और शुक्र के अस्त का दोष नहीं होता ॥ १२ ॥

कर्तुर्विलग्नादथ जन्मराशेर्लग्नस्थितो राशिरिति प्रदिष्टः ।
निर्व्याधिदारिद्र्ययशस्करश्च सुहृत्सुतघ्नो रिपुनाशनश्च ॥ १३ ॥
कलत्रहन्ता निधनप्रदश्च रोगप्रदः सिद्धिकरोऽर्थदश्च ।
क्रमाच्च वैरामयदः क्रमेण सदैव नूनं त्रिविधः प्रवेशः ॥
सौम्ये स्थिरे भे शुभदृष्टियुक्ते लग्नेऽथवा द्व्यङ्गगृहे विलग्ने ॥ १४ ॥

प्रवेशकर्ता की जन्मलग्न, और जन्मराशि यदि तीनों प्रकारके प्रवेश काल में प्रवेशलग्नगत हो तो नैरुज्य, द्वितीयस्थान में हो तो दरिद्रता, तृतीयस्थान में हो तो यशकी वृद्धि, चतुर्थस्थान में हो तो मित्रनाश, पाँचवें पड़ा हो तो पुत्र का नाश, छठें हो तो शत्रु का नाश, सातवें स्थान में पड़ जाय तो स्त्री का नाश, आठवें में हो तो मृत्यु, नववें पड़े तो रोग की अधिकता, दशवें पड़े तो सिद्धि (कार्य-सफलता), ग्यारहवें पड़े तो धन का लाभ और बारहवें हो तो शत्रुत्व और रोग की अधिकता होती है। स्थिरसंज्ञक शुभग्रह की राशि का लग्न हो और उसको शुभग्रह देखते हों अथवा द्विस्वभावराशिका लग्न हो तो तीनों प्रकार के गृहप्रवेश श्रेयस्कर होते हैं ॥ १३-१४ ॥

स्फुटतयोक्तं नारदेन—

कर्तुर्जन्मभलग्ने वा ताभ्यामुपचयेऽपि वा ।
प्रवेशलग्ने स्याद् वृद्धिरन्यभे शोकनिस्वनः ॥ १५ ॥

प्रवेशकर्ता के जन्मलग्न, जन्मराशि से उपचय (३।६।१०।११) राशि लग्न में हो तो शुभ अन्यथा अशुभ होता है ॥ १५ ॥

लग्नशुद्धिः (पी० धा० १३)—

त्रिकोणकेन्द्रायधनत्रिगैः शुभैर्लग्नत्रिषष्ठायगतैश्च पापकैः ।
शुद्धाम्बुरन्ध्रे विजनुर्भमृत्यौ व्यर्कारिक्ताचरचैत्रदर्शे ॥
अग्रेऽम्बुपूर्णं कलशं द्विजाँश्च कृत्वा विशेद् वेश्मभकूटशुद्धम् ॥१६॥

प्रवेशलग्न से त्रिकोण (५।६), केन्द्र (१।७।१०) एकादश, द्वितीय और तृतीय इन ७ स्थानों में शुभग्रह और (१।३।६।११) इन स्थानों में पापग्रह स्थित हों, ४।८ स्थान शुद्ध (खाली) हो, लग्न में जन्मराशि और जन्मलग्न से अष्टम राशि न पढ़ी हो और रविवार, भौमवार, रिक्ता ४।६। १४ तिथि चर (१।४।७।१०) लग्न और चैत्र का महीना इन को छोड़ कर अन्य वार, तिथि, लग्न और महीना हो तो भरा हुआ कलश, ब्राह्मणमण्डली,

सौभाग्यवती स्त्री इनको आगे करके भकूट की शुद्धि रहने पर प्रवेश करे ॥१६॥

विशेषः—

यः क्षीणचन्द्रोऽन्त्यषडष्टसंस्थः पापेक्षितः पापयुतोऽथवा स्यात् ।
कर्तुः श्रियं हन्ति स वत्सरेण त्रिवर्षतः सौम्यनिरीक्षितश्चेत् ॥१७॥

यदि क्षीण चन्द्रमा ६।८।१२ इन स्थानों में बैठा हुआ पापग्रहों से देखा जाता हो या पापग्रह उसपर अधिष्ठित हों तो गृहप्रवेश करने वाले की स्त्री का एक वर्ष के भीतर नाश होता है। यदि च शुभग्रह से देखा जाता हो तो ३ वर्ष के भीतर स्त्री का नाश करता है ॥ १७ ॥

वामरविविचारः—

अष्टमात्पञ्चमाद्वित्ताल्लाभात्पञ्चस्थिते रवौ ।
पूर्वादिदिङ्मुखं गेहं विशेद्वामो भवेद्यतः ॥ १८ ॥

पूर्वादिक दिशाओं में द्वारवाले मकान में प्रवेश करने के लिये प्रवेशलग्न से आठवें, पाँचवें, दूसरे और ग्यारहवें स्थान से ५ स्थानों में सूर्य हों तो वामरवि कहलाते हैं। अर्थात् पूर्वद्वारवाले मकान में प्रवेश करने के लिये आठवें से ५ स्थान में हो तो वामरवि होता है। दक्षिण ओर दरवाजे वाले मकान में प्रवेश करने के लिये ५वें स्थान से ५ स्थानों में हो तो वामरवि जानना। पश्चिमद्वार वाले मकान में दूसरे स्थान से ५ स्थानों में सूर्य हो तो वामरवि जनाना और उत्तर दरवाजे वाले मकान में ११वें स्थान से ५ स्थानों में सूर्य के रहने पर वामरवि होता है। वामरवि में ही प्रवेश करना उत्तम होता है। स्फुटता के लिये चक्र देखिये ॥ १८ ॥

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	दिशा
८।९।१०।११।१२	५।६।७।८।९	२।३।४।५।६	११।१२।१।२।३	स्थान

कुम्भचक्रम्—

वक्त्रे भू रविभात्प्रवेशसमये कुम्भेऽग्निदाहः कृताः
प्राच्यामुद्वसनं कृता यमगता लाभः कृताः पश्चिमे ।
श्रीर्वेदाः कलिरुत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे
रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनलाः कण्ठे भवेत्सर्वदा ॥ १९ ॥

सूर्याधिष्ठित नक्षत्र से एक नक्षत्र कल के मुख में स्थापित करे उसका फल अग्निदाह है। फिर ४ नक्षत्र पूर्व में उद्वास करने वाला, ४ नक्षत्र दक्षिण में लाभकारक, ४ नक्षत्र पश्चिम में लक्ष्मीप्राप्ति, ४ नक्षत्र उत्तर में कलहकर, ४ नक्षत्र गर्भ में विनाश करने वाला, ३ नक्षत्र गुदा में स्थिरता करने वाला

और ३ नक्षत्र कण्ठ में भी स्थिरता करने वाला है। अत एवात्र मदीयं पद्यम्—

पञ्चेभाष्टरसैर्भैर्हि प्रवेशे रविभात्क्रमात् ।
असत्सद्विबुधैर्ज्ञेयं संहितासारविद्वरैः ॥ इति ॥ १९ ॥

मुख	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	गर्भ	गुदा	कण्ठ	स्थान
१	४	४	४	४	४	३	३	२७ नक्षत्र
अग्निदाह	उद्वास	लाभ	श्रीः	कलह	विनाश	स्थिरता	स्थिरता	फल

केचिद्राहुविचारमपि कुर्वन्ति—

यद्राशिगोऽर्कः खलु तद्विलोमाद्राहुः सदा गच्छति मासि मासि ।
त्रिरागमे वाऽपि गृहप्रवेशे राहुः प्रशस्तः खलु दक्षपृष्ठे ॥२०॥

जिस राशि पर सूर्य स्थित हो उस राशि के क्रमसे महीने २ राहु उस २ दिशा में घूमता है। यह राहु स्त्री के तीसरी वार पति के घर की यात्रा और गृहप्रवेश में दाहिने और पीछे हो तो शुभ होता है ॥ २० ॥

आहुतिविचारः (मु० चि०)—

सूर्यभात्त्रित्रिभे चान्द्रे सूर्यविच्छुक्रपङ्गवः ।
चन्द्रारेज्यागुशिखिनो नेष्टा होमाहुतिः खले ॥ २१ ॥

इसके अर्थ की स्फुटता के लिये चक्र ही पर्याप्त है ॥ २१ ॥

सूर्य	बुध	शुक्र	शनि	चन्द्र	भौम	गुरु	राहु	केतु	ग्रह
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७ नक्षत्र
अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ	फल

अग्निवासज्ञानम्—

सैका तिथिर्वारयुता कृताऽऽप्ता शेषे गुणेऽभ्रे भुवि वह्निवासः ।
सौख्याय होमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च ॥२२॥

शुक्ल पक्ष की प्रतिपद से वर्तमान तिथिपर्यन्त गिन के जितना हो उसमें १ और जोड़ के वार की संख्या जोड़ना उस योगफलमें ४ का भाग देने से ० और ३ शेष बचे तो पृथ्वी पर अग्नि का वास रहता है, इसमें हवन करने से सुख की लब्धि होती है। एवं १ शेष बचे तो आकाश में अग्नि का वास होता है। यह प्राणसंकट करने वाला है। एवं यदि २ शेष बचे तो पाताल में अग्नि का वास होता है। इस में हवन करने से धन का नाश होता है।॥२२॥

कुछ अल्पज्ञ लोग पक्षादि से ही तिथि-गणना करते हैं यह उनका भारी भ्रम है। क्योंकि वास्तुप्रदीप के प्रवेशप्रकरण (१७-१८ श्लो०) में खुले शब्दों में लिखा है—

शुक्लादितो मुक्ततिथिः कुयुक्तो वारान्वितश्चाब्धिहृतोऽवशेषात् ।
मर्त्येऽग्निवासो वियदग्निशेषे सौख्याय होमे मुनिभिः प्रदिष्टः ॥
दिव्येकतः प्राणविनाशनाय पातालगो द्विप्रमितेऽर्थनाशः ।
कृष्णे च कृष्णप्रतिपन्मुखाच्च वह्नेर्निवासो न हि युक्तियुक्तः ॥ इति ।

बृहद्दैवज्ञरञ्जन में १ शेष बचने पर स्वर्ग में निवास का शुभ फल लिखा है। यथा—

एके स्वर्गे धनं राज्यं शून्ये (त्रिखे) भुवि सुखास्पदम् ।
विशेषे दोषकृद्वह्नेः पाताले वसतेः फलम् ॥ इति ॥

अर्चिततमे गृहे प्रवेशः कार्यः (वास्तुराजव० २।३६)—

अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् ।
गृहं न प्रविशेद्धीमान् विपदामाकरं तु तत् ॥ २३ ॥

जिसमें किवाड़े न लगे हों, जो छाया न हो, वस्तुदेवों को बलि भोजन न दिया गया हो उसमें प्रवेश नहीं करना चाहिये । क्योंकि विपत्ति का जनक होता है । ऐसा ही मु० मा० (६।१६) में भी लिखा है—

छन्नं वश्यकपाटमर्चिततमं वेश्मोक्तरीत्या विशेत् ॥ इति ॥ २३ ॥

प्रवेशविधिः—

कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोऽर्कं विप्रान् पूज्यानग्रतः पूर्णकुम्भम् ।
हर्म्यं रम्यं तोरणस्रग्वितानैः स्त्रीभिः स्रग्वी गीतमाल्यैर्विशेत्तत् ॥२४॥

प्रवेश के समय शुक्र पीछे रहे (अर्थात् सम्मुख और उपलक्षण से दाहिने न रहे), सूर्य वाम रहे तो आगे भरा हुआ घड़ा लेकर ब्राह्मणों, पूज्यों का पूजा-सन्मान कर के मङ्गल गाती हुई स्त्रियों से और तोरण-माला इत्यादि से युक्त गृहेश गृह में प्रवेश करे ॥ २४ ॥

रत्नमालायामपि (१७।१०-११)—

कृत्वा विप्रान्सजलकलशाँश्चाग्रतो वामतोऽर्कं
स्नातः स्रग्वी विमलवसनो मङ्गलैर्वेदघोषैः ।
व्यस्तैर्यात्राकथितशकुनैर्द्वारमार्गेण राजा
हर्म्यं पुष्पप्रकटरुचिरं तोरणढ्यं विशेच्च ॥ २५ ॥

भरे हुए कलशों को लिये आगे २ ब्राह्मण-मण्डली हो, वामभाग में सूर्य हो, चारो ओर वेदध्वनि होती रहे और गृहपति मङ्गलस्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहन के वस्त्राभूषण और चन्दन पुष्पमाला से सुसज्जित हो कर पुष्प तोरण इत्यादि से समलंकृत गृह में द्वारमार्ग से प्रवेश करे। उस समय यदि यात्रा में कहे हुए व्यस्त शकुन हों तो बहुत उत्तम फलदायक होते हैं ॥ २५॥

ततो नृपो विप्रसुहृत्पुरोधसः शिल्पज्ञभूगोलविदश्च लिङ्गिनः।
धनैश्च रत्नैः पशुभिः समर्चयेज्जडान्धदीनान् पुरवासिनश्च ॥२६॥

उसके बाद गृह का स्वामी ब्राह्मण, मित्रमण्डली, पुरोहित, कारीगर ज्यौतिषी, कर्मकाण्डी इन सबों का धन, रत्न, आभूषण, पशु इत्यादि से समुचित संमान करे और मूर्ख, अन्ध, दीन इत्यादिकों को और पुरवासियों, को यथेष्ट प्रसन्न करे॥ २६॥

इति गृहप्रवेशप्रकरणम्॥ १०॥

परिशिष्टप्रकरणम् ११

राज्ञां गृहप्रमाणम् (बृहत्सं० ६४४ पृ० कश्यपः)—

अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तारान्नृपमन्दिरम्।
कार्यं प्रधानमन्यानि तथाष्टाष्टोनितानि च॥ १॥
विस्तारं पादसंयुक्तं दैर्घ्यं तेषां प्रकल्पयेत्।
एवं पञ्च नृपः कुर्याद् गृहाणां च पृथक्पृथक्॥ २॥

१०८ हाथ चौड़ा राजा का प्रधान प्रासाद (राजमन्दिर) तथा अन्य ४ मन्दिर क्रम से ८, ८ हाथ विस्तार में कम हों और लम्बाई सबों की अपने २ विस्तार से सवाई हो। ऐसा बनवाना चाहिये। अर्थात् प्रधान मन्दिर १०८ हाथ चौड़ा, १३५ हाथ लम्बा; दूसरा मन्दिर १०० हाथ चौड़ा, १२५ हाथ लम्बा; तीसरा ९२ हाथ चौड़ा ११५ हाथ लम्बा; चौथा ८४ हाथ चौड़ा १०५ हाथ लम्बा और पाचवाँ ७६ हाथ चौड़ा ९५ हाथ लम्बा बनवाना चाहिये। इस प्रकार राजा ५ तरह का मकान अलग २ बनवावे॥

सचिवगृहप्रमाणम्—

षष्टिश्चतुर्भिर्हीना वेश्मानि पञ्च सचिवस्य।
स्वाष्टांशयुतो दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम्॥ ३॥

मन्त्रीका मकान ६० हाथ चौड़ाई से प्रारम्भ करके ४, ४ हाथ कम कर के पाँच प्रकार का होना चाहिये। लम्बाई में अपने २ चौड़ाई का ⅛ वाँ भाग युत रहना चाहिये। अर्थात् पहला मकान ६० हाथ चौड़ा ६७ हाथ १२ अङ्गुल लम्बा, दूसरा ५६ हाथ चौड़ा ६३ हाथ लम्बा, तीसरा ५२ हाथ चौड़ा ५८ हाथ १२ अंगुल लम्बा, चौथा ४८ हाथ चौड़ा ५४ हाथ लम्बा और पाचवाँ ४४ हाथ चौड़ा ४९ हाथ १२ अङ्गुल लम्बा बनवना चाहिये। मन्त्री के आधे के बराबर राजमहिषी (पटरानी) का मकान भी ५ तरह का होना चाहिये अर्थात् पटरानी का पहला मकान ३० हाथ चौड़ा ३३ हाथ १८

अङ्गुल लम्बा; दूसरा २८ हाथ चौड़ा, ३१ हाथ १२ अङ्गुल लम्बा; तीसरा २६ हाथ चौड़ा २९ हाथ ६ अङ्गुल लम्बा; चौथा २४ हाथ चौड़ा २७ हाथ लम्बा और पाँचवाँ २२ हाथ चौड़ा २७ हाथ १८ अङ्गुल लम्बा बनवाना चाहिए ॥

सेनापतिगृहप्रमाणम्—

षड्भिः षड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतुष्षष्टिः ।
एवं पञ्च गृहाणि षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम् ॥ ४ ॥

सेनापति का गृह ६४ हाथ चौड़ाई से शुरू कर के ६, ६ हाथ कम ५ प्रकार का बनाना चाहिये । और इन की लम्बाई अपने २ छठवें भाग से युत चौड़ाई के बराबर होनी चाहिये । अर्थात् पहला मकान ६४ हाथ चौड़ा और ७४ हाथ १६ अङ्गुल लम्बा; दूसरा ५८ हाथ चौड़ा, ६७ हाथ १६ अङ्गुल लम्बा; तीसरा ५२ हाथ चौड़ा, ६० हाथ १६ अङ्गुल लम्बा; चौथा ६४ हाथ चौड़ा, ५३ हाथ १६ अङ्गुल लम्बा; एवं पाँचवा ४० हाथ चौड़ा, ४६ हाथ १६ अङ्गुल लम्बा बनवाना चाहिये ॥ ४ ॥

युवराजगृहप्रमाणम्—

षड्भिः षड्भिश्चैवं युवराजस्यापवर्जिताऽशीतिः ।
त्र्यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धैस्तदनुजानाम् ॥ ५ ॥

युवराज का मकान ८० हाथ चौड़ाई से प्रारम्भ करके ६, ६ हाथ कम करके ५ प्रकार का बनाना चाहिये । इन मकानों की लम्बाई अपनी २ चौड़ाई के तृतीयांश से युक्त होती है । अर्थात् युवराज का पहला मकान ८० हाथ चौड़ा, १०६ हाथ १६ अङ्गुल लम्बा; दूसरा ७४ हाथ चौड़ा, ९८ हाथ १६ अङ्गुल लम्बा; तीसरा ८६ हाथ चौड़ा, ९० हाथ १६ अङ्गुल लम्बा; चौथा ६२ हाथ चौड़ा ८२ हाथ १६अङ्गुल लम्बा और पाँचवाँ ५६ हाथ चौड़ा ७४ हाथ १६ अङ्गुल लम्बा बनवाना चाहिये ।

और युवराज के मकान की लम्बाई-चौड़ाई की आधी लम्बाई-चौड़ाई के बराबर युवराज के छोटे भाइयों के मकान की लम्बाई-चौड़ाई होनी चाहिये । अथात् पहला मकान ४० हाथ चौड़ा ५३ हाथ ८ अङ्गुल लम्बा; दूसरा मकान ३७ हाथ चौड़ा ४९ हाथ ८ अंगुल लम्बाः तीसरा ३४ हाथ चौड़ा ४५ हाथ ८ अंगुल लम्बा, चौथा ३१ हाथ चौड़ा ४१ हाथ ८ अंगुल लम्बा, एवं पाँचवाँ २८ हाथ चौड़ा ३७ हाथ ८ अंगुल लम्बा बनाना श्रेयस्कर होता है ॥ ५ ॥

सामन्तादीनां गृहप्रमाणम्—

नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराजपुरुषाणाम् ।
नृपयुवराजविशेषः कञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानाम् ॥ ६ ॥

अध्यक्षाधिकृतानां सर्वेषां कोशरतितुल्यम्।
युवराजमन्त्रिविवरं कर्मान्ताध्यक्षदूतानाम् ॥ ७ ॥

राजा और मन्त्री के भवन के अन्तर तुल्य सामन्त-प्रवर, राजपुरुषों का पाँच प्रकार का गृह होता है। अर्थात् पहला गृह ४८ हाथ चौड़ा, ६७ हाथ १२ अं० लम्बा; दूसरा ४४ हाथ चौड़ा, ६२ हाथ लम्बा; तीसरा ४० हाथ चौड़ा, ५६ २/३ हाथ लम्बा; चौथा ३६ हाथ चौड़ा, ५१ हाथ लम्बा एवं पाँचवाँ ३२ हाथ चौड़ा, ४५ १/३ हाथ लम्बा यों ५ तरह का सामन्त-प्रवरों का मकान होना चाहिये।

राजा और युवराज के भवन के अन्तर तुल्य कञ्चुकियों (रनिवास में आने जाने वाले विश्वासपात्र व्यक्ति), वेश्याओं (जो राजा से सम्बन्ध रखने वाली हों,) और कला-कौशल के जानकारों का गृह होना चाहिये। अर्थात् इनका प्रथम २८ हाथ चौड़ा २८ १/३ हाथ लम्बा; दूसरा २६ हाथ चौड़ा, २६ १/३ हाथ लम्बा; तीसरा २४ हाथ चौड़ा, २४ १/२ हाथ लम्बा; चौथा २२ हाथ चौड़ा २२ १/२ हाथ लम्बा एवं पाँचवाँ २० हाथ चौड़ा, २० १/२ हाथ लम्बा इस प्रकार ५ तरह का मकान होता है।

अधिकारियों (गजशाला, हयशाला, गोशाला, अन्नशाला इत्यादि के अध्यक्षों) का मकान कोश (खजाना) और रति (मैथुन) गृह के बराबर होना चाहिये।

एवं युवराज और मन्त्री के अन्तर तुल्य कर्मकर और दूतों का मकान बनाना चाहिये। अर्थात् इनका भी पहला गृह २० हाथ चौड़ा ३६ १/२ हाथ लम्बा; दूसरा १८ हाथ चौड़ा, ३५ १/३ हाथ लम्बा; तीसरा १६ हाथ चौड़ा ३२ हाथ लम्बा; चौथा १४ हाथ चौड़ा, २८ २/३ हाथ लम्बा और पाँचवाँ १२ हाथ चौड़ा, २५ १/६ हाथ लम्बा इस प्रकार ५ तरह का भवन होता है ॥ ६–७ ॥

दैवज्ञपुरोहितभिषजां गृहप्रमाणम्—

चत्वारिंशद्धीना चतुश्चतुर्भिस्तु पञ्च यावदिति।
षड्भागयुता दैर्घ्यं दैवज्ञपुरोधसोर्भिषजाम् ॥ ८ ॥

४० हाथ चौड़ाई से प्रारम्भकरके ४, ४ हाथ कम ५ प्रकार का दैवज्ञ (ज्यौतिषी), पुरोहित और वैद्य इनका भवन होना चाहिये। और चौड़ाई के षष्ठांश से युत लम्बाई होनी चाहिये। अर्थात् इनका भी पहला मकान ४० हाथ चौड़ा, ४६ १/२ हाथ लम्बा; दूसरा ३६ हाथ चौड़ा, ४२ हाथ लम्बा; तीसरा ३२ हाथ चौड़ा, ३७ १/२ हाथ लम्बा; चौथा २८ हाथ चौड़ा, ३२ १/२ हाथ लम्बा और पाँचवाँ २४ हाथ चौड़ा, २८ हाथ लम्बा इस तरह ५ प्रकार का होता है ॥ ८ ॥

सर्वसाधारणपञ्चविधगृहाणि—

ज्ञातयः	हस्ताः	अं.	हस्ताः	अं.	हस्ताः	अं.	हस्ताः	अं.	हस्ताः	अं.	प्रमाण
ब्राह्मणस्य	३२	०	२८	०	२४	०	२०	०	१६	०	विस्तार
	४०	०	३५	०	३०	०	२५	०	२०	०	दैर्घ्यं
क्षत्रियस्य	३५	१६	३०	८	२६	०	२१	१६	१७	८	विस्तार
	४४	१४	३७	२०	३२	१२	२६	२२	२१	१४	दैर्घ्यं
वैश्यस्य	३७	८	३२	१६	२८	०	२३	८	१८	१६	विस्तार
	४६	१६	४०	२०	३३	०	२९	४	२३	८	दैर्घ्यं
शूद्रस्य	४०	०	३५	०	३०	०	२५	०	२०	०	विस्तार
	५०	०	४३	१८	३७	१२	३१	६	२५	०	दैर्घ्यं
राज्ञः	१०८	०	१००	०	९२	०	८४	०	७६	०	विस्तार
	१३५	०	१२५	०	११५	०	१०५	०	९५	०	दैर्घ्यं
मंत्रिणः	६०	०	५६	०	५२	०	४८	०	४४	०	विस्तार
	६७	१२	६३	०	५८	१२	५४	०	४९	१२	दैर्घ्यं
राज-महिष्याः	३०	०	२८	०	२६	०	२४	०	२२	०	विस्तार
	३३	१८	३१	१२	२९	६	२७	०	२४	१८	दैर्घ्यं
सेनापत्युः	६४	०	५८	०	५२	०	४६	०	४०	०	विस्तार
	७४	१६	६७	१६	६०	१६	५३	१६	४६	१६	दैर्घ्यं
युवरा-जस्य	८०	०	७४	०	६८	०	६२	०	५६	०	विस्तार
	१०६	१६	९८	१६	९०	१६	८२	१६	७४	१६	दैर्घ्यं
युवराजानुजानां	४०	०	३७	०	३४	०	३१	०	२८	०	विस्तार
	५३	८	४९	८	४५	८	४१	८	३७	८	दैर्घ्यं
सामन्त-स्य	४८	०	४४	०	४०	०	३६	०	३२	०	विस्तार
	६७	१२	६२	०	५६	१२	५१	०	४५	१२	दैर्घ्यं
कञ्चुकी वेश्यानाम्	२८	०	२६	०	२४	०	२२	०	२०	०	विस्तार
	२८	८	२६	८	२४	८	२२	८	२०	८	दैर्घ्यं
दूतानां	२०	०	१८	०	१६	०	१४	०	१२	०	विस्तार
	३९	४	३५	१६	३२	४	२८	१६	२५	४	दैर्घ्यं
दैवज्ञा-नाम्	४०	०	३६	०	३२	०	२८	०	२४	०	विस्तार
	४६	१६	४२	०	३७	८	३२	१६	२८	०	दैर्घ्यं

विशेषः (वास्तुराजवल्लभे ५।१)—

अथो नृपाणां भवनानि वक्ष्ये त्वेकातपत्रावनिपालकस्य ।
शतं च हस्ताष्टसमन्वितं च व्यासं गृहं चोत्तममेव तस्य ॥ ९ ॥

ये द्वापरे भूमिभुजो बभूवुस्तेषां गृहं हस्तशतं द्विहीनम् ।
तत्त्र्यंशभूमीश्वरको नृनाथोऽस्याष्टाधिकाशीतिकरं गृहं स्यात् ॥१०॥

१०८ हाथ विस्तार वाला मकान चक्रवर्ती राजाओं के लिये उत्तम होता है। द्वापर में जो युधिष्ठिरादि चक्रवर्ती राजा हुए हैं उनका गृह ९८ हाथ चौड़ा था। चक्रवर्ती राजा की जमीन की तिहाई भूमि जिसके पास हो उसको नृप कहते हैं। उसका मकान ८८ हाथ चौड़ा उत्तम श्रेणी का होता है ॥ ६–१० ॥

महामाण्डलिकलक्षणं तद्गृहमानञ्च—

ग्रामैकलक्षद्वयमस्ति यस्य प्रोक्तो महामाण्डलिको नरेन्द्रः ।
अशीतिहस्तं द्विकरेण हीनं कुर्याद् गृहं शोभनमेव तस्य ॥ ११ ॥

जिसके पास १००००० से लेकर २००००० तक गाँव हों उसको महामाण्डलिक नरेन्द्र कहते हैं। उसका मकान ७८ हाथ चौड़ा होना श्रेयस्कर होता है ॥ ११ ॥

माण्डलिकसामन्तयोर्लक्षणं तद्गृहप्रमाणञ्च—

पञ्चायुतेशो नृपमाण्डलीको भवेद् गृहं तस्य कराष्टषष्टिः ।
सामन्तमुख्यो द्वयुताधिपोसौ तद्गेहमष्टेषुकरप्रमाणम् ॥ १२ ॥

जिसके पास ५०००० गाँव हों उसको माण्डलिक कहते हैं। उसका मकान ६८ हाथ चौड़ा बनाना श्रेष्ठ होता है। एवं २०००० गाँव वाले को सामन्तमुख्य बोलते हैं। उसका मकान ५८ हाथ चौड़ा होना चाहिये ॥१२॥

सामन्तलक्षणं तद्गृहप्रमाणञ्च—

सामन्तसंज्ञोऽयुतनाथ एव तद्वेश्म पञ्चाशदपि द्विहीनम् ।
तथा तृतीयोऽपि तदर्धहीनं त्रिंशत्कराष्टाधिकमेव गेहम् ॥१३॥

१००००० गाँव वाला मनुष्य सामन्त कहा जाता है उसका मकान ४८ हाथ चौड़ा बनाना चाहिये। एवं ५००० गाँव जिसके पास हों उसको तीसरे चाल का सामन्त कहते हैं। ३८ हाथ चौड़ा मकान उसके लिये उत्तम है ॥

चतुराशिकलक्षणं तद्गेहप्रमाणञ्च—

प्रोक्तः प्रवीणैश्चतुराशिकोऽसौ ग्रामा हि यस्यैव सहस्रमेकम् ।
अष्टाधिकं विंशतिहस्तहर्म्यं सिद्ध्यै समस्तानि यथोदितानि ॥१४॥

जिस नरेश के पास १००० गाँव हो उसको चतुराशिक कहते हैं उसका मकान २८ हाथ चौड़ा बनाना श्रेयस्कर होता है ॥ १४ ॥

स्वल्पराष्ट्रलक्षणं तद्धर्म्यमानञ्च—

ग्रामाधिपा ये तु शताधिकाश्च ते स्वल्पराष्ट्रा अपि सैन्यपाश्च ।
तेषां गृहा अष्टदशाधिकैश्च करैः समाना मुनिनिर्मिताश्च ॥१५॥

जो १०० से अधिक गावों का मालिक हो उसे स्वल्पराष्ट्र या सेनापति कहते हैं। उसका मकान १८ हाथ चौड़ा बनाना उत्तम होता है ऐसा मुनियों ने कहा है ॥ १५ ॥

मन्त्रिगेहमानम्—

भूपालयार्धेन च मन्त्रिगेहं यथाधिकारेण भवन्ति हीनम् ।
व्यासाद्दशांशाधिकमेव दैर्घ्यं कुर्यादथो पञ्चमभागमिष्टम् ॥१६॥

राजा के मकान के आधे के बराबर मन्त्री का मकान बनाना उत्तम होता है। इस प्रकार यथाधिकार छोटे से छोटा मकान बनाना चाहिये। जितनी चौड़ाई जिस अधिकारी के लिये लिखो है उस के दशमांश या पञ्चमांश से युत उन गृहों की लम्बाई बनाना श्रेयस्कर होता है ॥ १६ ॥

साधारणमनुष्याणाम्—

गृहं चतुर्हस्तमितं प्रवृद्ध्या यावद् द्विरामान्तमिति प्रमाणम् ।
ततः परं भूपतिमन्दिराणि यावच्छतं चाष्टकराभियुक्तम् ॥१७॥

४ हाथ से लेकर ३२ हाथ तक चौड़ा साधारण मनुष्यों का गृह होना चाहिये। उसके ऊपर १०८ हाथ तक राजाओं का गृह होता है उसे मन्दिर कहते हैं ॥ १७ ॥

एकादिभूमिकगृहप्रमाणम्—

स्याद् भूमिरेका वसुहस्तगेहे दशाभिवृद्ध्या च पुनर्द्वितीया ।
प्रासाद एवामरभूपयोश्च हर्म्याणि लोके मुनिनोदितानि ॥१८॥

इसका अर्थ सरल है ॥ १८ ॥

एषामुच्चप्रमाणानि (वास्तुराजव० ५।४६)—

दिक्शालान्तं ह्येकशालादिगेहं ज्येष्ठा मध्या कन्यसा दक्षिणाङ्गात् ।
शाला कार्या लोकगेहे युगान्ता त्रिद्व्येकाः स्युर्भूमयस्तेषु नूनम् ॥१९॥

राजा के मन्दिर में १ शाला से लेकर १० शाला तक दक्षिण क्रमसे श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ शाला बनानी चाहिए। अन्य के घरों में १ से लेकर ४ तक शाला और दोमहला, तिमहला भवन बनाना श्रेष्ठ होता है ॥१९॥

राज्ञामुपकरणगृहाणि (वास्तुराजव ५।४०-४५)—

वामाङ्गे धनवस्त्रदेवभवनं धातुश्रियो वाजिनो
भार्यास्त्वौषधिभोजनस्य भवनं स्याद्वाटिका वामतः ।

वह्नेर्गोजलदन्तिशस्त्रसदनं स्त्रीणां तथा दक्षिणे।
स्थानं माहिषमाजमौर्णिकमिदं याम्याग्निमध्ये शुभम् ॥ २० ॥

मुख्यमहल के वामभाग में धन, वस्त्र, देवता, धातु[1] (सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, इत्यादि), लक्ष्मी, घोड़े, स्त्री (पटरानी), दवा, भोजन इन वस्तुओं का गृह और वाटिका इनका बनाना उत्तम होता है। अग्नि, गौ, जल, हाथी, शस्त्र (हथियार) और स्त्री (राजा की अन्यान्य रानियाँ) इन सभों का निवासस्थान दाहिने ओर बनाना चाहिये। भैंस, बकरा, भेड़ इनके रहने का स्थान दक्षिण और अग्निकोण के बीच में बनाना उत्तम होता है ॥

सुग्रीवे वरुणेऽसुरे गणवरे स्याद्घोटकानां गृहं
द्वास्थे युद्धगृहं च नृत्यरमणं गन्धर्वदेवाश्रितम्।
राज्ञो मातृगृहं जयेन्द्रजयके रुद्रे महिष्या गृहं
सत्ये धर्मगृहं रवौ व्ययगृहं प्रोक्तं जये श्रीगृहम् ॥ २१ ॥

सुग्रीव, वरुण, असुर, गणवर (पुष्पदन्त) इनके विभाग में अश्वशाला, द्वास्थ (वन्दी) के स्थान में युद्धगृह, गन्धर्व के भाग में नृत्यशाला, (नाचघर) और रमणगृह, जय के भाग में राजमाता का भवन, इन्द्र, जय और रुद्र इनके विभाग में राजमहिषी (राजा की प्रधानरानी), सत्य के भाग में धर्मगृह, रवि के विभाग में व्ययगृह और जय के भाग में श्री (लक्ष्मी) गृह बनाना चाहिये ॥ २१ ॥

ईशप्राच्योरन्तरे गर्दभानामुष्ट्राणां वा स्थानमेवाऽत्र कार्यम्।
धान्यागारं स्याच्च वायव्यकोणे भृशेप्येवं शम्भुकोणे शिवार्च्या ॥२२॥

ईशान और पूर्व दिशा के बीच गधों और ऊटों का घर, वायव्य कोण (या भृश के भाग) में धान्यगृह, एवं ईशान कोण में शिवालय बनाना श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥

प्राक्पश्चिमे मारुतवह्निकोणे प्रोक्ता प्रवीणैः खलु नृत्यशाला।
वर्चोगृहं रात्रिचरस्य कोणे स्यात्पश्चिमे भोजनशालिका च ॥ २३ ॥

पूर्व, पश्चिम, वायव्य और अग्निकोण में नृत्यशाला (नाच घर), नैऋत्य कोण में पाखाना और पश्चिम दिशा में भोजनालय बनाना प्रवीणों ने उत्तम बतलाया है ॥ २३ ॥

प्राक्शोभां नृपमन्दिराच्च पुरतः स्थानं तथा पौत्रकं
वामाङ्गे नृपतेस्तथाऽऽयुधधराः कृष्णा तनुत्राणि च।

---

१ द्वार प्रकरण के १७-२० श्लोक का चक्र देखिये।

छत्रं चामरतापसाः स्वगुरवस्ताम्बूलधृग्दक्षिण
गेहाधीशयदृच्छया च शयनं सर्वासु भूमीषु च ॥ २४ ॥

राजमहल के पूर्वकी ओर शोभा (मण्डप) और आगे की ओर पुत्रादिकों (राजकुमार, राजकुमारी, राजकुमार के पुत्रादिकों) का भवन, बायें ओर शस्त्रधारियों और कवचादिका घर, दाहिने ओर छत्र-चामर इत्यादि राजचिह्न धारण करने वाले, तपस्वी, गुरु और ताम्बूलवाहक इन सबों का घर और गृहाधीश की इच्छानुसार सब जगह शनयघर बनाना श्रेयस्कर होता है ॥ २४ ॥

विवस्वदाख्येऽध्ययनं प्रसिद्धं वादित्रगेहं सवितुर्विधेयम् ।
पूषाश्रिते भोजनमन्दिरं च महानसं वह्निदिशाविभागे ॥ २५ ॥

विवस्वान् के भाग में विद्याभ्यास-गृह, सविता के अंश में वाद्यगृह, पूषा के भाग में भोजनगृह और अग्नि के दिशा में रसोईघर बनाना चाहिये ॥ २५ ॥

माहेन्द्राख्ये गोपुरं द्वित्रिभूमं भानोः संख्या तस्य मध्ये विधेया ।
उक्तानुक्तं मन्दिराणां निवेशे त्वष्ट्रा कार्यं चाज्ञया भूपतीनाम् ॥२६॥

माहेन्द्र के भाग में दोमहला-तीमहला और सूर्य की संख्यासे युक्त सदर फाटक बनावे। कहे न कहे सब प्रकार के भवन राजा की आज्ञा से कारीगरों को बनाना चाहिये ॥ २६ ॥

राज्ञां गजगृहम् (वास्तुराजव० ६।२ –२६)—

सिंहद्वारं पूर्वमानेन कार्यं द्वित्र्येका वा मालिका स्तम्भशीर्षे ।
स्यातां मध्ये तोटकौ रक्षणार्थं तुल्यौ भागेनाधिकौ वापि सार्धौ ॥२७॥

भागे दक्षिणवामके च करिणां शाला हरेद्वामतः
कर्तव्या सुदृढोन्नता च कलशैर्घण्टादिभिर्भूषिता ।
सङ्कीर्णो रसतो नगैर्निगदितो मन्दो मृगश्चाष्टभिः
सर्वैर्भूत्तमभद्रजातिरुदितो नन्दैः करैरुच्छ्रितः ॥ २८ ॥

राजाओं को सिंहदरवाजे (सदर फाटक) पर स्तम्भ के शिरा पर ३, २ या १ मालिका (मंजिला) बनवाना चाहिये। उसके बीच में दो तोटक (अर्गलाकाष्ठ) लगाना चाहिये। ये दोनों मोटाई और चौड़ाई में बराबर हों अथवा सवाई या ड्योढ़ा मोटे हों या सब चाल के बनवाये जा सकते हैं

सिंहदरवाजे के दाहिने, बायें या दोनों ओर खूब पुष्ट (मजबूत), ऊँची और कलश-घण्टादि से सुशोभित गजशाला बनानी चाहिये।

९ हाथ ऊँचा हाथी संकीर्ण जाति का, ७ हाथ ऊँचा हाथी मन्दजातिका, ८ हाथ ऊँचा मृगजातिका और सबसे उत्तम ९ हाथ ऊँचा हाथी भद्रजातिका कहा जाता है। (हाथियों के विशेष लक्षण के लिये बृहत्सं० का ६७ अध्याय देखें) ॥ २७-२८ ॥

अश्वगृहनिर्माणम् (तत्रैव ६।२४-२५)—

तुरङ्गमाणां गृहवामभागे शाला चतुष्पष्टिकरा विधेया ।
शतार्धतो मध्यमिका च दैर्घ्ये कनीयसी तैर्दशभिर्विहीना ॥ २९ ॥
व्यासे च ज्येष्ठा दशहस्तमाना त्रयोदशैकादशभिः क्रमेण ।
तद्बाह्यभित्तिश्च करप्रमाणा पञ्चार्धपञ्चाब्धिकरोदयं स्यात् ॥ ३० ॥

घर के बायें ओर अश्वशाला ६४ हाथ लम्बी १५ हाथ चौड़ी बनाना उत्तम होता है। एवं ५० हाथ लम्बी १३ हाथ चौड़ी अश्वशाला मध्यमश्रेणी की होती है। और ४० हाथ लम्बी ११ हाथ चौड़ी अश्वशाला कनिष्ठा होती है। इनके बाहर की भित्ति की ऊँचाई क्रम से ५½, ५ और ४ हाथ बनानी चाहिये ॥ २९-३० ॥

अश्वस्थितिः (तत्रैव ६।२६)—

तेजोहानिममी हया विदधते पूर्वापरास्यं नृणां
ते याम्योत्तरतो मुखा हि सततं कीर्तिर्यशोधान्यकम् ।
कर्तव्यो हिषणं प्रतीह कलशं स्थानं द्विहस्तोदयं
तस्यास्तोरणमुच्छ्रितं च मुनिभिर्हस्तैः सुशोभान्वितम् ॥ ३१ ॥

घोड़ों को पूर्व या पश्चिम की ओर मुख कर के बाँधने से तेज की हानि होती है। यदि उत्तर या दक्षिण ओर मुख करके बाँधे जायँ तो कीर्ति (यश), धान्य इत्यादि की वृद्धि होती है। घोड़ों के खाने की जगह को हिषण कहते हैं। उसके ऊपर कलश बनाना चाहिये। घोड़ों के बाँधने की जगह को स्थान कहते हैं। आगे की ओर दो हाथ ऊँचा स्थान बनाना चाहिए। और उसमें ७ हाथ ऊँचा शोभायुक्त तोरण बनाना श्रेयस्कर होता है ॥ ३१ ॥

प्रसङ्गादश्वलक्षणम (६।२७)—

षष्ट्या साधुहयोऽङ्गुलैर्निगदितो वेदाङ्गुलेनाधिकः
श्रीवत्सस्त्वहिलाद एव च मनोहारी द्विसप्ताङ्गुलः ।
राग द्व्यङ्गुलकैस्तु वाजिविजयोऽशीतया तथा वैभवः
शान्ताख्यास्तु युगाष्टमात्र उदये मानं हरेः सप्तधा ॥ ३२ ॥

६० अंगुल ऊँचे घोड़े को साधु, ६४ अंगुल ऊँचे घोड़े को श्रीवत्स, ६८ अंगुल ऊँचे घोड़े को अहिलाद, ७२ अंगुल ऊँचे घोड़े को मनोहारी, ७६

अंगुल ऊँचे घोड़े को विजय, ८० अंगुल ऊँचे घोड़े को वैभव और ८४ अंगुल ऊँचे घोड़े को शान्त कहते हैं। इस प्रकार ७ तरह के घोड़े होते हैं (घोड़े के विशेषलक्षण के लिये बृहत्सं० का ६६ अ० देखें ॥ ३२ ॥

चरणिविचारः—

स्वामिहस्तप्रमाणेन दीर्घविस्तारसंयुतम् ।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं शेषे चरणिरुच्यते ॥ ३३ ॥
पशुहानिः पशो रोगः पशुलाभः पशुक्षयः ।
पशुनाशः पशोर्वृद्धिः पशुभेदो बहुः पशुः ॥ ३४ ॥

स्वामी के हाथ से जमीन के लम्बाई–चौड़ाई की संख्या को जोड़ के ८ का भाग देने से १ शेष बचे तो पशुओं की हानि, २ शेष बचे तो पशुओं को रोग, ३ शेष बचे तो पशुओं का लाभ, ४ शेष बचे तो पशुओं का क्षय, ५ शेष बचे तो पशुओं का नाश, ६ शेष बचे तो पशुओं की वृद्धि, ७ शेष बचे तो पशुओं में भेद और ८ शेष बचे तो पशुओं की बढ़ती होती है ॥

इस विधि के अतिरिक्त इसमें भी आय, वार इत्यादि सब विषयों का विचार पाँचवें प्रकरण में लिखी विधि के अनुसार कर लेना चाहिये। कुछ लोग यहाँ 'संयुतं' का अर्थ गुणा करना बतलाते हैं किन्तु ऐसा अर्थ एकदम शास्त्र-विरुद्ध है।

द्वितीयप्रकारेण (बृहद्दैवज्ञर० ८६।४२१)—

स्वनामाक्षराणां युतं दैर्घ्यव्योम-
प्रमाणैः स्वहस्ताद्गजैर्भक्तशेषे ।
रसोऽग्निर्गजो लभदाः स्युः पशूनां
शशी–युग्म–वेदेषु–सप्ताऽशुभं स्यात् ॥ ३५ ॥

स्वामी के हाथ से भूमि की लम्बाई–चौड़ाई की संख्या को जोड़ के उस योग में स्वामी के प्रसिद्ध नामाक्षर संख्या को जोड़ देना। उस योग में ८ का भाग देने पर ६, ३, ८, शेष बचे तो शुभ और १, २, ४, ५, ७, शेष बचे तो अशुभ जाने ॥ ३५ ॥

यह श्लोक व्याकरण की कई अशुद्धियों से युक्त है अतः मैंने इसको इस प्रकार सुधार दिया है—

स्वनामाक्षरैः सयुतं दैर्घ्यव्योमप्रमाणैक्यकं नागसंख्यैर्विभक्तम् ।
रसेभत्रिशेषेषु लाभः पशूनां विनाशो द्विशैलेन्दुवेदेषु च स्यात ॥ इति ।

वास्तुपूजनं क्व विधेयम् (वास्तुराजव० १।२७)—

भवनपुरसुराणां सूत्रणे पूर्वमुक्तः
कथित इह पृथिव्याः शोधने च द्वितीयः ।

तदनु मुखनिवेशे स्तम्भसंरोपणे स्याद्

भवनविशनकाले पञ्चधा वास्तुयज्ञः ॥ ३६ ॥

मकान, पुर और देवालय इनके सूत्रपात के समय, भूमिशोधन, द्वार-स्थापन, शिलान्यास और प्रवेश इन ५ कर्मों में वास्तु का पूजन करना चाहिये[1] ॥ ३६ ॥

कुत्र कीदृशः वास्तुः पूज्यः (वास्तुराजव० २।४)

ग्रामे भूपतिमन्दिरे च नगरे पूज्यश्चतुष्षष्टिकै-

रेकाशीतिपदैः समस्तभवने जीर्णे नवाब्ध्यंशकैः ।

प्रासादे तु शतांशकैस्तु सकले पूज्यस्तथा मण्डपे

कूपे षण्णवचन्द्रभागसहिते वाप्यां तडागे वने ॥ ३७ ॥

ग्राम, राजभवन (किला), और नगर इनके निर्माण के समय ६४ पद के वास्तु की; सब प्रकार के गृहों में ८१ पद के वास्तु की; जीर्णोद्धार में ४६ पदके वास्तु की; प्रासाद और मण्डप में १०० पदके वास्तु की और कूआँ, वापी, तडाग इत्यादि में १६६ पद के वास्तु की पूजा करनी चाहिये ॥ ३७ ॥

वास्तुपूजनप्रकारः (पी० धा० १३।३)—

निर्माणे मन्दिराणां च प्रवेशे त्रिविधेऽपि च ।

वास्तुपूजा च कर्तव्या यस्मात्तां कथयाम्यतः ॥ ३८ ॥

गृहमध्ये हस्तमात्रं समन्तात्तण्डुलोपरि ।

एकाशीतिपदं कार्यं तिलैस्तुल्यं सुशोभनम् ॥ ३९ ॥

एकद्वित्रिपदा पञ्च चत्वारिंशत्सुरार्चिताः ।

द्वात्रिंशद्बाह्यतो वक्ष्यमाणाश्चान्तस्त्रयोदश ॥ ४० ॥

भवननिर्माण के समय और तीनों प्रकार के प्रवेश के समय वास्तु पूजन करना आवश्यक है अतः उसका विधान कहता हूं । गृह के बीच एक हाथ लम्बा चौड़ा चावल के ऊपर ८१ पद का सुशोभित वास्तु चक्र बनावे । उसमें १, २, ३ पद के ४५ देवता होते हैं । बाहर की ओर ३२ और भीतर की ओर १३ सब मिल कर ४५ देवता ८१ पद वास्तु के अन्दर होते हैं ॥

---

१. हेमाद्रि में मत्स्यपुराण का वचन भी ऐसा ही है—

एतद्वास्तूपशमनं कृत्वा कर्म समाचरेत् । प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे परिवर्तने ॥

पुरवेश्मप्रवेशे च सर्वदोषोपशान्तये । वास्तूपशमनं कृत्वा ततः सूत्रेण वेष्टयेत् ॥

रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकम् । नृत्यमङ्गलवाद्यैश्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥

अनेन विधिना यस्तु प्रतिसंवत्सरं बुधः । गृहे वायतने कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात् ॥ इति ॥

तेषां स्थानानि नामानि वक्ष्यामीश्वरकोणतः ।
तत्राग्निः शम्भुकोणस्थस्त्वसौ चैकपदेश्वरः ॥ ४१ ॥
तस्माद् द्वितीयः पर्जन्यश्चासावेकपदेश्वरः ।
जयन्तेन्द्रार्कसत्याख्याः भृशश्च द्विपदेश्वराः ॥ ४२ ॥
आकाशवायू परतः क्रमादेकपदेश्वरौ ।
एवं प्राच्यां नव ज्ञात्वा त्वेवमेवान्यदिक्षु च ॥ ४३ ॥

उनके स्थानों और नामों को ईशान कोण से आरम्भ करके क्रमसे कहते हैं। पहला ईशान कोण में अग्निका स्थान एक पद (एक कोठे) का दूसरा पर्जन्य का स्थान भी एक पद का होता है। उसके बाद तीसरेसे लेकर ७ वें पद तक क्रमसे जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य और भृश के स्थान दो २ पद के होते हैं। फिर उसके बाद अग्निकोण में ८ वाँ आकाश का और ९ वाँ वायु का स्थान एक एक पद का होता है। इस प्रकार पूर्व दिशा में देवताओं का स्थान होता है। एवं अन्य दिशाओं का भी जानना चहिये ॥४१–४३॥

आद्यश्चान्त्यावेकपदौ द्विपदाः पञ्चमध्यगाः ।
पूषाद्यष्टौ यमान्ताः स्युरमरा याम्यभागगाः ॥ ४४ ॥

आदिम और अन्त के दो (अर्थात् दूसरा, आठवाँ और नवाँ) ये ३ एक-एक पद के तथा बीच के ५ दो-दो पद के पूषा से लेकर यम तक के ८ स्थान (दूसरा पूषा का, तीसरा वितथ का, चौथा बृहत्क्षत का, ५ वाँ यम का, छठाँ गन्धर्व का, ७ वाँ भृङ्गराज का, ८ वाँ मृग का और ९ वाँ यम का) दक्षिण दिशा में होते हैं ॥ ४४ ॥

आद्यश्चान्त्यावेकपदौ द्विपदाः पञ्चमध्यगाः ।
अष्टौ पितृगणाधीशाः पापान्ताः पश्चिमेश्वराः ॥ ४५ ॥

आदिम और अन्त्य के दो (अर्थात् दूसरा, ८ वाँ और ९ वाँ) ये ३ एक २ पद के तथा बीच के ५ दो दो पद के पितृगणेश से आरम्भ कर के पाप तक के ८ स्थान पश्चिम दिशा में होते हैं ॥ ४५ ॥

आद्यन्तौ द्वावेकपदौ द्विपदाः पञ्चमध्यगाः ।
रोगादिदित्यन्तसुराः सप्त सौम्यदिशि क्रमात् ॥ ४६ ॥

एवं आदिम और अन्तिम (अर्थात् दूसरा और ८ वाँ) ये दो एक-एक पद के तथा बीच के ५ दो-दो पद के रोग से लेकर दिति पर्यन्त के ७ स्थान उत्तर दिशा में होते हैं ॥ ४६ ॥

तत्राधस्थचतुष्कोणेष्वीशानादिषु च क्रमात् ।
आपः सवित्रो विजयरुद्राश्चैकपदेश्वराः ॥ ४७ ॥

उसके भीतर ईशानादि से ४ कोना में आप, सावित्र, विजय और रुद्र नाम के एक एक पद के ४ देवता होते हैं ॥ ४७ ॥

मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्येशानादिकोणगाः ।
आपवत्सोऽथ सविता विबुधाधिपसंज्ञकः ॥ ४८ ॥
राजयक्ष्मा च चत्वारः सुराश्चैकपदेश्वराः ।

बीच में ९ पद का ब्रह्मा का स्थान होता है। ब्रह्मासे ईशानादि कोणों में आपवत्स, सविता, विबुधाधिप (इन्द्र) और राजयक्ष्मा नाम के ४ देवताओं का स्थान एक-एक पद का होता है ॥ ४८½ ॥

ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु त्रिपदाश्चामरा अमी ॥ ४९ ॥
अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पितृधरः क्रमात् ।
स्वस्वस्थानेषु देवेषु स्थापितेष्वीदृशं भवेत् ॥ ५० ॥

ब्रह्मा के स्थान से पूर्वादि दिशाओं में क्रमसे ३, ३ पद के अर्यमा, विवस्वान् , मित्र और पितृधर नाम के ४ देवता का स्थान होता है। अपने २ स्थानों में देवताओं को स्थापन कर देने से आगे लिखा क्रम हो जाता है (८२ पृ० देखें) ॥ ४९–५० ॥

कोणेषु पञ्च पञ्चैव चतुर्थैकपदाः सुराः ।
प्रागादिदिक्षु द्विपदाः पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ ५१ ॥
ब्राह्मणः पूर्वतो दिक्षु त्रिपदाः स्युः समीपगाः ।
हिरण्यरेताः पर्जन्यो जयन्तः पाकशासनः ॥ ५२ ॥
सूर्यः सत्यो भृशाकाशौ वायुः पूषा च वैतथः ।
बृहत्क्षतः पितृपतिर्गन्धर्वो भृङ्गराजकः ॥ ५३ ॥
मृगः पितृगणाधीशस्तथा दौवारिकाह्वयः ।
सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च जलाधीशो निशाचरः ॥ ५४ ॥
शोषः पापश्च रोगोहिर्मुखो भल्लाट एव च ।
सोमसर्पौ दित्यदिती द्वात्रिंशदमराः स्मृताः ॥ ५५ ॥
आपश्चैव सावित्रश्च जयो रुद्रस्तथैव च ।
मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्थौ तस्य समीपगः ॥ ५६ ॥
प्राच्यां ह्यन्तरिता देवाः परितो ब्रह्मणः स्मृताः ।
अर्यमा सविता चैव विवस्वान् विबुधाधिपः ॥ ५७ ॥

मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ।
आपवत्सोऽष्टमः पञ्चचत्वारिंशत्सुरोत्तमाः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार ४ कोनों में पाँच, पाँच देवता एक-एक पद के तथा पूर्वादिक ४ दिशाओं में पांच-पांच देवता दो-दो पद के तथा ब्रह्मा के समीप पूर्वादिक दिशाओं में तीन-तीन पदों के ४ देवता होते हैं।

पूर्वादि दिशाओं में क्रमसे बाहर की ओर अग्नि, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश, आकाश, वायु, पूषा, वैतथ (या वितथ), बृहत्क्षत, पितृपति (यमराज), गन्धर्व, भृङ्गराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, राक्षस, शोष, पाप, रोग, अहिमुख, भल्लाट, सोम, सर्प, दिति, अदिति ये ३२ देवता बाहर की ओर होते हैं।

आप, सावित्र, जय, रुद्र, बीच में ६ पद के ब्रह्मा, एवं ब्रह्मा के पूर्वादिक दिशा-विदिशाओं में क्रमसे अर्यमा, सविता, विवस्वान् , विबुधाधिप (इन्द्र), मित्र, राजयक्ष्मा, पितृधर और आठवाँ आपवत्स यों १३ देवता भीतरी भाग में होते हैं। इस प्रकार ४५ देवता ८१ पदके भीतर होते हैं ॥

ज्ञात्वैवं स्थाननामानि ब्रह्मणा सहितान्न्यसेत् ।
वास्तुज्ञो वास्तुमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ ५९ ॥
प्रणवेनार्चयेद्वापि अथवा स्वस्वनामभिः ।
शुक्लवस्त्रयुगं दद्याद् धूपदीपफलैः सह ॥ ६० ॥
अपूपैर्भूरिनैवेद्यैर्वाद्यैः सह समर्चयेत् ।
ताम्बूलं च ततो दद्याद्देवेभ्यश्च पृथक्पृथक् ॥ ६१ ॥

इस प्रकार वास्तुविद्या का विद्वान् उक्त देवताओं के स्थान और नाम को जानकर ब्रह्मा सहित सब देवों को अपने २ स्थान पर न्यास करे। और गन्ध, अक्षत, पुष्प इत्यादि द्वारा षोडशोपचार से वास्तुमन्त्रों से वा प्रणव (ओङ्कार) से अथवा नाम मन्त्रों से पूजा करे, दो श्वेत वस्त्र चढ़ावे, धूप, दीप, फल, पूआ इत्यादि नाना प्रकार का नैवेद्य, ताम्बूल इत्यादि से प्रत्येक देवों का अलग २ पूजन करे ॥ ५६–६१ ॥

दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं कर्ता प्रार्थयेद्वास्तुपूरुषम् ।
वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूमिशय्यारत प्रभो ॥ ६२ ॥
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा ।
इति प्रार्थ्य ततो दद्याद्दक्षिणामर्चकाय च ॥ ६३ ॥
विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ।
एवं यः कुरुते सम्यग्वास्तुपूजां प्रयत्नतः ॥ ६४ ॥

आरोग्यं पुत्रपौत्रादि धनधान्यं लभेन्नरः।
वास्तुपूजामकृत्वा यः प्रविशेन्नवमन्दिरे।
रोगान्नानाविधान् क्लेशानश्नुते सर्वसंकटम् ॥ ६५ ॥

इन श्लोकों का अर्थ सरल है ॥ ६२–६५ ॥

ग्रहशान्तिसहिता वास्तुशान्तिः कार्या—

कार्यारम्भेषु सर्वेषु नववेश्मप्रवेशने।
ग्रहशान्ति विधानेन कृत्वाऽभीष्टं समश्नुते ॥ ६६ ॥

मकान इत्यादि सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यों के आरम्भ के समय तथा गृहप्रवेश के समय विधिपूर्वक ग्रहशान्ति करके प्रवेश करने से अभीष्ट कार्यों की सिद्धि मिलती है ॥ ६६ ॥

इन वचनों से स्पष्ट है कि ग्रहशान्ति के सहित वास्तुशान्ति करनी चाहिए। इसका क्रम यह है कि ग्रहों का पूजन वास्तुदेवताओं के पूजन से पूर्व करना चाहिये तथा ग्रहहवन भी वास्तुदेवहवन के पूर्व ही होना चाहिये। क्योंकि गणपतिपूजन, कलशस्थापनपूर्वक पुण्याहवाचन इत्यादि की नाईं साधारण कर्म विशेष कर्म से पूर्व ही करना उचित होता है। और विश्वकर्मप्रकाश में लिखा भी है—

ततो ग्रहार्चनं वास्तुपूजाविधिमतः परम्।

और भी—

होमं कुर्याद् ग्रहाणां तु स्वशाखोक्तविधानतः। वास्तुहोमं ततः कुर्यात्······॥ इति ॥

प्रसङ्गाद्वास्तुशान्ति की अनुक्रमणिका—

शान्ति मङ्गल पाठ
प्रधान संकल्प
गणेशाम्बिकापूजन
कलशस्थापन
पुण्याहवाचन
मातृकापूजन
वसोर्धारापूजन
आयुष्य मन्त्र जप
नान्दीश्राद्ध
आचार्य ब्रह्मा होतादिका वरण
पौराणिकादिकों का वरण
(मण्डप में जापक द्वारपाल इत्यादि का वरण और मण्डप·पूजनादि)
अग्निस्थापन
ग्रह·स्थापन पूजन
कोणों में कील·स्थापन
कील पर बलिदान (माष दधि)
वास्तु·वेदी पर रेखा-पूजन
शिख्यादि ४५ देवों का पूजन
दश दिक्पालों का पूजन
वास्तु वेदी के मध्य में कलश पर वास्तु·प्रतिमा का पूजन
कुशकण्डिका
'इह रति' इत्यादि ६ मन्त्रों से आहुति
ब्राह्मणान्वारब्ध
आघार आज्यभाग होम 'अग्निमिन्द्र' इत्यादि से ६ आहुति
ग्रह होम (८ या २८ आहुति)
वास्तु·पूजन संकल्प
शिख्यादि ४५ देवों का नाम मन्त्र या वैदिक, पौराणिक मन्त्र से होम (८ या २८)
चरक्यादि का होम
वास्तोरपते इन ५ मन्त्रों से ५ बिल्व का होम
स्विष्टकृत् ९ आहुति
शिख्यादि बलि
चरक्यादि बलि

चरक्यादि ४ का पूजन	दिक्पाल बलि
स्कन्दादि ४ का पूजन	क्षेत्रपाल बलि
सार्वभौतिक बलि	जल पूरण
ब्रह्मा के पद पर पृथिवी की पूजा	मृत्पेटिका में सप्तधान्य, दधि, सेवार,
त्रिसूत्री से गृहवेष्टन	पुष्प, लावा इत्यादि सहित ब्रह्म
दुग्धजलाविच्छिन्न जलधारा	स्थान में पूजित वास्तुप्रतिमा
द्वार·पूजन	का गढ्ढे में स्थापन
लग्नदोष·शान्त्यर्थं दैवज्ञ को दान	गन्धादि से १६ उपचार से पूजन
सजलकलश सब्राह्मण गृहप्रवेश	प्रार्थना
प्रविष्ट होकर दीपस्थान पर दीप	मृत्पेटिका से आच्छादन
वारना	मिट्टी से गर्तपूरण
चुल्ही पर धर्मराज का पूजन	गर्तपूरणानन्तर गोमयादि से लेपन
संमार्जन·स्थानपर ज्येष्ठा का पूजन	पूर्णाहुति
जलस्थान पर वरुण का पूजन	संस्रवप्राशन
जाँते पर सुभगा का पूजन	मार्जन
ओखरी पर रौद्रपीठ का पूजन	पूर्णपात्र दान
शय्या पर काम का पूजन	आचार्यादिकों को दक्षिणादान
गृह मध्य में सर्व देव का पूजन	भूयसी·संकल्प
पशुस्थान पर पशुपति का पूजन	ब्राह्मणभोजन·संकल्प
ईशान से ८ वें आकाश पद में	(मण्डप·संकल्प)
जानुमात्र गड्ढे में सप्तधान्य·क्षेपण	सपरिवार यजमान अभिषेक
दधि क्षेपण	विसर्जन
नवीन कलश·स्थापन	तिलकाशीर्वाद

शिख्यादि देवों के प्रसन्नार्थं कौन २ वस्तु अर्पण करना चाहिये इस का विधान भी वास्तुराजवल्लभ (३।२८–३८) में लिखा है।

वास्तुपूजनावश्यकत्वम्—

यः पूजयेद्वास्तुमनन्यभक्त्या न तस्य दुःखं भवतीह किञ्चित्।
जीवत्यसौ वर्षशतं सुखेन स्वर्गे नरस्तिष्ठति कल्पमेकम् ॥६७॥

जो मनुष्य अनन्य भक्ति से विधिपूर्वक वास्तु का पूजन करता है उस को (मकान-सम्बन्धी) कोई दुःख नहीं होते और वह १०० वर्ष तक जीता है एवं १ कल्प (४३२०००००० सौर वर्ष) तक स्वर्गवास करता है ॥६७॥

वास्तुपूजाऽकरणे दोषः—

वास्तुपूजाविहीनश्च सूत्रधारैर्विना तथा।
सप्तजन्म भवेत्कुष्ठी स कर्ता नरकं व्रजेत् ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य वास्तुपूजन और सूत्रधार इत्यादि का सत्कार किये बिना ही गृहप्रवेश करता है वह ७ जन्म तक कोढ़ी और नर्कभागी होता है ॥६८॥

इति परिशिष्टप्रकरणम् ॥ ११ ॥



जलाशयप्रकरणम् १२

तत्र तावज्जलाशयप्रशंसा (विष्णुधर्मोत्तरे)—

उदकेन विना वृत्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा ।
तस्माज्जलाशयाः कार्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥ १ ॥
अग्निष्टोमसमः कूपः सोऽश्वमेधसमो मरौ ।
कूपः प्रवृत्तपानीयः सर्वं हरति दुष्कृतम् ॥ २ ॥
कूपकृत्स्वर्गमासाद्य सर्वान्भोगानुपाश्नुते ।
तत्रापि भोगनैपुण्यं स्थानाभ्यासात्प्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥

इहलोक और परलोक दोनों जगह बिना जल के जीवन निर्वाह नहीं हो सकता इसलिये विद्वान् पुरुप को जलाशय बनवाना चाहिये । एक कूप बनवा देने से अग्निष्टोम के तुल्य फल होता है । वही (कूप) यदि मरुभूमि में बनाया जाय तो अश्वमेध यज्ञ के बराबर फल होता है । बनाये हुए कूप में यदि पुष्कल जल रहे जिससे लोगों की तृप्ति होती रहे तो बनवाने वाले के सम्पूर्ण दुष्कर्म नष्ट हो जाते हैं । कूप बनाने वाला स्वर्ग में जाकर नाना प्रकार के सुखों को भोगता है । यदि वह कूप निर्जल देश में हो तो बहुत काल तक बनवाने वाले को स्वर्ग में रहना पड़ता है ॥ १-३ ॥

फलं नन्दिपुराणे (परिशिष्टदी०)—

यो वापीमथवा कूपं देशे तोयविवर्जिते ।
खानयेत्स नरो याति स्वर्गे प्रेत्य शतं समाः ॥ ४ ॥

इसका अथ सरल है ॥ ४ ॥

वास्तुराजवल्लभे च (४।३५)—

विधारितं जीवनमेव येन तद्गोपदेकेन समं पृथिव्याम् ।
स षष्टिसंख्यं च सहस्रवर्षं स्वर्लोकसौख्यान्यखिलानि भुङ्क्ते ॥५॥

प्राणीमात्र के जीवन रूप जल के आश्रय को पृथिवी पर गोपद के बराबर भी बनादेने वाला पुरुष ६०००० वर्ष तक स्वर्ग के सम्पूर्ण सुखों को भोगता है ॥ ५ ॥

अतस्तदावश्यकत्वम् (तत्रैव ४।२६)—

नीराश्रयः पुण्यवता विधेयो मध्ये पुरस्यापि तथैव बाह्ये ।
वाप्यश्चतस्रोऽपि दशैव कूपाश्चत्वारि कुण्डानि च षट् तडागाः ॥६॥

पुण्यवान् पुरुषों द्वारा पुरके मध्य में या बाहर ४ वापियाँ १० कूयें, ४ कुण्ड और ६ तालाब बनवाना चाहिये ॥ ६ ॥

जलस्यानेकवर्णत्वम् (बृहत्सं० ५३।१-२)

धर्म्यं यशस्यञ्च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः ।
पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ॥ ७ ॥
एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात् ।
नानारसत्वं बहुवर्णताञ्च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव ॥ ८ ॥

धर्म और यश को देनेवाले दकार्गल को कहता हूँ जिस (दकार्गल) के द्वारा (भूमिस्थ) जल की प्राप्ति होती है। पुरुष के भीतर भी जल की नीची-ऊँची शिरायें होती हैं। आकाश से गिरा हुआ एक ही वर्ण (रङ्ग) और एक ही रस (स्वाद) का जल नाना प्रकार की जमीन के संयोग से नानातरह (नाना वर्ण, नाना स्वाद, नाना गुण का हो जाता है। अतः पृथिवी के गुण के अनुसार वहाँ के जल की परीक्षा करनी चाहिये। ७-८॥

जलपरीक्षा (तत्रैव ५३।१०३)—

या मौञ्जिकैः काशकुशैश्च युक्ता नीला च मृद्वत्र सशर्करा च ।
तस्यां प्रभूतं सुरसं च तोयं कृष्णाऽथवा यत्र च रक्तमृद्वा ॥९॥

जो भूमि मूज, कास, कुश इत्यादि से युक्त, नीलवर्ण, मृदु (कोमल) और वालुका युक्त हो या काली अथवा लालवर्ण की हो उस जमीन में सुरस (स्वादिष्ट) और अधिक जल होता है ॥ ६ ॥

सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति ।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टमिष्टं पयो नीलवसुन्धरायाम् ॥ १० ॥

शर्करायुक्त (रेतीली) और ताम्र (लाल) वर्ण की भूमि के अन्दर कषाय (कटु) रस का जल, कपिल (पिङ्गल) वर्ण की पृथिवी के नीचे खारा जल, धूसर रंग की जमीन के नीचे नुनखार (नमकीन) जल और नीलेरङ्ग वाली जमीन के भीतर मीठा जल होता है ॥ १० ॥

शाकाश्वकर्णार्जुनबिल्वसर्जश्रीपर्ण्यरिष्टाधवशिंशपाश्च ।
छिद्रैश्च पर्णैर्द्रुमगुल्मवल्ल्यो रूक्षाश्च दूरेऽम्बु निवेदयन्ति ॥ ११ ॥

शाक (सागोन), अश्वकर्ण, अर्जुन, बिल्व (बेल), सर्ज, श्रीपर्णी, अरिष्ट (नीम्ब), धव, सीसो और जिसके पत्तों में छेद हो जाया करे। गुल्म और लतायें जहाँ पैदा हों वहाँ बहुत दूर (बहुत नीचे) जल होता है ॥ ११ ॥

सूर्याग्निभस्मोष्ट्रखरानुवर्णा या निर्जला सा वसुधा प्रदिष्टा ।
रक्ताङ्कुरा क्षीरयुता करीरा रक्ता धरा चेज्जलमश्मनोधः ॥१२॥

सूर्य अग्नि, भस्म (राख), ऊँट, गधा, इनके रंग वाली भूमि निर्जल होती है। जहाँ लाल पल्लव और दुधार करील वृक्ष हो और लाल रंग की जमीन हो वहाँ पाषाण के नीचे जल रहता है ॥ १२ ॥

वैदूर्यमुद्गाम्बुदमेचकाभा पाकोन्मुखोदुम्बरमेचका वा ।
भृङ्गाञ्जनाभा कपिलाऽथवा या ज्ञेया शिला भूरि समीपतोया ॥१३॥

वैदूर्य (लहसुनिया), मूंग, मेघ (बादल) मेचक सदृश रंग वाली वा अधपकी गूलर के समान रंग वाली वा भौरे और काजल के समान वर्णवाली वा कपिल वर्णवाली शिला पड़े तो बहुत करीब जल निकलता है ॥

पारावतक्षौद्रघृतोपमा या क्षौमस्य वस्त्रस्य च तुल्यवर्णा ।
या सोमवल्ल्याश्च समानरूपा साप्याशु तोयं कुरुतेऽक्षयञ्च ॥१४॥

पारावत (कबूतर पक्षी), शहद और घी के वर्णवाली तथा रेशमी वस्त्र के समान वर्ण वाली और सोमलता के समानरूप वाली शिला जल्दी और अक्षय (कभी कम न होने वाला) जल देती है ॥ १४ ॥

चन्द्रातपस्फटिकमौलिकहेमरूपा
याश्चेन्द्रनीलमणिहिङ्गुलकाञ्जनाभाः ।
सूर्योदयांशुहरितालनिभाश्च याः स्यु-
स्ताः शोभना मुनिवचोऽत्र च वृत्तमेतत् ॥ १५ ॥

चन्द्रमा के किरण के समान, स्फटिकमणि के सदृश, मोती, सोना इन के समान, इन्द्रनीलमणि (नीलम), हिङ्गुल (हींग), कज्जल इनके सदृश, सूर्योदय समय की सूर्यकिरण, हरिताल के तुल्य वर्णवाली शिला शोभन होती है। ऐसा मुनियों ने कहा है ॥ १५ ॥

एता अभेद्याश्च शिलाः शिवाश्च यक्षैश्च नागैश्च सदाभिजुष्टाः ।
येषां च राष्ट्रेषु भवन्ति राज्ञां तेषामवृष्टिर्न भवेत्कदाचित् ॥ १६ ॥

ये पूर्वोक्त (१५ श्लोकोक्त) शिलायें अभेद्य (नहीं तोड़ने योग्य) हैं क्योंकि ये कल्याण करने वाली, यक्ष, नाग इत्यादिकों से सेवित होती हैं। जिस राजा के राज्य में ऐसी शिलायें रहती हैं, उसके राज्य में कभी अनावृष्टिजन्य कष्ट नहीं होता ॥ १६ ॥

शिलाविदारणप्रयोगः (तत्रैव ५३।११२–११३)—

भेदं यदा नैति शिला तदानीं पालाशकाष्ठैः सहतिन्दुकानाम् ।
प्रज्वालयित्वाऽनलमग्निवर्णा सुधाम्बुसिक्ता प्रविदारमेति ॥ १७ ॥

आवश्यकता पड़ने पर यदि शिला शस्त्रादि से न टूटती हो तो पलाश और तेंदू की लकड़ी को जला के खूब प्रज्वलित करे। जब वह शिला लाल

हो जाय तो उसे चूने के पानी से ठंढा करे। ऐसा करने पर वह शिला अपने आप फट जाती है ॥ १७ ॥

तोयं शृतं मोक्षकभस्मना वा यत्सप्तकृत्वः परिसेचनं तत् ।
कार्यं शरक्षारयुतं शिलायाः प्रस्फोटनं वह्निवितापितायाः ॥ १८ ॥

मोक्षक (मरुवक=जमीरीनीबू) वृक्ष के भस्म से अथवा शरनामक तृण के भस्म से गरम किये गये जल से ७ बार शिला का सेचन करने से शिला का विदारण होता है। (विशेष प्रयोगों के लिये बृ० सं० देखें) ॥१८॥

ग्रामस्य पुरस्य वा दिक्षु कूपे फलानि (बृहत्सं० ५३।९७-९८)—

आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवेत्कूपः ।
नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः ॥ १९ ॥
नैर्ऋतकोणे बालक्षयं च वनितां च वायव्ये ।
दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषासु शुभावहाः कूपाः ॥ २० ॥

ग्राम या पुर के (उपलक्षण से घर के) आग्नेय कोण में यदि कूप हो तो वह निरन्तर भय, दाह देने वाला होता है। नैर्ऋत कोण में बालकों का नाश करने वाला, वायव्य कोण में वनिता को दुःख देनेवाला होता है। अतः इन तीन दिशाओं को छोड़ कर शेष दिशाओं में कूप बनाना उत्तम होता है ॥ १९-२० ॥

गृहस्य पूर्वादिदिक्षु कूपफलानि (मु० चि० १२।२०)—

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः ।
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम् ॥२१॥

वास्तु के बीचो बीच कूप बनाने से (या रहनेसे) धननाश, ईशान कोण में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्य की वृद्धि, अग्निकोण में पुत्रनाश, दक्षिण दिशा में स्त्री का विनाश, नैर्ऋत्य कोण में मृत्यु, पश्चिम दिशा में सम्पत्तिलाभ, वायव्य कोण में शत्रु से पीडा और उत्तर दिशामें कूप बनाने से सौख्य होता है ॥ २१ ॥

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य
ऐश्वर्य	पुत्रनाश	स्त्रीनाश	मृत्यु	सम्पत्	शत्रुभय	सौख्य	पुष्टि	धनहानि

कूपपरिमाणम—

कुर्यात्पञ्चकरादूर्ध्वं पञ्चविंशत्करावधि ।
कूपं वृत्तायतं प्राज्ञः सर्वभूतसुखावहम् ॥ २२ ॥

५ हाथ से लेकर २५ हाथ व्यास तक वृत्ताकार कूप सब भूतों के लिये बुद्धिमानों को बनाना चाहिये ॥ २२ ॥

देवीपुराणे च—

कूपः पञ्चकरादूर्ध्वं यावद्वर्गस्तदुद्भवः ।

वापी दण्डमयादूर्ध्वं दशवर्गो नृपोत्तमैः ॥ २३ ॥

पूर्वार्ध का अर्थ २२ वें श्लोक के अनुसार है। वापी १० दण्ड (अर्थात् ५० हाथ) से लेकर दश के वर्ग १०० दण्ड (या ४०० हाथ) बनाना उत्तम है ॥ २३ ॥

वास्तुराजवल्लभे च (४।२७)—

कूपाः श्रीमुखवैजयौ च तदनु प्रान्तस्तथा दुन्दुभि-
स्तस्मादेव मनोहरं च परतः प्रोक्तश्च चूडामणिः ।
दिग्भद्रो जयनन्दशङ्करमतो वेदादिहस्तैर्मितै-
र्विश्रान्तैः क्रमवर्धितैश्च कथिता वेदादधः कूपिकाः ॥ २४ ॥

४ हाथ व्यासवाले कूप का नाम श्रीमुख, ५ हाथ व्यास वाले कूप का नाम विजय, ६ हाथ व्यासवाले कूप का नाम प्रान्त, ७ हाथ व्यास वाले कूप का नाम दुन्दुभि, ८ हाथ व्यास वाले कूप का नाम मनोहर, ९ हाथ व्यास वाले कूप का नाम चूडामणि, १० हाथ व्यास वाले कूप का नाम दिग्भद्र, ११ हाथ व्यास वाले कूप का नाम जय, १२ हाथ व्यास वाले कूप का नाम नन्द और १३ हाथ व्यास वाले कूप का नाम शङ्कर है। ४ हाथ से कम व्यास वाले को कूपिका कहते हैं ॥ २४ ॥

(१) कूपचक्रं रोहिण्यृक्षात्—

रोहिण्यादि लिखेच्चक्रं त्रयं मध्ये प्रतिष्ठितम् ।
पूर्वादिदिक्षु सर्वासु सृष्टिमार्गेण दीयते ॥ २५ ॥
मध्ये शीघ्रं जलं स्वादु पूर्वभूमौ च खण्डितम् ।
आग्नेय्यां सुजलं प्रोक्तं दक्षिणे निर्जलं तथा ॥ २६ ॥
नैर्ऋते चामृतं वारि पश्चिमे शोभनं जलम् ।
वायव्येऽपि जलं हन्ति चोत्तरे स्वादुकं जलम् ।
ईशाने कटुकं क्षारं प्रत्यक्तीक्ष्णस्य सम्भवः ॥ २७ ॥

इसका अर्थ नीचे के चक्रसे स्पष्ट है ॥ २५—२७ ॥

मध्य	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	दिशा
३	३	३	३	३	३	३	३	३	
रोहिणी मृग. आर्द्रा	पुन. पुष्य आश्ले	मघा पू.फ. उ.फ.	हस्त चित्रा स्वाती	विशा अनु. ज्येष्ठा	मूल पू.षा. उ. षा.	श्रवण धनिष्ठा शत.	पू.भा. उ.भा. रेव.	अश्वि. भर. कृत्ति.	नक्षत्र २७
शीघ्र स्वादु	खण्ड	सुजल	निर्जल	अमृत	शोभन	जलहानि	स्वादु	कटु	फल

क्वचित्पुस्तके—

रोहिण्यादि लिखेच्चक्रं यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः ।
एकं मध्ये द्वयं पूर्वे त्रितयं चाग्निकोणके ॥ २८ ॥
याम्ये तु पञ्चसंख्यं स्यान्नैर्ऋत्ये रससङ्ख्यकम् ।
पश्चिमे युगलं वायौ युगलं त्रयमुत्तरे ।
ईशाने त्रीणि दातव्यं कूपचक्रे विचक्षणैः ॥ २९ ॥
फलं पूर्ववत् ।

इसके अर्थकी स्पष्टता के लिये चक्र देखिये ॥ २८—२९ ॥

मध्य	पूर्व	अग्निको	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायु	उत्तर	ईशान	दिशा
१	२	३	५	६	२	२	३	३	२७ नक्षत्र
शीघ्र स्वादु	खण्ड	सुजल	निर्जल	अमृत	शोभन	जलहानि	स्वादु	कटु	फल

(२) सूर्यभात्कूपचक्रम्—

कूपेऽर्कभान्मध्यगतैस्त्रिभिर्भैः
स्वादूदकं पूर्वदिशस्त्रिभिस्त्रिभिः ।
स्वल्पं जलं स्वादुजलं जलक्षयं
स्वादूदकं क्षारजलं शिलाश्च ॥ ३० ॥
मिष्टं जलं क्षारजलं क्रमात्फलं ज्ञेयं बुधैर्भास्करभात्सदा ग्रहेः ॥३१॥

इसका अर्थ भी चक्र से स्पष्ट है ॥ ३०—३१ ॥

मध्य	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	दिशा
३	३	३	३	३	३	३	३	३	२७ नक्षत्र
स्वादूदक	स्वल्प	स्वादु	ज. क्षय	स्वादु	क्षार	शिला	मिष्ट	क्षार	फल

(३) भौमभात्कूपचक्रम्—

शशिशराब्धित्रित्र्यब्धिगुणाब्धयो वधजलं हि सुसिद्धिरभङ्गदम्।
रुजमसिद्धियशोऽर्थप्रसिद्धये जलविभङ्गकरः कुजभादिति ॥ ३२ ॥

१	५	४	३	३	४	३	४	२७ नक्षत्र
वधजल	सुसिद्धि	शुद्ध	रोग	अशुभ	यश	धनसि	जलभङ्ग	फल

(४) राहुभात्कूपचक्रम्—

राहुऋक्षात्त्रयं पूर्वे भयमाग्नेयतः क्रमात्।
मध्ये चत्वारि देयानि फलं वाच्यं शुभाशुभम् ॥ ३३ ॥
पूर्वे शोककरो राहुराग्नेय्यां जलदो भवेत्।
दक्षिणे स्वामिमरणं नैर्ऋत्यां बहुदुःखदः ॥ ३४ ॥
पश्चिमे सुखसौभाग्यं वायव्ये जलवर्धनम्।
उत्तरे निर्जलं विद्यादीशाने जलवृद्धिदम् ॥
मध्ये च सजलं वाच्यं नान्यथा रुद्रभाषितम् ॥ ३५ ॥

इन श्लोकों का अर्थ चक्र है ॥ ३३-३५ ॥

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य	दिशा
३	३	३	३	३	३	३	३	४	२८ नक्ष.
शोक	जलद	स्वामि मृत्यु	दुःख	सुखसौभाग्य	जल वृद्धि	निर्जल	जल वृद्धि	सजल	फल

चतुर्णां प्रयोजनम्—

रोहिण्यृक्षात्सूर्यभाद् भौमभाच्च राहो ऋक्षाद् गण्यते कूपचक्रम्।
यस्मिन्काले सर्वमेतत्प्रशस्तं तस्मिन्भूमौ निर्जलायां जलत्वम् ॥३६॥
निर्वारे पूर्वतस्त्रीणि त्रीणि त्रीणि च सर्वतः।
मध्ये चत्वारि देयानि राहुभाद् गणयेद् बुधः॥ ३७ ॥
मध्ये पूर्वे जलं सौख्यं चोत्तरे धनवर्धनम्।
याम्यनैर्ऋत्ययोर्दुःखं भयमग्नौ परासु च ॥ ३८ ॥

इन दोनों का अर्थ भी चक्र में देखें॥ ३६-३८ ॥

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य	दिशा
३	३	३	३	३	३	३	३	४	नक्षत्र २८
जल-सौख्य	भय	दुःख	दुःख	भय	भय	धन-वर्धन	भय	जल-सौख्य	फल

वापीभेदाः (वास्तुराजव० ४।२७)—

वापी च नन्दैकमुखा त्रिकूटा षट्कूटिका युग्ममुखा च भद्रा ।
जया त्रिवक्त्रा नवकूटिका च त्वेकैस्तु कूटैर्विजया मता सा ॥३९॥

एक मुख तीन कूट की वापी को नन्दा, २ मुख ६ कूट की वापी को भद्रा, ३ मुख ९ कूट की वापी को विजया कहते हैं। यहां वापी में जाने के रास्ता को मुख और ऊपर खुले हुए मुख को कूट कहते हैं। वापी के बीच के ऊपर वाला मुख गिनती में नहीं है ॥ ३९ ॥

सरसां लक्षणमुत्तमादिभेदाश्च (वास्तुराजव० ४ २९)—

सरोऽर्धचन्द्रस्तु महासरश्च वृत्तं चतुष्कोणकमेव भद्रम् ।
भद्रैः सुभद्रं परिघैकयुग्मं वकस्थलैकद्वयमेव यस्मिन् ॥४०॥
ज्येष्ठं मितं दण्डसहस्रकेण मध्ये तदर्धेन ततः कनिष्ठम् ।
तथा करैः पञ्चशतानि दैर्घ्ये तदर्धमध्यं तु ततः कनिष्ठम् ॥४१॥

अर्धचन्द्राकार सर को अर्धचन्द्र, वृत्ताकार सर (तालाब) को महासर चौखूटे तालाबको भद्र, चार भद्रवाले तालाबको समुद्र कहते हैं। इनमें एक ही परिघ और एक या दो वकस्थल (पक्षियों के बैठने का स्थान) होना चाहिए॥

चार हजार ४००० हाथ लम्बा, दो हजार २००० हाथ चौड़ा तालाब उत्तम संज्ञक, दो हजार २००० हाथ लम्बा एक हजार १००० चौड़ा तालाब मध्यम श्रेणी का और एक हजार १००० हाथ लम्बा, पाँच सौ हाथ चौड़ा तालाब कनिष्ठ श्रेणी का होता है ॥ ४०-४१ ॥

कुण्डलक्षणं (तत्रैव ४।३१)—

भद्राख्यकुण्डं चतुरस्रकं च सुभद्रकं भद्रयुतं द्वितीयम् ।
नन्दाख्यकं स्यात्प्रतिभद्रयुक्तं मध्ये सभिट्टं परिघं चतुर्थम् ॥ ४२ ॥

चतुरस्र (चोकोर) कुण्ड को भद्र, भद्रयुक्त कुण्ड को सुभद्र, प्रतिभद्र कुण्ड को नन्द, बीच में भिट्ट युक्त कुण्ड को परिघ संज्ञक कहते हैं ॥ ४२ ॥

तत्परिमाणञ्च—

कराष्टतो हस्तशतप्रमाणं द्वारैश्चतुर्भिः सहितानि कुर्यात् ।
मध्ये गवाक्षाश्च दिशो विभागे कोणे चतुष्का अपि पट्टशाला ॥४३॥

अब ८ हाथ से लेकर सौ १०० हाथ पर्यन्त, चारो ओर दरवाजे वाला

(१) सीढ़ी के बगल वाली दिवाल को जिसमें किसी देवता की मूर्ति बनाकर रखी जाती है उसको अथवा कुण्ड के ऊपरी भाग में पाटन को जिसपर किसी देवता की मूर्ति स्थापित कर दी जाए उसको पट्ट कहते हैं।

बीच में गवाक्ष (झरोखा) युक्त और चारो कोनों में पट्टशाला से युक्त कुंड बनवाना चाहिये ॥ ४३ ॥

तडागचक्रम्—

तडागचक्रं वक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयामले ।
सूर्यभाचन्द्रभं यावद् गणयेत्सततं बुधैः ॥ ४४ ॥
दिक्षु ऋक्षद्वयं न्यस्य मध्ये पञ्च नियोजयेत् ।
षड्ऋक्षं वारिवाहे स्यात्फलं तत्र विचारयेत् ॥ ४५ ॥
पूर्वे तु बहुशोकं स्यादाग्नेय्यां सजलं बहु ।
दक्षिणे वारिनाशः स्यान्नैर्ऋते चामृतं जलम् ॥ ४६ ॥
पश्चिमे च जलं स्वादु वायव्ये वारिशोषणम् ।
उत्तरे च स्थिरं तोयमीशाने कुत्सितं जलम् ॥
मध्ये छिद्रजलं याति वारिवाहेति पूर्णता ॥ ४७ ॥

सूर्याक्रान्त नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गिन के २, २, नक्षत्र आठो दिशाओं में ५ नक्षत्र मध्य में और ६ नक्षत्र वारिवाह में स्थापन करके फल का विचार करे। पहले २ नक्षत्र पूर्व में पड़े तो शोक, फिर २ नक्षत्र अग्नि कोण में तो पड़े तो जल की अधिकता, फिर २ नक्षत्र दक्षिण में जल का नाश-कारक, फिर २ नक्षत्र नैर्ऋत्य में जलको अमृत तुल्य स्वादु बनाने वाला, फिर २ नक्षत्र पश्चिम में स्वादु जल बनाने वाला, फिर २ नक्षत्र वायव्य कोण में जल का शोषण करने वाला, फिर २ नक्षत्र उत्तर में जलको स्थिर करने वाला, फिर २ नक्षत्र ईशान कोण में जलको कुत्सित बनाने वाला, फिर ५ नक्षत्र मध्यमें जलहानिकर, फिर ६ नक्षत्र जलवाह में जल को पूर्ण करने वाला होता है ॥ ४४-४७ ॥

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	मध्य	जलवाह	स्थान
२	२	२	२	२	२	२	२	५	६	२७नक्ष
शोक	जलाधिक्य	जल नाश	अमृत	स्वादु	जल शोष	जल स्थैर्य	कुत्सित जल	जल हानि	जल पूर्णता	फल

कूपाद्यारम्भमुहूर्तः (पी० धा० २।२५)—

पुष्ये मित्रकरोत्तरस्ववरुणब्रह्माम्बुपित्र्येन्दुभिः
शस्तेऽर्के शुभवारयोगतिथिषु क्रूरेष्ववीर्येषु च ।

पुष्टेन्दौ जलराशिगे दशमगे शुक्रे शुभांशोदये
प्रारम्भः सलिलालयस्य शुभदो जीवेन्दुपुत्रोदये ॥ ४८ ॥

पुष्य, अनुराधा, हस्त, तीनों उत्तरा, धनिष्ठा, शतभिष, रोहिणी और मृगशिरा इन १२ नक्षत्रों में सूर्य के शुभ रहने पर, शुभग्रह के वार, शुभ योग और शुभ तिथियों में, क्रूरग्रहों के निर्बल होने पर, चन्द्रमा के पुष्ट और जलचरसंज्ञक राशियों में रहने पर और दशमस्थान में शुक्र हो, शुभग्रह की राशि और नवमांश हो, बृहस्पति और बुध उदय हो तो सम्पूर्ण जलाशयों का बनाना शुभदायक होता है ॥ ४८ ॥

कूपादीनामाकृतिभेदात्प्रत्यंकनक्षत्राण्युक्तानि तत्रादौ कूपारम्भस्य (रत्नमालायाम्)—

हस्तः पुष्यो वासवं वारुणञ्च सौम्यं पित्र्यं त्रीणि चैत्रोत्तराणि ।
प्राजापत्यं चापि नक्षत्रमाहुः कूपारम्भे श्रेष्ठमाचार्यवर्य्याः ॥ ४९ ॥

हस्त, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिष, अनुराधा, मघा, तीनों उत्तरा और रोहिणी ये १० नक्षत्र कूपारम्भ के लिये उत्तम होते हैं ऐसा पूर्वाचार्य्यवर्य्यों ने कहा है ॥ ४९ ॥

वाप्याः (पी० धा० २।५५)

स्वात्यश्विपुष्यहस्तेषु सर्वदा च पुनर्वसौ ।
रेवत्यां वारुणे चैव वापीकर्म प्रशस्यते ॥ ५० ॥

स्वाती, अश्विनी, पुष्य, हस्त, पुनर्वसु, रेवती; शतभिष इन ७ नक्षत्रों में वापी आरम्भ करना शुभ होता है ॥ ५० ॥

तडागारम्भस्य तत्रैव—

ध्रुवं वसु जलं पुष्यं नैर्ऋत्यं मैत्रसंज्ञकम् ।
नक्षत्रं शुभदं ज्ञेयं तडागे सर्वदा बुधैः ॥ ५१ ॥

ध्रुवसंज्ञक (रो०, तीनों उत्तरा) धनिष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, पुष्य, मूल, अनुराधा इन ८ नक्षत्रों में तडागसम्बन्धी कार्य करना शुभफलप्रद होता है ॥ ५१ ॥

कूपादीनां जीर्णोद्धारमुहूर्तः—

शशांकतोयांशकसर्पमित्रध्रुवाम्बुपित्र्ये वसुरेवतीषु ।
उद्यानवाप्यादितडागकूपकार्याणि सिद्ध्यन्ति जलं ध्रुवं स्यात् ॥५२॥

मृगशिरा, पूर्वाषाढा, आश्लेषा, अनुराधा, ध्रुवसंज्ञक, शतभिष, मघा, धनिष्ठा, रेवती इन १२ नक्षत्रों में बगीचा, वापी, तालाब, कूपादि का जीर्णोद्धार करने से निश्चय जल होता है ॥ ५२ ॥

प्रसङ्गाज्जलशोधनौषधयः (बृहत्सं० ५३।१५१)—

अञ्जनमुस्तोशीरैः सरोजकोशातकामलकचूर्णैः ।
कतकफलसमायुक्तैर्योगः कूपे प्रदातव्यः ॥ ५३ ॥
कलुषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं वा सुगन्धि भवेत् ।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुगन्धिगुणैरपरैश्च युतम् ॥ ५४ ॥

अंजन (कुटकी वा कृष्ण कपास), नागरमोथा, खर बनतरोई (वा बड़ी तरोई) इन सबों का चूर्ण और कतकफल (निर्मली का बीज) इन सब को मिलाकर कूएँ में डालने से मैला, कडुवा, नमकीन, 'बिना स्वाद का और दुर्गन्धियुक्त इत्यादि सब प्रकार के जल-विकार नष्ट हो जाते हैं। और स्वादु, सुगन्धियुक्त सब तरह से लाभप्रद जल उत्पन्न होते हैं ॥ ५३-५४ ॥

इति जलाशयप्रकरणम् ॥ १२ ॥





सारणीविषयक कुछ जानने योग्य आवश्यक बातें—

अश्विन्यादि २७ नक्षत्रों और १, ३, ५, ७ आयों के सम्बन्ध से मुहूर्तचिन्तामणि के अनुसार इस सारणी का निर्माण होने के कारण निम्नाङ्कित विषयों पर ध्यान देने से इसकी बहुत सी बातें अपने आप अभ्यस्त हो जायंगी।

(१) १, ३, ५, ७ आयों वाले पिण्ड में क्रम से २, १, ७, ५, ऋण होता है।

(२) नक्षत्रसंख्या में ३ का भाग देने से १, २, ० शेष बचने पर क्रमसे ३, ६, ९ अंश की और ४, ८, १२ द्रव्य की संख्यायें होती हैं।

(३) अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा इत्यादि विषमसंख्यक नक्षत्रों के क्रम से १४, १५, १६, इत्यादि (अर्थात् हर्षण, वज्र…इत्यादि) एवं भरणी, रोहिणी इत्यादि समसंख्याक नक्षत्रों के क्रमसे, १, २, ३ इत्यादि (अर्थात् १ विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्…प्रभृति) योग होते हैं।

(४) नक्षत्रसंख्या में ८ का भाग देने से शेष १, २, ३ ४ इत्यादि व्ययसंख्या होती है।

(५) पिण्डसंख्या में ९ का भाग देकर १, २, ३ इत्यादि शेष बचे तो पर्वतछाया होती है।

(६) कृत्तिका से ७ नक्षत्र (कृ, रो, मृ, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा) गृह की हों तो उत्तर-दक्षिण दिशा की ओर, म, पू.फ, उ.फ, ह, चि, स्वा, वि, ये ७ नक्षत्र गृह की हों तो पूर्व पश्चिम दिशा की ओर, अनु, ज्ये, मू, पू.षा, उ.षा, अ, श्र ये ७ नक्षत्र मकान की हों तो उत्तर-दक्षिण ओर एवं ध, श, पू.भा, उ.भा, रे, अ, भ, ये ७ नक्षत्र गृह के हों तो पूर्वपश्चिम की ओर गृह का द्वार बनाना उत्तम होता है।

(७) वार, तिथि और आयु इन तीनों में सर्वत्र वैषम्य पड़ा करता है।

(८) आयु की संख्या ८ से कम नहीं आती और आठ ही के किसी गुणे के बराबर भी होती है।

(९) आय चतुष्टयी संबन्धी जो न्यूनतम साधित पिण्ड आता हो उसमें उत्क्रम से ५४ जोड़ देने से पूर्व आयका पिण्ड हो जाता है।

सारणी से पिण्ड देखने की रीति—

सारणी से पिण्ड निश्चित करने की रीति यह है कि गृहेश की नक्षत्र के साथ जिस नक्षत्र से गणना उत्तमोत्तम बनती हो 'अर्थात् दोनों का नक्षत्र एक न हो और जिस दिशा में द्वार बनाकर हो उस दिशा का नक्षत्र न हो किन्तु नाडी एक पड़ती हो भकूट, गण, गृहमैत्री, योनि, तारा, वश्य और वर्ण ये सब उत्तमोत्तम बनते हों गुणैक्य २० से अधिकाधिक आवे और वह नक्षत्र (४ प्रक० । २ श्लोक) के अनुसार शुभफलदायक हो' उसी नक्षत्र को इष्ट नक्षत्र कल्पना करके उस नक्षत्र पर से सारणी में जो सबसे उत्तम पिण्ड हो उसी पिण्ड पर से गृह के विस्तार और दैर्घ्य की कल्पना करे।

गृह का विस्तार पूरा २ हाथ विषमसंख्यक (जैसे १५, १७, १९ इत्यादि) होना चाहिये लम्बाई में पूरे २ हाथ न मिले तो अंगुलादिक जुटा या घटा हुआ हो तो भी उत्तम ही होता है।

आयकी अपेक्षा व्यय और ऋण का कम होना तथा द्रव्य और आयु का अधिक होना मकान मालिक के लिये उत्तम होता है। आय, वार, तिथि, योग इत्यादि में अधिक गुण और कम दोषों का होना गृहेश के लिये श्रेयष्कर है।

सारिणी में दिये हुए विषयों के अतिरिक्त पांचवें प्रकरण में • लिखे हुए ५१ वें श्लोक के अनुसार अंश, २६ वें और ६८–७१ वें श्लोकों के अनुसार ध्रुवादिगृहों का शुभाशुभत्व, ७२–७३ वें श्लोकों के अनुसार गृहच्छाया, ७४ वें श्लोक के अनुसार गृहेश, ७५-८० वें श्लोक के अनुसार भूमि का शुभाशुभत्व, ८३ वें श्लोक के अनुसार दाता आदि, ८४–८७ वे श्लोकों के अनुसार मण्डलेश का विचार कर लेना आवश्यक होता है।

मकान बनाना आरम्भ करने के पूर्व ही ८१–९१ श्लोकों के अनुसार आँगन का विचार और पिण्ड के अन्दर अपनी सुविधा के अनुसार पाकस्थान, शयनस्थान, भाण्डारागार इत्यादि का विचार (६ प्र० । २३ वे श्लो० के अनुसार) कर लेना श्रेयस्कर होता है।

बहुत से अल्पज्ञ लोग किसी एक ही विषय को लेकर उसी के गुण दोष से अन्य विषयों की अपनी अनभिज्ञता के कारण उपेक्षा करके पिण्ड को प्रशस्त या निषिद्ध बतला कर गृहेश को सन्देह-सागर में डालकर उससे धूर्तता करते हैं यह उनकी भारी भूल का और अल्पज्ञता का पूर्ण परिचायक है। शमिति।

सारणी के प्रथम पंक्ति में लिखित सांकेतिक सा, क्षे, मु०···इत्यादि अक्षरों का स्पष्टीकरण—

१ सा = साधित पिण्ड जो श्लोक के आधार पर साधा गया है,

२ क्षे = क्षेपक, साधित अपने कार्य के योग्य वास्तविक पिण्ड लाने के लिये पिण्ड में जितनी बार २१६ जोडा जाय तो उसे क्षेपक कहते हैं।

३ मु = मुख्य पिण्ड जो साधित पिण्ड में क्षेपक जोड़ने से सम्पन्न होता है। यही अभीष्ट गृह का वास्तविक पिण्ड (क्षेत्रफल) कहा जाता है।

४ वि = विस्तार, गृह की पूर्व-पश्चिम चौड़ाई यह दस २ हाथ होता है। इस में अंगुल जव का सन्निवेश नहीं किया जा सकता।



१ अश्विनी । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	१७	१७९	१२५	७१	१७	१७९	१२५	७१	१७	१७९
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	२३३	३९५	३४१	२८७	४४९	६११	५५७	५०३	६६५	८२७
विस्तार	९ / ११	१७ / १९	१७ / १५	१३ / १५	१९ / १७	२३ / २१	२१ / २३	१९ / २१	२३ / २५	२७ / २५
दैर्घ्यहस्त अंगुल जव	२५ / २१ २१ / ४ ३ / ३	२३ / २० ५ / १८ ५ / ७	२० / २२ १ / १७ ३ / ५	२२ / १९ १ / ३ ७ / २	२३ / २६ १५ / ७ १ / १	२६ / २९ १३ / २ ५ / २	२६ / २४ १२ / ५ ५ / २	२६ / २३ ११ / २२ ३ / ७	२८ / २६ २१ / १४ ७ / ३	३० / ३३ १५ / १ १ / ७
वातादि	८ / ६	५ / ४	२ / २	९ / ८	७ / ८	५ / ६.	३ / ३	१ / ९	७ / ७	४ / ५
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	४	६	३	७	२	४	१	५	७	२
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
तिथि	४	१०	१३	१	७	१३	१	४	१०	१
योग	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
आयु	६४	४०	८८	१६	११२	८८	१६	६४	४०	१६
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१२५	७१	१७	१७९	१२५	७१	१७	१७९	१२५	७१
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	७७३	७१९	८८१	१०४३	९८९	९३५	१०९७	१२५९	१२०५	११५१
विस्तार	२५ / २७	२३ / २५	२७ / २५	२९ / ३१	२७ / २९	२७ / २९	२९ / ३१	३१ / ३३	३१ / ३३	३१ / ३३
दैर्घ्यहस्त अंगुल जव	३० / २८ २२ / १४ १ / ३	३१ / २८ ६ / १८ २ / २	३२ / ३५ १५ / ५ १ / ६	३५ / ३३ २३ / १५ १ / ४	३६ / ३४ १५ / २ १ / ४	३४ / ३२ १५ / ५ १ / ६	३७ / ३५ १९ / ९ ७ / २	४० / ३८ १९ / ३ ६ / ४	३८ / ३६ २० / १२ ७ / ३	३७ / ३४ २ / २१ १ / १
वातादि	२ / २	१ / ९	६ / ७	२ / २	१ / १	८ / ८	४ / ४	९ / ९	७ / ७	६ / ५
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	६	३	५	७	४	१	३	५	२	६
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
तिथि	४	७	१३	४	७	१०	१	७	१०	१३
योग	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
आयु	६४	११२	८८	६४	११२	४०	१६	११२	४०	८८
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१ अश्विनी । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	१७	१७९	१२५	७१	१७	१७९	१२५	७१	१७	१७९
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२५६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१३१३	१४७५	१४२१	१३६७	१५२९	१६९१	१६३७	१५८३	१७४५	१९०७
विस्तार	३३ / ३५	३५ / ३७	३३ / ३५	३३ / ३५	३५ / ३७	३७ / ३९	३७ / ३९	३५ / ३७	३७ / ३९	३९ / ४१
दैर्घ्यहस्त	३९ / ३७	४२ / ३९	४३ / ४०	४१ / ३९	४३ / ४१	४५ / ४३	४४ / ४१	४५ / ४२	४७ / ४४	४८ / ४६
अंगुल	१८ / १२	३ / १८	१ / १४	१० / १	१६ / ७	१६ / ८	५ / २३	५ / १८	३ / १७	२१ / १२
जव	७ / ३	३ / १	४ / ३	१ / ३	३ / ६	७ / ०	६ / ३	३ / ६	७ / ७	४ / २
वातादि	१ / १	६ / ५	५ / ४	३ / ३	७ / ७	२ / २	१ / ९	९ / ८	४ / ३	७ / ७
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	१	३	७	४	६	१	७	२	४	६
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
तिथि	४	१०	१३	१	७	१३	१	४	१०	१
योग	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
आयु	६४	४०	८८	१६	११२	८८	१६	६४	४०	१६
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१२५	७१	१७	१७९	१२५	७१	१७	१७९	१२५	७१
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१८५३	१७९९	१९६१	२१२३	२०६९	२०१५	२१७७	२३३९	२२८५	२२३१
विस्तार	३७ / ३९	३७ / ३९	४१ / ४३	४३ / ४५	४३ / ४१	४१ / ४३	४३ / ४५	४५ / ४७	४३ / ४५	४३ / ४५
दैर्घ्यहस्त	५१ / ४७	४८ / ४६	४७ / ४५	४९ / ४७	४८ / ५०	४९ / ४६	५० / ४८	५१ / ४९	५३ / ५०	५१ / ४९
अंगुल	१ / १२	१४ / ३	२२ / १४	८ / ४	२ / ११	३ / २०	१५ / ९	२३ / १८	३ / १८	२१ / १३
जव	७ / २	५ / १	३ / ५	६ / २	६ / १	४ / २	१ / १	४ / १	३ / ५	२ / ७
वातादि	७ / ६	५ / ३	७ / ८	३ / ३	२ / २	१ / ९	४ / ४	७ / ७	७ / ६	५ / ५
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	३	७	२	४	१	५	७	२	४	३
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१	१	१	५	१	१	१	१	१	१
तिथि	४	७	१३	४	७	१०	१	७	१०	१३
योग	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
आयु	६४	११२	८८	६४	११२	४०	१६	११२	४०	८८
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२ भरणी । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	१६९	११५	६१	७	१६९	११५	६१	७	१६९	११५
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	३८५	३३१	२७७	२२३	६०१	५४७	४९३	४३९	८१७	७६३
विस्तार	१७ | १९	१५ | १७	११ | १५	९ | ११	२३ | २१	२१ | २३	१९ | २१	१९ | १७	२५ | २७	२५ | २७
दैर्घ्यहस्त	२२ | २०	२२ | ११	२५ | १८	२४ | २०	२६ | २८	२६ | २३	२५ | २३	२३ | २५	३२ | ३०	३० | २८
अंगुल	१५ | ६	१ | ११	४ | ११	१८ | ६	३ | १४	१ | १८	२२ | ११	२ | १९	१६ | ६	१२ | ६
जव	४ | ३	५ | २	३ | २	५ | ४	१ | ७	१ | ६	६ | ३	४ | ६	३ | २	४ | २
दातादि	४ | ४	२ | १	१ | ७	७ | ५	५ | ५	३ | २	९ | ९	७ | ७	४ | ४	२ | २
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	७	४	१	५	५	२	६	३	३	७
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
तिथि	५	८	११	१४	८	११	१४	२	११	१४
योग	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयु	८०	८	५६	१०४	८	५६	१०४	३२	५६	१०४
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	६१	७	१६९	११५	६१	७	१६९	११५	६१	७
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	७०९	६५५	१०३३	९७९	९२५	८७१	१२४९	११९५	११४१	१०८७
विस्तार	२३ | २५	२३ | २५	२९ | ३१	३१ | २९	२७ | २९	२५ | २७	३१ | ३३	३१ | ३३	३१ | २९	२९ | ३१
दैर्घ्यहस्त	३० | २८	२८ | २६	३५ | ३३	३१ | ३३	३४ | ३१	३४ | ३२	४० | ३७	३८ | ३९	३६ | ३९	३७ | ३५
अंगुल	१९ | ८	११ | ४	१४ | ७	१७ | ११	६ | २१	२० | ६	६ | २०	१३ | १०	१९ | ८	११ | १
जव	६ | ५	४ | ६	७ | २	१ | १	२ | ४	१ | २	८ | ३	१ | १	३ | २	५ | ४
दातादि	९ | ९	७ | ७	२ | २	९ | ९	८ | ७	६ | ६	९ | ८	७ | ८	५ | ६	४ | ४
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	४	१	१	५	२	६	६	३	७	४
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
तिथि	२	५	१४	२	५	८	२	५	८	११
योग	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयु	३२	८०	१०४	३२	८०	८	३२	८०	८	५६
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२ भरणी । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	१६९	११५	६१	७	१६९	११५	६१	७	१६९	११५	६१	७	१६९	११५	६१	७	१६९	११५	६१	७
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१४६५	१४११	१३५७	१३०३	१६८१	१६२७	१५७३	१५१९	१८९७	१८४३	१७८९	१७३५	२११३	२०५९	२००५	१९५१	२३२९	२२७५	२२२१	२१६७
विस्तार	३५ | ३७	३३ | ३५	३३ | ३५	३३ | ३५	३७ | ३५	३५ | ३७	३५ | ३७	३५ | ३७	३९ | ४१	३९ | ४१	३७ | ३९	३५ | ३७	४१ | ४३	४१ | ४३	४१ | ४३	४१ | ४३	४३ | ४५	४३ | ४५	४३ | ४५	४१ | ४३
दैर्घ्यहस्त	४१ | ३९	४२ | ४०	४१ | ३९	३९ | ३७	४५ | ४८	४६ | ४३	४४ | ४२	४३ | ४१	४८ | ४६	४७ | ४४	४८ | ४५	४९ | ४६	५१ | ४९	५० | ४७	४८ | ४६	४७ | ४५	५४ | ५१	५२ | ५०	५१ | ४९	५२ | ५०
अंगुल	२० | १४	१८ | ७	२ | १	११ | ५	१० | ०	११ | २३	२१ | १२	९ | १०	१५ | ६	६ | १७	८ | २०	१३ | २०	१२ | ३	५ | २३	२१ | १५	१४ | ८	४ | २	२१ | १३	१५ | ८	१० | ९
जव	५ | २	१ | ४	७ | ३	५ | ४	३ | ६	१५ | ३	४ | ३	५ | ३	३ | ३	१ | ८	३ | ७	६ | ६	७ | ३	२ | २	५ | १	० | ७	० | १	६ | ३	७ | ४	४ | ४
दातादि	५ | ५	४ | ४	३ | ३	१ | १	२ | ३	१ | ९	७ | ८	५ | ७	७ | ७	५ | ५	५ | ४	४ | ३	३ | ३	२ | १	९ | १	८ | ८	८ | ७	६ | ६	५ | ५	४ | ४
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	४	१	५	२	२	६	४	७	७	४	१	५	५	२	६	३	३	७	३	१
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
तिथि	५	८	११	१४	८	११	१४	२	११	१४	२	५	१४	२	५	८	२	५	८	११
योग	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयु	८०	८	५६	१०४	८	५६	१०४	३२	५६	१०४	३२	८०	१०४	३२	४०	८	३२	४०	८	५६
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

३ कृत्तिका । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	१०५	५१	२१३	१५९	१०५	५१	२१३	१५९	१०५	५१
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	३२१	२६७	३२९	३७५	५३७	४८३	६४५	५९१	७५३	६९९
विस्तार	९/१५	९/१५	११/१७	१७/१५	२१/२३	१९/२१	२३/२५	२१/२३	२५/२७	२३/२५
दैर्घ्यहस्त	३५/२१	२९/१७	३९/२५	२२/२५	२५/२३	२५/२३	२८/२५	२८/२५	३०/२७	३०/२७
अंगुल	१६/९	१६/१९	०/५	१/०	१३/८	१०/०	१/१९	३/१६	२/२१	९/२३
जव	०/५	०/२	०/५	४/०	६/३	१/०	०/२	३/६	७/३	३/०
वातादि	९/१	३/६	५/७	४/४	१/२	९/८	७/६	५/४	२/१	९/८
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	५	२	४	१	३	७	२	६	१	५
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
तिथि	६	६	१२	१५	६	९	१५	३	९	१२
योग	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
आयु	४८	९६	७२	१२०	९६	२४	१२०	४८	२४	७२
व्यय	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	२१३	१५९	१०५	५१	२१३	१५९	१०५	५१	२१३	१५९
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	८६१	८०७	९६९	९१५	१०७७	१०२३	११८५	११३१	१२९३	१२३९
विस्तार	२५/२७	२५/२७	२७/२९	२७/२९	२७/२९	२९/३१	३१/३३	३१/२९	३१/३३	३१/३३
दैर्घ्यहस्त	३४/३१	३२/२९	३५/३३	३३/३१	३९/३७	३५/३३	३८/३५	३६/३९	४१/३९	३९/३७
अंगुल	१०/२१	६/२१	२१/९	२१/१२	२१/३	६/०	१३/२१	११/०	१७/४	२३/१३
जव	४/३	६/३	३/७	२/४	२/२	५/०	१/७	६/०	०/३	१/१
वातादि	६/५	४/३	९/९	७/७	४/४	२/१	७/६	५/५	१/१	८/८
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	७	४	६	३	५	२	४	१	३	७
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
तिथि	३	६	१२	१५	६	९	१५	३	९	१२
योग	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
आयु	४८	९६	७२	१२०	९६	२४	१२०	४८	२४	७२
व्यय	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

३ कृत्तिका । नक्षत्रद्वार–उत्तर–दक्षिण

साधितपिण्ड	१०५	५१	२१३	१५९	१०५	५१	२१३	१५९	१०५	५१	२१३	१५९	१०५	५१	२१३	१५९	१०५	५१	२१३	१५९
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१४०१	१३४७	१५०९	१४५५	१६१७	१५६३	१७२५	१६७१	१८३३	१७७९	१९४१	१८८७	२०४९	१९९५	२१५७	२१०३	२२६५	२२११	२३७३	२३१९
विस्तार	३३ | ३५	३३ | ३५	३३ | ३५	३५ | ३३	३५ | ३७	३५ | ३३	३७ | ३५	३७ | ३५	३९ | ३७	३९ | ३७	३९ | ४१	३९ | ३७	४१ | ४३	४१ | ४३	४१ | ४३	४१ | ४३	४३ | ४५	४३ | ४५	४३ | ४५	४३ | ४९
दैर्घ्यहस्त	४२ | ४०	४० | ३८	४५ | ४३	४१ | ४४	४६ | ४३	४४ | ४७	४६ | ४९	४४ | ४७	४७ | ४९	४५ | ४८	४९ | ४७	४८ | ५१	५२ | ४९	४८ | ४६	५२ | ५०	५१ | ४८	५२ | ५०	५१ | ४९	५५ | ५२	५३ | ५१
अंगुल	१० | ०	१९ | ११	१५ | २	१३ | २	४ | १५	१५ | ४	१४ | ७	३ | १७	० | १३	१४ | १	१८ | ८	९ | ०	२९ | २३	५ | ९	१४ | ३	७ | २१	१४ | ८	१० | ३	४ | १७	२२ | १२
जव	७ | ५	५ | ३	४ | ०	६ | १	६ | ६	६ | ३	७ | ६	७ | ६	० | ०	६ | ७	४ | २	२ | ०	७ | ७	६ | ४	५ | ७	० | ४	३ | ०	० | २	४ | ५	३ | ९
दातादि	४ | ४	२ | २	७ | ७	५ | ६	१ | ९	८ | ९	३ | ४	३ | २	५ | ६	४ | ५	८ | ८	७ | ७	४ | ३	९ | ९	४ | ४	३ | २	६ | ६	५ | ५	९ | ८	७ | ७
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	२	६	१	५	७	४	६	३	५	२	४	१	३	७	२	६	१	५	७	४
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
तिथि	३	६	१२	१५	६	९	१५	३	९	१२	३	६	१२	१५	६	९	१५	३	९	१२
योग	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
आयु	४८	९६	८८	१२०	९६	२४	१२०	४८	२४	७२	४८	९६	७२	१२०	९६	२४	१२०	४८	२४	७२
व्यय	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	पूर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

४ रोहिणी । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	४१	२०३	१४९	९५	४१	२०३	१४९	९५	४१	२०३
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	२५७	४१९	३६५	३११	४७३	६३५	५८१	५२७	६८९	८५१
विस्तार	१५ / ९	१७ / १९	१७ / १५	१५ / १७	१७ / १९	२३ / २१	२१ / २३	१९ / २१	२३ / २५	२७ / २५
दैर्घ्यहस्त	१७ / २८	२४ / २२	२१ / २४	२० / १८	२७ / २४	२७ / ३०	२७ / २५	२७ / २५	२९ / २७	३१ / ३४
अंगुल	३ / १३	१५ / १	११ / ८	१७ / ७	१३ / २१	१४ / ५	१६ / ६	१७ / २	२२ / १३	१२ / १
जव	२ / ३	४ / २	२ / ०	५ / ०	७ / ४	५ / ६	० / २	६ / २	७ / ४	४ / ०
दातादि	६ / २	६ / ६	३ / ४	९ / ९	९ / ८	६ / ७	४ / ४	२ / २	८ / ८	५ / ६
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	३	५	२	६	१	३	७	४	६	१
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
तिथि	१	७	१०	१३	४	१०	१३	१	७	१३
योग	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयु	१६	११२	४०	८८	६४	४०	८८	१६	११२	८८
व्यय	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१४९	९५	४१	२०३	१४९	९५	४१	२०३	१४९	९५
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	७९७	७४३	९०५	१०६७	१०१३	९५९	११२१	१२८३	१२२९	११७५
विस्तार	२५ / २७	२५ / २३	२७ / २५	२९ / ३१	२९ / ३१	२७ / २९	२९ / ३१	३१ / ३३	३१ / ३३	३१ / २९
दैर्घ्यहस्त	३१ / २९	२९ / ३२	३३ / ३६	३६ / ३४	३४ / ३२	३५ / ३३	३८ / ३६	४१ / ३८	३९ / ३७	३७ / ४०
अंगुल	१२ / १२	१७ / ७	१२ / ४	१९ / १०	२२ / १६	१२ / १	१५ / ३	९ / २१	१५ / ५	२१ / १२
जव	१ / ४	२ / २	४ / ६	० / १	३ / २	३ / ५	५ / ७	२ / १	३ / ७	५ / ३
दातादि	३ / ३	१ / २	७ / ८	३ / ३	१ / १	९ / ९	५ / ५	१ / ९	८ / ८	६ / ७
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	५	२	४	६	३	७	२	४	१	५
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
तिथि	१	४	१०	१	४	७	१३	४	७	१०
योग	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयु	१६	६४	४०	१६	६४	११२	८८	६४	११२	४०
व्यय	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

४ रोहिणी । नक्षत्रद्वार–उत्तर–दक्षिण

भाजितपिण्ड	४१	२०३	१४९	९५	४१	२०३	१४९	९५	४१	२०३	१४९	९५	४१	२०३	१४९	९५	४१	२०३	१४९	९५
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१३३७	१४९९	१४४५	१३९१	१५५३	१७१५	१६६१	१६०७	१७६९	१९२१	१८७७	१८२३	१९८५	२१४७	२०९३	२०३९	२२०१	२३६३	२३०९	२२५५
विस्तार	३३, ३१	३५, ३३	३५, ३३	३३, ३१	३५, ३७	३७, ३९	३७, ३९	३७, ३५	३९, ३७	३९, ४१	३९, ४१	३९, ३७	४१, ४३	४१, ४३	४१, ४३	४१, ४३	४३, ४५	४३, ४५	४३, ४५	४१, ४५
दैर्घ्यहस्त	४०, ४३	४२, ४५	४१, ४३	४२, ४४	४४, ४१	४६, ४३	४४, ४२	४३, ४५	४५, ४७	४९, ४७	४८, ४५	४६, ४९	४८, ४६	५२, ४९	५१, ४८	४९, ४७	५१, ४८	५४, ५२	५३, ५१	५५, ५०
अंगुल	१२, १५	१९, १०	६, २०	३, २१	८, २६	८, २३	२२, १४	१०, २१	८, १९	१२, २	३, १४	१७, ६	९, ३	८, २२	१, १६	१७, १०	४, २२	२२, १२	१६, ७	०, ३
जव	३, ४	७, १	७, १	५, २	७, ३	३, २	४, १	३, ७	५, ४	२, ३	१, ६	७, ४	७, ७	६, ३	१, १	४, ०	४, ७	७, ३	४, ४	०, ५
दातादि	२, ३	६, ७	५, ५	४, ४	८, ७	३, २	१, १	९, ९	४, ४	८, ८	७, ६	५, ६	९, ९	४, ३	३, ३	१, १	५, ४	८, ८	७, ७	६, ६
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	७	२	६	३	५	७	४	३	३	५	२	६	१	३	७	४	६	१	१	२
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
तिथि	१	७	१०	१३	४	१०	१३	१	७	१३	१	४	१०	१	४	७	१३	४	७	१०
योग	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयु	१६	११२	४०	८८	६४	४०	८८	५६	११२	८८	१६	६४	४०	१६	६४	११२	८८	६४	११२	४०
व्यय	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

५ मृगशिरा । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	१९३	१३९	८५	३१	१९३	१३९	८५	३१	१९३	१३९
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	४०९	३५५	३०१	२४७	६२५	५७१	५१७	४६३	८४१	७८७
विस्तार	१५ / १७	१५ / १७	१५ / ९	९ / १५	२३ / २१	२१ / १९	२१ / १९	१९ / २१	२७ / २५	२५, २७
दैर्घ्यहस्त	२७ / २४	२३ / २०	२० / ३३	२७ / १६	२७ / २९	२७ / ३०	२४ / २७	२४ / २२	३१ / ३३	३१ / २९
अंगुल	६ / १	१६ / २१	१ / १०	१० / ११	१० / १८	४ / १	१४ / ५	८ / १	३ / १५	११ / ३
जव	३ / ३	० / १	५ / ४	४ / १	४ / २	४ / २	६ / ०	७ / १	४ / ३	४ / ४
दातादि	७ / ६	३ / २	९ / ७	१ / ५	५ / ६	४ / ५	१ / २	८ / ८	५ / ५	३ / ३
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	६	३	७	४	४	१	५	२	२	६
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
तिथि	२	५	८	११	५	८	११	१४	८	११
योग	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
आयु	३२	८०	८	५६	८०	८	५६	१०४	८	५६
व्यय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	८५	३१	१९३	१३९	८५	३१	१९३	१३९	८५	३१
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	७३३	६७९	१०५७	१००३	९४९	८९५	१२७३	१२१९	११६५	११११
विस्तार	२५ / २३	२३ / २५	२९ / ३१	२९ / ३१	२९ / २७	२७ / २५	३१ / ३३	३१ / ३३	३१ / २९	२९ / ३१
दैर्घ्यहस्त	२९ / ३१	२९ / २७	३६ / ३०	३४ / ३२	३२ / ३५	३३ / ३५	४१ / ३८	३९ / ३६	३७ / ४०	३८ / ३५
अंगुल	७ / २०	१२ / ३	१० / २	१४ / ८	१५ / ३	३ / १५	१ / १३	७ / २२	१३ / १	७ / २०
जव	५ / ७	४ / ७	६ / ३	१ / ४	३ / ४	४ / २	४ / ७	६ / ५	७ / ४	४ / १
दातादि	१ / १	८ / ८	३ / ३	१ / १	८ / ९	८ / ७	१ / ९	८ / ७	६ / ७	५ / ४
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	३	७	७	४	१	५	५	२	६	३
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
तिथि	१४	२	११	१४	२	५	१४	२	५	८
योग	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
आयु	१०४	३२	५६	१०४	३२	८०	१०४	३२	८०	८
व्यय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

५ मृगशिरा । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	१९३	१३९	८५	३१	१९३	१३९	८५	३१	१९३	१३९	८५	३१	१९३	१३९	८५	३१	१९३	१३९	८५	३१
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१४८९	१४३५	१३८१	१३२७	१७०५	१६५१	१५९७	१५४३	१९२१	१८६७	१८१३	१७५९	२१३७	२०८३	२०२९	१९७५	२३५३	२२९९	२२४५	२१९१
विस्तार	३५ / ३७	३५ / ३३	३३ / ३५	३३ / ३१	३७ / ३५	३५ / ३७	३५ / ३३	३५ / ३३	३९ / ४१	३९ / ३७	३९ / ३७	३७ / ३९	४१ / ४३	४१ / ४३	४१ / ४३	३९ / ४१	४३ / ४५	४३ / ४५	४३ / ४५	४३ / ४५
दैर्घ्यहस्त	४२ / ४०	४१ / ४३	४१ / ३९	४० / ४२	४६ / ४८	४७ / ४४	४५ / ४८	४४ / ४६	४९ / ४६	४७ / ५०	४६ / ४९	४७ / ४५	५२ / ४९	५० / ४८	४९ / ४७	५० / ४८	५४ / ५२	५३ / ५१	५२ / ४९	५० / ४८
अंगुल	१३ / ५	० / ११	२० / ११	५ / १९	१ / १७	४ / १४	१५ / ९	२ / १८	६ / २०	२० / ११	११ / ०	१२ / २	२ / १६	१९ / १०	११ / ४	१५ / ४	१७ / ६	११ / २	५ / २१	२२ / १६
जव	० / ७	० / ५	१३ / ०	१ / ३	७ / १	१ / ७	१ / ४	१ / १	१ / ४	७ / ०	५ / ०	७ / ४	६ / ६	२ / ५	६ / ४	४ / ०	२ / ७	१ / १	० / ३	७ / ४
वातादि	६ / ६	४ / ५	३ / ३	२ / २	३ / ३	२ / १	९ / १	८ / ८	७ / ७	६ / ७	५ / ५	४ / ४	४ / ३	२ / २	१ / १	९ / ९	८ / ८	७ / ७	६ / ५	४ / ४
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	३	७	४	१	१	५	२	६	६	३	७	४	४	१	५	२	२	६	३	७
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
तिथि	२	५	८	११	५	८	११	१४	८	११	१४	२	११	१४	२	५	१४	२	५	८
योग	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
आयु	३२	८०	८	५६	८०	८	५६	१०४	८	५६	१०४	३२	५६	१०४	३२	८०	१०४	३२	८०	८
व्यय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

६ आर्द्रा (उत्तम) । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	१२९	७५	२१	१८३	१२९	७५	२१	१८३	१२९	७५
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	३४५	२९१	२३७	३९९	५६१	५०७	४५३	६१५	७७७	७२३
विस्तार	१५ / १७	१५ / ९	९ / १५	१९ / १७	२१ / २३	१९ / २१	१९ / १७	२३ / २१	२५ / २७	२५ / २३
दैर्घ्यहस्त	२३ / २०	१९ / ३२	२६ / १५	२१ / २३	२६ / २४	२६ / २४	२३ / २६	२६ / २९	३१ / २८	२८ / ३१
अंगुल	० / ७	९ / ८	८ / १९	० / ११	१७ / ९	१६ / ३	२० / १५	१७ / ६	१ / १८	२२ / १०
जव	० / ०	५ / ०	० / २	० / २	१ / ३	३ / ४	१ / ४	६ / ७	७ / ५	१ / ४
दातादि	२ / २	८ / ६	९ / ४	४ / ५	३ / ३	१ / १	७ / ८	५ / ६	३ / २	९ / १
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	४	१	५	७	२	६	३	३	७	४
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
तिथि	१५	३	६	१२	३	६	९	१५	६	९
योग	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयु	१२०	४८	९६	७२	४८	९६	२४	१२०	९६	२४
व्यय	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	२१	१८३	१२९	७५	२१	१८३	१२९	७५	२१	१८३
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	६६९	८३१	९९३	९३९	८८५	१०४७	१२०९	११५५	११०१	१२६३
विस्तार	२३ / २५	२५ / २७	२९ / २७	२७ / २९	२७ / २५	२९ / ३१	३१ / ३३	३३ / ३१	३१ / २९	३१ / ३३
दैर्घ्यहस्त	२९ / २६	३३ / ३०	३४ / ३६	३४ / ३१	३२ / ३५	३६ / ३५	३९ / ३६	३५ / ३७	३५ / ३७	४० / ३८
अंगुल	२ / १८	५ / १८	५ / १८	१८ / ९	१८ / ९	२ / १८	० / १३	० / ६	१२ / २३	१७ / ६
जव	१ / २	६ / ५	६ / ५	५ / १	५ / ५	४ / ५	० / ६	० / १	२ / १	६ / ४
दातादि	८ / ७	५ / ४	१ / १	८ / ७	६ / ७	३ / ५	७ / ७	५ / ६	४ / ४	९ / ९
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	३	५	२	६	१	३	७	४	६
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
तिथि	१२	३	९	१२	१५	६	१३	१५	३	९
योग	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयु	७२	४८	२४	७२	१२०	९६	७२	१२०	४८	२४
व्यय	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

६ आर्द्रा (उत्तम) । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	१२९	७५	२१	१८३	१२९	७५	२१	१८३	१२९	७५	२१	१८३	१२९	७५	२१	१८३	१२९	७५	२१	१८३
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९६४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१४२५	१३७१	१३१७	१४७९	१६४१	१५८७	१५३३	१६९५	१८५७	१९०३	१७४९	१९११	२०७३	२०१९	१९६५	२१२७	२२८९	२२३५	२१८१	२३४३
विस्तार	३३ ३५	३३ ३५	३३ ३१	३५ ३३	३७ ३५	३५ ३७	३५ ३३	३७ ३५	३९ ४१	३९ ३७	३७ ३९	३९ ३७	४१ ४३	४१ ४३	३९ ४१	४१ ४३	४३ ४५	४३ ४५	४१ ४३	४३ ४५
दैर्घ्यहस्त	४३ ४०	४१ ३९	३९ ४२	४२ ४४	४४ ४६	४५ ४२	४३ ४६	४५ ४८	४७ ४५	४६ ४८	४७ ४४	४९ ४६	५० ४८	४९ ४७	५० ४७	५१ ४९	५३ ५०	५१ ४९	५३ ५०	५४ ५२
अंगुल	४ १७	१३ ४	२१ ११	६ ९९	८ २१	८ २१	१९ ३	१९ १०	१४ ७	५ ११	६ २०	० १६	१३ ५	५ २२	९ २२	२१ ११	५ २०	२३ १६	४ १७	११ १
जव	३ ५	० १	७ ७	१ ५	३ २	२ ३	२ ९	४ २	६ ०	४ ०	४ २	० ५	४ ०	७ ७	२ २	१ १	४ ६	३ ०	५ २	५ ४
दातादि	५ ४	३ ३	१ २	६ ६	१ १	९ ८	७ ८	२ ३	६ ६	५ ५	४ ३	७ ७	२ २	१ १	९ ९	३ ३	७ ६	५ ५	५ ४	८ ८
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	५	२	४	६	३	७	२	४	१	५	७	२	६	३	५	७	४	१	३
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
तिथि	१५	३	६	१५	३	६	९	१५	६	९	१२	३	९	१५	१५	६	१५	१५	३	६
योग	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयु	१२०	४८	९६	७२	४८	९६	२४	१२०	९६	२४	७२	४८	२४	७२	१२०	९६	७२	१२०	४८	२४
व्यय	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

७ पुनर्वसु (उत्तम) । नक्षत्रद्वार–उत्तर–दक्षिण

साधितपिण्ड	६५	११	१७३	११९	६५	११	१७३	११९	६५	११	१७३	११९	६५	११	१७३	११९	६५	११	१७३	११९
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	२८१	२२७	३८९	३३५	४९७	४४३	६०५	५५१	७१३	६५९	८२१	७६७	९२९	८७५	१०३७	९८३	११४५	११९१	१२५३	११९९
विस्तार	१५ / ९	९ / ११	१५ / १७	१५ / १७	१९ / २१	१९ / १७	२३ / २१	२१ / २३	२३ / २५	२३ / २१	२५ / २३	२५ / २३	२७ / २५	२७ / २५	२९ / ३१	२७ / २९	२९ / ३१	२९ / ३१	३१ / ३३	३१ / ३३
दैर्घ्यहस्त	१८ / ३१	२५ / २०	२५ / २२	२२ / १९	२६ / २३	२३ / २६	२६ / २८	२६ / २३	३१ / २८	२८ / ३१	३२ / ३५	३० / ३३	३४ / ३७	३२ / ३५	३५ / ३२	३६ / ३३	३८ / ३६	३७ / ३५	४० / ३७	३८ / ३६
अंगुल	१७ / ५	५ / १५	२२ / २१	८ / ९	३ / १७	७ / १	७ / ९	५ / २२	० / १२	१५ / ९	२० / १६	१६ / ७	९ / २	९ / ०	१८ / १०	९ / २१	११ / २२	१४ / ४	१० / २३	१६ / ८
जव	५ / ३	३ / २	३ / २	० / ०	६ / ०	५ / ३	२ / ३	६ / ७	० / ४	५ / १	१ / ०	३ / ७	६ / ७	६ / ०	५ / ६	६ / ४	३ / ४	७ / ५	१ / २	२ / ०
दातादि	७ / ५	८ / ५	५ / ४	२ / १	१ / ९	७ / ८	५ / ५	३ / २	९ / ९	७ / ८	४ / ५	२ / ३	८ / ९	६ / ६	२ / २	१ / ९	५ / ५	४ / ४	९ / ८	७ / ७
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	२	६	१	५	७	४	६	३	५	२	४	१	३	७	२	६	१	५	७	४
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
तिथि	१३	१	७	१०	१	४	१०	१३	४	७	१३	१	७	१०	१	४	१०	१३	४	७
योग	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७
आयु	८८	१६	११२	४०	१६	६४	४०	८०	६४	११२	८८	१६	११२	४०	१६	६४	४०	८८	६४	११२
व्यय	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

७ पुनर्वसू (उत्तम)। नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	६५	११	१७३	११९	६५	११	१७३	११९	६५	११
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१३६१	१३०७	१४६९	१४१५	१५७७	१५२३	१६८५	१६३१	१७१३	१७३९
विस्तार	३३ ३५	३३ ३५	३३ ३५	३३ ३५	३५ ३७	३५ ३७	३७ ३९	३७ ३५	३९ ३७	३९ ३७
दैर्घ्यहस्त	४१ ३८	३९ ३७	४४ ४०	४२ ४१	४५ ४२	४३ ४१	४५ ४१	४४ ४६	४५ ४८	४४ ४७
अंगुल	५ २१	१४ ८	१९ १०	२१ २३	१ १५	१२ ३	१२ २१	१ १३	२३ ११	१४ ०
जव	७ २	४ २	५ २	१ २	३ १	३ ७	७ ४	७ ५	३ ०	१ ०
द्वारादि	३ २	१ १	६ ४	४ ५	९ ८	७ ७	२ ९	१ १	४ ५	३ ३
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	६	३	५	२	४	१	३	७	२	६
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
तिथि	१३	१	७	१०	१	४	१०	१३	४	७
योग	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७
आयु	८८	१६	११२	४०	१६	६४	४०	८८	६४	११२
व्यय	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१७३	११९	६५	११	१७३	११९	६५	११	१७३	११९
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१९०१	१८४७	२००९	१९५५	२११७	२०६३	२२२५	२१७१	२३०३	२२७९
विस्तार	३९ ४१	३९ ४१	४१ ४३	३९ ४१	४१ ४३	४१ ४३	४३ ४५	४३ ४५	४३ ४५	४३ ४५
दैर्घ्यहस्त	४८ ४६	४७ ४५	४९ ४६	५० ४१	५१ ४९	५० ४७	५१ ४९	५० ४८	५३ ५१	५३ ५०
अंगुल	१७ ८	६ १	० १९	३ १६	१५ ५	७ २३	१७ १०	११ ५	१३ ४	० १५
जव	७ ७	० १	० ५	० ३	२ ४	५ ४	७ ५	६ ३	३ २	० ४
द्वारादि	७ ७	६ ६	९ ९	९ ८	३ ३	२ १	५ ५	४ ४	७ ७	६ ६
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	५	७	४	६	५	५	२	६	१
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
तिथि	१३	४	७	१०	१	४	१०	१३	४	७
योग	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७
आयु	८८	१६	११२	४०	१६	६४	४०	८८	६४	११२
व्यय	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

८ पुष्य (उत्तम) । नक्षत्राक्षर-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	१	१६२	१०९	५५	१	१६३	१०९	५५	१	१६२
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	२१७	३७९	३२५	२७१	४३३	५९५	५४१	४८७	६४९	८११
विस्तार	९, १३	१५, १७	१५, १७	१५, ९	१९, १७	२१, २३	२१, १९	१९, २१	२३, २५	२५, २७
दैर्घ्यहस्त	२४, १६	२५, २२	२१, १९	१८, ३०	२२, २५	२८, २५	२५, २८	२५, २३	२८, २५	३२, ३०
अंगुल	२, १६	६, ७	१६, २	१, २	१८, ११	८, १०	१८, ११	१५, ४	५, २३	१०, ०
जव	५, ५	३, ०	०, ७	५, ५	७, २	०, ६	२, ३	१, ५	२, ७	४, ७
दाताढि	७, ३	५, ४	१, १	७, ४	६, ७	५, ४	२, ३	९, ९	७, ६	४, ४
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	७	२	६	३	५	७	४	१	३	५
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
तिथि	११	२	५	८	१४	५	८	११	२	८
योग	४	४	४	४	८	४	४	४	४	४
आयु	५६	३२	८०	८	१०४	८०	८	५६	३२	८
व्यय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	पूर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१०९	५५	१	१६३	१०९	५५	१	१६३	१०९	५५
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	७५७	७०३	८६५	१०२७	९७३	९१९	१०८१	१२४३	११८९	११३५
विस्तार	२५, २७	२३, २५	२७, २५	२९, ३१	२७, २९	२७, २९	२९, ३१	३१, ३३	३१, ३३	३१, २९
दैर्घ्यहस्त	३०, २८	३०, २८	३२, ३४	३५, ३३	३६, ३३	३४, ३१	३७, ३४	४०, ३७	३८, ३९	३६, ३९
अंगुल	६, ०	१३, २	०, १४	९, ४	०, ४१	२, १६	६, २०	२, १६	८, १	१४, २
जव	५, ७	५, ४	७, ५	७, ०	७, ०	७, ५	५, ७	२, ०	४, ४	६, ४
दाताढि	२, २	९, ९	६, ६	२, २	१, ९	८, ७	४, ३	९, ४	७, १	५, ६
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	२	६	१	३	७	४	६	१	५	२
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	९	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
तिथि	११	१४	५	११	१४	२	८	१४	२	५
योग	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयु	५६	१०४	८०	१६	१०४	३२	८	१०४	३२	८०
व्यय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

८ पुष्य (उत्तम) । नक्षत्रद्वार–उत्तर–दक्षिण

साधितपिण्ड	१	१६३	१५९	५५	१	१६३	१०९	५५	१	१६३
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१२९७	१४५९	१४०५	१३५१	१५१३	१६७५	७६२१	१५६७	१७२९	१८९१
विस्तार	३३ ३१	३५ ३३	३३ ३५	३३ ३१	३५ ३७	३७ ३५	३७ ३५	३५ ३७	३७ ३९	३९ ४१
दैर्घ्यहस्त	३९ ४१	४१ ४४	४२ ४०	४० ४२	४३ ४०	४५ ४७	४३ ४६	४४ ४२	४६ ४४	४८ ४६
अंगुल	७ २०	१६ ५	१३ ३	२२ १४	५ २७	६ २०	१९ ७	१८ ८	१७ ८	११ ३
जव	२ १	३ १	६ ३	४ ०	४ ३	४ ५	४ ५	४ ३	४ ०	५ ७
दातादि	१ १	५ ६	४ ४	२ ३	७ ६	२ २	९ १	८ ८	३ ३	७ ७
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	४	६	३	७	२	४	१	५	७	२
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
तिथि	११	२	५	८	१४	५	८	११	२	८
योग	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयु	५६	३२	८०	८	१०४	८०	८	५६	३२	८
व्यय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१०९	५५	१	१६३	१०२	५५	१	१६३	१०९	५५
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१८३७	१७८३	१९४५	२१०७	२०१३	१९९९	२१६१	२३२३	२२६९	२२१५
विस्तार	३९ ३७	३७ ३९	३९ ४१	४१ ४३	४१ ४३	३९ ४१	४१ ४३	४३ ४५	४३ ४५	४३ ४५
दैर्घ्यहस्त	४७ ४९	४८ ४५	४९ ४७	५१ ४९	५० ४७	५१ ४८	५२ ५०	५४ ५१	५२ ५०	५१ ४९
अंगुल	२ १५	४ १७	२० १०	९ ०	१ १७	६ ८	१७ ६	० २०	१८ १०	१२ ५
जव	४ ५	४ २	७ ४	३ ०	६ ७	१ १	० १	४ २	८ १	२ ३
दातादि	६ ६	५ ४	८ ८	३ २	२ १	१ ९	४ ४	८ ७	६ ६	५ ५
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	२	७	५	७	५	१	३	५	२	६
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
तिथि	११	१४	५	११	१४	२	८	१४	२	५
योग	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयु	५६	१०४	८०	५६	१०४	३२	८	१०४	३२	८०
व्यय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

९ आश्लेषा (उत्तम)। नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	१५३	९९	४५	२०७	१५३	९९	४५	२०७	१५३	९९
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	३६९	३१५	२६१	४२३	५८५	५३१	४७७	६३९	८०१	७४७
विस्तार	१५ | १७	१५ | १७	१५ | ९	१७ | १९	२१ | २३	२१ | १९	१९ | २१	२३ | २१	२५ | २७	२५ | २३
दैर्घ्यहस्त	२४ | २१	२१ | १८	१७ | २९	२४ | २२	२७ | २५	२५ | २७	२५ | २८	२७ | ३०	३२ | २९	२९ | ३२
अंगुल	१४ | १६	० | १६	९ | ०	२१ | ६	२० | १०	६ | २३	३ | ९	१८ | १०	० | १६	२१ | ११
जव	३ | ७	० | ७	५ | ०	१ | ३	४ | ३	७ | ६	४ | ३	६ | २	७ | ०	१ | ६
दातादि	४ | ३	९ | ९	६ | २	५ | ६	४ | ४	२ | २	९ | ८	६ | ७	४ | ३	१ | २
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	३	७	४	१	१	५	२	४	६	३
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
तिथि	१२	१५	३	९	१५	३	६	१२	३	६
योग	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
आयु	७२	१२०	४८	२४	१२०	४८	९६	७२	४८	९६
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	४५	२०७	१५३	९९	४५	२०७	१५३	९९	४५	२०७
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	६९३	८५५	१०१७	९६३	९०९	१०७१	१२३३	११७९	११२५	१२८७
विस्तार	२१ | २५	२७ | २५	२९ | २७	२७ | २९	२७ | २५	२९ | ३१	३१ | ३३	३१ | ३३	२९ | ३१	३३ | ३५
दैर्घ्यहस्त	३३ | २७	३१ | ३४	३५ | ३७	३५ | ३३	३३ | ३६	३६ | ३४	३९ | ३७	३८ | ३५	३८ | ३६	३९ | ३६
अंगुल	० | १६	१६ | ४	१ | १६	१६ | ४	१६ | ८	२२ | १३	१८ | ८	० | १७	१९ | ७	० | १८
जव	० | ०	० | ६	५ | ०	० | ७	० | ४	६ | १	५ | ६	६ | ४	३ | ०	० | ४
दातादि	९ | ८	५ | ६	२ | २	९ | ९	२ | २	३ | ३	८ | ८	७ | ६	५ | ५	९ | ९
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	७	२	४	१	५	७	२	६	३	५
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
तिथि	९	१५	६	९	१२	३	९	१२	१५	६
योग	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
आयु	२४	१२०	९६	२४	७२	४८	२४	७२	१२०	९६
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

६ आश्लेषा (उत्तम) । नक्षत्रद्वार–उत्तर–दक्षिण

साधितपिण्ड	१५३	९९	४५	२०७	१५३	९९	४५	२०७	१५३	९९
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुल्यपिण्ड	१४४९	१३९५	१३४१	१५०३	१६६५	१६११	१५५७	१७१९	१८८१	१८२७
विस्तार	३३ ३५	३३ ३५	३३ ३५	३५ ३७	३७ ३९	३५ ३७	३५ ३७	३७ ३९	३९ ४१	३९ ३७
दैर्घ्यहस्त	४३ ४१	४२ ३९	४० ३८	४२ ४०	४५ ४२	४६ ४३	४४ ४२	४६ ४४	४८ ४५	४६ ४९
अंगुल	२१ ९	६ २०	१५ ७	२२ १४	० १७	० १३	११ १	११ १	५ २१	२० ९
जव	३ ५	४ २	२ ४	५ ७	० २	५ ०	५ ६	५ ५	४ १	२ ५
दातादि	५ ५	४ ३	२ ३	६ ६	१ १	१ ९	८ ८	३ ३	७ ५	५ ६
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	७	४	१	३	५	२	६	१	३	७
अंश	९	९	९	९	९	९	२	९	२	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
तिथि	१२	१५	३	९	१५	३	६	१२	३	६
योग	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
आयु	७२	१२०	४८	२४	१२०	४८	९६	७२	४८	९६
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	४५	२०७	१५३	९९	४५	२०७	१५३	९९	४५	२०७
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुल्यपिण्ड	१७७३	१९३५	२०९७	२०३३	१९८९	२१५१	२३१३	२२५९	२२०५	२३६७
विस्तार	३७ ३९	३९ ४१	४१ ४३	४१ ४३	३९ ४१	४१ ४३	४३ ४५	४३ ४५	४३ ४५	४३ ४५
दैर्घ्यहस्त	४७ ४५	४९ ४७	५१ ४८	४९ ४७	५१ ४८	५२ ५०	५३ ५१	५२ ५०	५१ ४९	५५ ४५
अंगुल	२२ ११	१४ ४	३ १८	४ ६	० १२	११ ०	१८ ९	१२ ४	३ ०	१ १४
जव	० ०	६ ५	४ ३	० ६	० २	१ ५	७ ५	७ ६	३ ०	१ ३
दातादि	४ ४	८ ८	३ २	१ १	९ ९	४ ४	७ ६	६ ६	५ ४	६ ६
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	४	६	१	६	२	४	६	३	७	२
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
तिथि	९	१५	६	९	१२	३	९	१२	१५	६
योग	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
आयु	२४	१२०	९६	२४	७२	४८	२४	७२	१२०	९६
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१० मघा (उत्तम)। नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	८९	३५	११७	१४३	८९	३५	११७	१४३	८९	३५	११७	१४३	८९	३५	११७	१४३	८९	३५	११७	१४३
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	३०५	२५१	४१३	३५९	५२१	४६७	६२९	५७५	७३७	६८३	८४५	७९१	९५३	८९९	१०६१	१००७	११६९	१११५	१२७७	१२२३
विस्तार	१५ | ९	९ | ११	१९ | १७	१७ | १५	२१ | १९	२१ | १९	२१ | २३	२३ | २१	२३ | २५	२३ | २५	२५ | २७	२५ | २७	२७ | २९	२९ | २७	२९ | ३१	२७ | २९	२९ | ३१	३१ | २९	३१ | ३३	३१ | ३३
दैर्घ्यहस्त	२० | ३३	२७ | २२	२१ | २४	२१ | २३	२४ | २७	२२ | २४	२९ | २७	२५ | २६	३२ | २९	२९ | २७	३३ | ३१	३१ | २९	३५ | ३२	३१ | ३३	३६ | ३४	३७ | ३४	४० | ३७	३५ | ३८	४१ | ३७	३९ | ३७
अंगुल	८ | २१	२१ | १९	१७ | ७	२ | २२	१३ | १०	५ | १३	२२ | ८	० | १०	१ | ११	१६ | ७	१५ | ७	७ | १५	७ | २०	० | ७	१४ | ५	७ | १७	७ | १७	२३ | १०	४ | ४	१० | ८
जव	० | ३	२ | ५	५ | ०	६ | ३	७ | २	६ | ७	७ | ३	० | २	० | ४	६ | ५	२ | १	१ | ३	१ | ५	० | १	१ | ३	१ | ३	३ | ०	२ | ६	१ | ३	७ | ६
दातादि	९ | ७	१ | ७	५ | ६	३ | ४	१ | २	८ | ८	६ | ६	३ | ३	२ | १	८ | ८	५ | ५	३ | ३	९ | ९	६ | ७	३ | ३	२ | १	७ | ६	४ | ५	१ | ८	८ | ८
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	५	७	४	६	३	५	२	४	१	३	७	२	६	१	५	७	४	६	३
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
तिथि	१०	१३	४	७	१३	१	७	१०	१	४	१०	१३	४	७	१३	१	७	१०	१	४
योग	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयु	४०	८८	६४	११२	८८	१६	११२	४०	१६	६४	४०	८८	६४	११२	८८	१६	११२	४०	१६	६४
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१० मघा (उत्तम) । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	८९	३५	११७	१४३	८९	३५	११७	१४३	८९	३५
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१३८५	१२३१	१४९६	१४३९	१६०१	१५४७	१७०९	१५५५	१८१७	१७६३
विस्तार	३३ ३५	३३ ३५	३३ ३५	३५ ३३	३५ ३७	३५ ३७	३७ ३९	३५ ३७	३९ ४१	३९ ४१
दैर्घ्यहस्त	४१ ३९	४० ३९	४५ ४२	४१ ४३	४५ ४३	४४ ४१	४६ ४३	४४ ४२	४६ ४४	४५ ४३
अंगुल	२३ १३	८ १७	१३ १५	२ १४	१८ ६	४ ११	४ ११	१० ०	१४ ७	४ ०
जव	२ ६	० २	१ ६	६ ४	७ ४	६ ४	४ ५	२ ५	२ ५	७ ०
दातादि	३ ३	२ ८	७ ६	५ ५	९ ९	८ ७	३ २	८ ८	५ ५	४ ३
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	५	२	४	१	३	७	२	२	१	५
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
तिथि	१०	१३	४	७	१३	१	७	८	१	४
योग	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयु	४०	८८	६४	११२	८८	१६	११२	८०	१६	६४
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	मर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	११७	१४३	८९	३५	१७९	१४३	८९	३५	११७	१४३
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१९२५	१८७१	२०३३	१९७९	२१४३	२०८७	२२४९	२१९५	२३५७	२३०३
विस्तार	३९ ४१	३९ ४१	४१ ४३	३९ ४१	४१ ४३	४१ ४३	४३ ४५	४१ ४३	४३ ४५	४५ ४७
दैर्घ्यहस्त	४९ ४६	४७ ४५	४९ ४७	५० ४८	५२ ४९	५० ४८	५२ ४९	५३ ५१	५४ ५२	५१ ४९
अंगुल	८ २२	२३ १५	१४ ६	१७ ६	५ १८	२१ ४	७ २३	१२ १	११ ९	४ ०
जव	५ ६	३ २	० ६	७ ३	२ ७	४ ३	२ ४	७ १	६ १	२ ०
दातादि	८ ७	६ ५	१ १	९ ९	४ ३	२ २	६ ५	५ ५	८ ८	७ ६
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	७	४	६	३	५	२	४	१	३	७
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
तिथि	१०	१३	४	७	४	१	७	१०	१	४
योग	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयु	४०	८८	६४	११२	६४	१६	११२	४०	१६	६४
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

११ पूर्वाफल्गुनी (उत्तम) । नक्षत्रद्वार–पूर्व–पश्चिम

साधितपिण्ड	२५	१८७	१३३	७९	२५	१८७	१२२	७९	२५	१८७
रुचक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	२४१	४०३	३४५	२९५	४५७	६१९	५६५	५११	६७३	८३५
विस्तार	१५ । ९	१५ । १७	१५ । १७	१५ । ११	१९ । २१	२३ । २१	२१ । २३	१९ । २१	२३ । २५	२५ । २७
दीर्घहस्त अंगुल जव	१६ । २६ १ । १८ ५ । ५	२६ । २३ २० । १६ ६ । ७	२३ । २० ४ । १२ ६ । ६	१५ । २६ १६ । १९ ० । ५	२४ । २१ १ । १८ २ । २	२६ । २९ २१ । ११ ७ । ३	२६ । २४ २१ । १३ ६ । ४	२६ । २४ २१ । ८ ४ । ०	२९ । २६ ६ । २२ २ । १	३३ । ३० ९ । २२ ५ । २
दाताङ्क	५ । ५	६ । ५	३ । २	८ । २	८ । ७	५ । ६	३ । ३	१ । १	८ । ७	५ । ४
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	६	१	५	२	४	६	३	७	२	४
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११
तिथि	८	१४	२	५	११	२	५	८	१४	५
योग	१९	१९	१९	१९	१९	१९	९६	१९	१९	१५
आयु	८	१०४	३२	८०	५६	३२	८०	८	१०४	८०
व्यय	३	२	३	३	३	३	३	३	३	३
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१३३	७९	२५	१८७	१३३	७९	२५	१८७	१३३	७९
रुचक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	७८१	७२७	८७९	१०५१	९९७	९४३	११०५	१२६७	१२१३	११५९
विस्तार	२५ । २७	२३ । २५	२७ । २५	२९ । ३१	२९ । २७	२७ । २३	१९ । ३१	३१ । ३३	३१ । ३३	३१ । २९
दीर्घहस्त अंगुल जव	३१ । २८ ५ । २१ ६ । ४	३१ । २९ १३ । १ ६ । ७	३२ । ३५ २२ । ३ २ । ७	३६ । ३३ ५ । २१ ६ । ५	३४ । ३६ ९ । २२ १ । २	३४ । ४१ २२ । ० २ । ०	३८ । ३५ २ । १५ ४ । ५	४० । ३८ २० । ३ ७ । ३	३९ । ३६ ३ । १८ १ । १	३७ । ४० ९ । ५ २ । ४
दाताङ्क	३ । २	१ । १	१ । १	३ । २	१ । १	९ । १	५ । ४	९ । ९	४ । ४	६ । ७
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	५	७	२	६	३	५	७	४	१
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११
तिथि	८	११	२	८	११	१४	५	११	१४	२
योग	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९
आयु	८	५६	३२	८	५६	१०४	८०	५६	१०४	३२
व्यय	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

११ पूर्वाफाल्गुनी (उत्तम) । नक्षत्रद्वार–पूर्व–पश्चिम

साधितपिण्ड	२५	१८७	१३३	७९	२५	१८७	१३३	७९	२५	१८७	१३३	७९	२५	१८७	१३३	७९	२५	१८७	१३३	७९
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१३२१	१४८३	१४२९	१६७५	१५३७	१६९९	१६४५	१५९१	१७५३	१९१५	१८६१	१८०७	१९६९	२१३१	२०७७	२०१३	२१८५	२३४७	२२९६	२२३९
विस्तार	३३ ३५	३५ ३७	३३ ३५	३३ ३५	३५ ३७	३७ ३९	३७ ३५	३५ ३७	३९ ३७	३९ ४१	३९ ३७	३७ ३९	३९ ४१	४३ ४५	४१ ४३	४१ ४३	४३ ४५	४३ ४५	४३ ४५	४३ ४५
दैर्घ्यहस्त	४० ३७	४२ ४०	४३ ४०	४१ ३९	४३ ४१	४५ ४३	४४ ४७	४५ ४३	४४ ४७	४९ ४६	४७ ५०	४८ ४६	५० ४८	४९ ४७	५० ४८	४९ ४६	५० ४८	५४ ५२	५३ ५०	५२ ४९
अंगुल	० १	८ २	७ १५	१६ ५	२१ १३	२३ १३	११ ०	११ ०	१२ ८	२ १४	१७ ७	२० ८	११ ०	१७ ८	१५ ७	२ १९	१९ १३	१३ ३	७ २२	१ १८
जव	६ ६	७ ०	२ २	० ७	७ ०	१ ४	१ ०	० ०	६ ४	१ ४	२ ५	१ ०	६ ५	७ ४	६ २	२ ४	४ २	७ ५	५ ७	४ १
दातादि	२ १	६ ६	५ ४	३ ३	७ ७	२ २	१ १	९ ८	३ ४	८ ७	६ ७	५ ५	९ ९	३ ३	२ २	१ ९	४ ४	८ ८	७ ६	६ ५
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	२	५	२	६	१	३	७	४	६	१	५	२	४	६	३	१	२	४	१	५
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११
तिथि	८	१४	२	५	११	२	५	८	१४	५	८	११	२	८	११	१४	५	११	१४	२
योग	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९
आयु	८	१०४	३२	४०	५६	३२	४०	८	१०४	८०	८	५६	३२	८	५६	१०४	८०	५६	१०४	३२
व्यय	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१२ उत्तराफल्गुनी । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	१७७	१२३	९६	१५	१७७	१२३	६९	१५	१७७	१२३
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	३९३	३३९	२८५	२३१	६०९	५५५	५०१	४४७	८२५	७७१
विस्तार	१५ १७	१५ १७	१५ ९	९ ११	२१ २३	२१ २३	१९ २१	१७ १९	२५ २७	२५ २३
दैर्घ्यहस्त	२६ २३	२२ १९	१९ ३१	२५ २१	२९ २६	२६ २४	२६ २३	२६ २३	३३ ३०	३० ३३
अंगुल	४ २	१३ २२	० १६	१६ ०	० ११	१० ३	८ २०	७ १२	० १३	२० १२
जव	६ ६	३ ५	० ०	० ०	० ४	२ १	७ ५	१ ५	० ३	१ ४
दातादि	६ ५	२ १	७ ५	८ ५	५ ५	३ ३	१ ९	७ ७	४ ४	२ ३
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	२	६	३	७	७	४	१	५	५	२
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
तिथि	९	१२	१५	३	१२	१५	३	६	१५	३
योग	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयु	२४	७२	१२०	४८	७२	१२०	४८	९६	१२०	४८
व्यय	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	पूर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	६९	१५	१७७	१२३	६९	१५	१७७	१२३	९६	१५
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	७१७	६६३	१०४१	९९७	९३३	८७९	१२५७	१२०३	११४९	१०९५
विस्तार	२३ २५	२३ २५	२९ ३१	२७ २९	२७ २९	२५ २७	३१ ३३	३१ ३३	२९ ३१	२९ ३१
दैर्घ्यहस्त	३१ २८	२८ ३१	३५ ३३	३६ ३४	३४ ३२	३५ ३२	४८ ३८	३८ ३७	३९ ३७	३७ ३५
अंगुल	४ १६	१९ १३	२१ १३	२२ ९	१३ ४	३ १३	१३ २	१९ १६	१४ १	१८ ७
जव	१ ३	६ ६	४ ७	७ १	३ १	७ २	१ १	२ ०	३ ४	२ ६
दातादि	१ ९	७ ८	२ २	२ २	८ ८	७ ६	९ ९	४ ४	६ ६	४ ४
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	६	३	३	६	४	१	१	१	२	६
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
तिथि	६	९	६	६	९	१२	६	९	१२	१५
योग	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयु	९६	२४	४८	९६	२४	७२	९६	२४	७२	१२०
व्यय	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१२ उत्तराफल्गुनी । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	१७७	१२३	६९	१५	१७७	१२३	६९	१५	१७७	१२३	६९	१५	१७७	१२३	६९	१५	१७७	१२३	६९	१५
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१४७३	१४१९	१३६५	१३११	१६८९	१६३५	१५८१	१५२७	१९०५	१८५१	१७९७	१७४३	२१२१	२०६७	२०१३	१९५९	२३३७	२२८३	२२२९	२१७५
त्रिस्तार	३५/३३	३३/३५	३५/३३	३३/३१	३७/३९	३५/३७	३५/३७	३५/३३	३९/४१	३९/४१	३९/३७	३७/३९	४१/४३	४१/४३	४१/४३	३९/४१	४३/४५	४३/४५	४३/४५	४१/४३
दैर्घ्यहस्त	४२/४४	४३/४०	३९/४१	३८/४२	४५/४३	४६/४४	४५/४२	४३/४६	४८/४६	४७/४५	४६/४८	४७/४४	५१/४९	५०/४८	४९/४६	५०/४७	५४/५१	५३/५०	५१/४९	५३/५०
अंगुल	२/१५	०/१५	०/८	१७/१४	१५/७	१६/४	४/१७	१५/६	२०/११	११/३	१/१३	२/१६	१७/७	१०/१	२/१९	५/१८	८/२२	२/१७	२०/१२	१/१४
जव	०/५	०/५	०/६	४/५	४/३	१/४	१/४	१/४	२/१	१/४	७/५	५/५	४/७	२/५	३/४	४/६	३/३	२/५	१/६	१/०
दानादि	६/६	४/४	२/३	९/२	२/२	१/१	९/८	७/८	७/७	६/६	५/५	४/३	३/३	२/२	१/९	९/८	८/७	७/६	५/५	५/४
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	६	३	७	४	४	१	५	२	२	३	३	७	७	४	१	५	५	२	६	३
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
तिथि	९	१२	१५	३	१२	१५	३	६	१५	३	६	९	३	६	९	१२	६	९	१२	१५
योग	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयु	२४	७२	१२०	४८	७२	१२०	४८	९६	१२०	४८	९६	२४	४८	९६	२४	७२	९६	२४	७२	१२०
व्यय	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१३ हस्त । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	११३	५९	५	१६७	११३	५९	५	१६७	११३	५९	५	१६७	११३	५९	५	१६७	११३	५९	५	१६७
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	३२९	२७५	२२१	३८३	५४५	४९१	४३७	५९९	७६१	७०७	६५३	८१५	९७७	९२३	८६९	१०३१	११९३	११३९	१०८५	१२४७
विस्तार	१५ | १७	१५ | १३	९ | १३	१७ | १५	२१ | १९	१९ | २१	१९ | १७	२३ | २१	२५ | २७	२३ | २५	२५ | २३	२५ | २७	२७ | २९	२७ | २९	२७ | २५	२९ | ३१	३१ | ३३	२९ | ३१	२९ | ३१	३१ | ३३
दैर्घ्यहस्त	२१ | १९	१९ | २१	२४ | १७	२२ | २५	२५ | २८	२५ | २३	२३ | २५	२६ | २८	३० | २८	३० | २८	२६ | २८	३२ | ३०	३६ | ३३	३४ | ३१	३२ | ३४	३५ | ३३	३८ | ३६	३९ | ३६	३७ | ३५	४० | ३७
अंगुल	२२ | ८	० | ३	१३ | ०	१२ | १२	२२ | १६	२० | ९	० | १७	१ | १२	१० | ४	१७ | ६	२ | ९	१४ | ४	४ | १६	४ | १९	४ | १७	१३ | ६	११ | ३	६ | १७	९ | ०	५ | १८
जव	३ | ४	० | ६	३ | ०	६ | ६	७ | ३	२ | १	० | ०	० | ५	४ | ४	६ | ६	७ | ३	३ | ४	३ | ३	३ | ६	३ | ६	२ | २	५ | ५	५ | ६	७ | ०	३ | ७
दातोदि	१ | १	७ | ८	७ | ३	४ | ५	२ | ३	९ | ९	६ | ७	५ | ५	२ | २	५ | ९	७ | ७	४ | ४	१ | ९	८ | ७	६ | ६	२ | २	७ | ४	६ | ५	४ | ३	९ | ८
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	७	४	१	३	५	२	६	१	३	७	४	६	१	५	२	४	६	३	७	२
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३
तिथि	७	१०	१३	४	१०	१३	१	७	१३	१	४	१०	१	४	७	१३	४	७	१०	१
योग	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
आयु	११२	४०	८८	६४	४०	८८	१६	११२	८८	१६	६४	४०	१६	६४	११२	८८	६४	११२	४०	१६
व्यय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१३ हस्त । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	११३	५९	५	१६७	११३	५९	५	१६७	११३	५९
क्षेपक	१२९६	१२५६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१४०९	१३५५	१३०१	१४६३	१६२५	१५७१	१५१७	१६७९	१८४१	१७८७
विस्तार	३३ / ३५	३३ / ३५	३३ / ३१	३३ / ३५	३७ / ३५	३५ / ३७	३५ / ३७	३७ / ३५	३९ / ३७	३७ / ३९
दैर्घ्यहस्त	४२ / ४०	४१ / ३८	३९ / ४१	४४ / ४१	४३ / ४६	४४ / ४१	४३ / ४१	४५ / ४७	४७ / ४९	४८ / ४५
अंगुल	१६ / ६	१ / १७	१० / २३	८ / १९	२२ / १०	२१ / ११	८ / ०	९ / २३	४ / १८	७ / ३
जव	६ / १	४ / १	१ / २	० / २	० / २	२ / ०	२ / ०	१ / ३	७ / १	१ / ४
छातादि	४ / ४	३ / २	१ / १	५ / ६	२ / १	८ / ८	७ / ६	२ / २	६ / ६	५ / ४
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	४	१	५	७	२	६	३	५	७	४
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३
तिथि	७	१०	१३	४	१०	१३	१	७	१३	१
योग	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
आयु	११२	४०	८८	५६	४०	८८	१६	११२	८८	१६
व्यय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	५	१६७	११३	५९	५	१६७	११३	५९	५	१६७
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१७३३	१८९५	२०५७	२००३	१९४९	२१११	२२७३	२२१९	२१६५	२३२७
विस्तार	३७ / ३५	३९ / ४१	४१ / ४३	३९ / ४१	३७ / ४१	४१ / ४३	४३ / ४५	४३ / ४५	४१ / ४३	४३ / ४५
दैर्घ्यहस्त	४६ / ४९	४८ / ४६	५० / ४७	५१ / ४८	४९ / ४१	५१ / ४९	५२ / ५०	५१ / ४९	५२ / ५०	५४ / ५१
अंगुल	२० / १२	१४ / ५	४ / २०	० / २०	२३ / १२	११ / २	२० / १२	१४ / ७	१९ / ८	२ / १७
जव	१ / ३	१ / २	१ / १	६ / ४	३ / ७	६ / २	४ / २	४ / ४	२ / ३	६ / १
छातादि	३ / ४	७ / ७	२ / १	१ / ९	८ / ८	३ / ३	६ / ६	५ / ५	४ / ४	८ / ७
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	३	५	२	६	१	१	७	४	६
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३
तिथि	४	१०	१	४	७	१३	४	७	१०	१
योग	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
आयु	६४	४०	१६	६४	११२	८८	६४	११२	४०	१६
व्यय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१४ चित्रा। नक्षत्रद्वार–पूर्व–पश्चिम

साधितपिण्ड	४९	२११	१५७	१०३	४९	२११	१५७	१०३	४९	२११
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	२६५	४२७	३७३	३१९	४८१	६४३	५८९	५३५	६९७	८५९
विस्तार	१५ / ९	१७ / १९	१५ / १७	१५ / १७	१७ / १९	२३ / २१	२१ / २३	१९ / २१	२३ / २५	२५ / २७
दैर्घ्यहस्त	१७ / २९	२५ / २२	२४ / २१	२१ / १८	२८ / २५	२७ / ३०	२८ / २५	२८ / २५	३० / २७	३४ / ३१
अंगुल	१६ / १०	२ / ११	२० / २२	६ / १७	७ / ७	२२ / १४	१ / १४	३ / ११	७ / २१	८ / १९
जव	० / ५	६ / ३	६ / ५	३ / १	१ / ५	७ / ७	१ / ५	६ / ३	२ / १	५ / ४
दातादि	४ / ३	७ / ६	४ / ३	१ / ९	१ / ९	८ / ७	५ / ४	३ / २	९ / ८	६ / ५
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	५	७	४	१	६	५	२	६	१	३
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
तिथि	५	११	१४	२	८	१४	२	५	११	२
योग	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयु	८०	५६	१०४	३२	८	१०४	३२	८०	५६	३२
व्यय	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१९७	१०३	४९	२११	१५७	१०३	४९	२११	१५७	१०३
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	८०५	७५१	९१३	१०७५	१०२१	९६७	११२९	१२९१	१२३७	११८३
विस्तार	२३ / २७	२५ / २३	२७ / २५	२९ / ३१	२९ / २७	२७ / २५	२९ / ३१	३१ / ३३	३१ / ३३	३१ / ३३
दैर्घ्यहस्त	३५ / २९	३० / ३२	३३ / ३६	३७ / ३४	३५ / ३७	३५ / ३८	३८ / ३६	४१ / ३९	३९ / ३७	३८ / ३५
अंगुल	० / १९	० / १५	१९ / १२	१ / १६	४ / १९	१९ / १६	२२ / १०	१५ / ३	२१ / २१	३ / २१
जव	० / ४	७ / ५	४ / ५	५ / २	७ / ४	४ / ३	२ / १	४ / ०	५ / ५	७ / ५
दातादि	४ / ३	६ / २	६ / ८	४ / ३	२ / २	९ / १	५ / ५	१ / १	८ / ८	७ / ६
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	७	४	६	१	५	२	४	६	३	७
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
तिथि	५	८	१४	५	८	११	२	८	११	१४
योग	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयु	८०	८	१०४	८०	८	५६	३२	८	५६	१०४
व्यय	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१४ चित्रा । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	४९	२११	१५७	१०३	४९	२११	१५७	१०३	४९	२११	१५७	१०३	४९	२११	१५७	१०३	४९	२११	१५७	१०३
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१३४५	१५०७	१४५३	१३९९	१५६१	१७३२	१६६९	१६१५	१७७७	१९३९	१८८५	१८३१	१९९३	२१५५	२१०१	२०४७	२२०९	२३७१	२३१७	२२६३
विस्तार	३१ ३३	३५ ३७	३५ ३३	३३ ३५	३५ ३७	३७ ३९	३७ ३९	३७ ३५	३९ ३७	३९ ४१	३९ ४१	३९ ४१	३९ ४१	४१ ४३	४१ ४३	४१ ४३	४३ ४५	४३ ४५	४३ ४५	४३ ४५
दैर्घ्यहस्त	४३ ४०	४३ ४०	४१ ४४	४२ ३९	४४ ४२	४६ ४४	४५ ४३	४३ ४६	४५ ४८	४९ ४७	४८ ४५	४६ ४४	५१ ४८	५२ ५०	५१ ४८	४९ ४७	५१ ४९	५५ ५२	५३ ५१	५२ ५०
अंगुल	९ १८	१ १६	१२ १	९ २३	१५ ४	१४ ४	२ १९	१६ ५	१३ ०	१७ ७	८ १३	२२ १४	२ १४	१३ २	५ २०	२२ १४	८ २	४ १६	२१ ११	१५ ७
जव	२ १	३ ६	३ ०	३ ३	३ ४	१ ३	५ १	१ ५	४ ५	२ ०	० ७	७ ५	४ ५	४ ६	७ ५	२ ४	७ १	० ६	१ ६	१ ०
दातादि	३ २	७ ६	५ ५	४ ३	८ ८	३ ३	२ २	९ १	४ ५	८ ७	७ ६	५ ५	९ ९	४ ४	३ ३	१ १	५ ५	९ ८	७ ७	६ ६
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	२	४	१	५	४	२	६	३	५	७	४	१	३	५	२	६	१	३	७	५
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
तिथि	५	११	१४	२	८	१४	२	५	११	२	५	८	१४	५	८	११	२	८	११	१४
योग	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयु	८०	५६	१०४	३२	८	१०४	३२	८०	५६	३२	८०	८	१०४	८०	८	५६	३२	८	५६	१०४
व्यय	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१५ स्वाती। नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	२०१	१४७	९३	३९	२०१	१४७	९३	३९	२०१	१४७
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
भुज्यपिण्ड	४१७	३६३	३०९	२५५	६३३	५७९	५२५	४७१	८४९	७९५
विस्तार	१७ / १९	१५ / १७	१५ / १७	१५ / १३	२३ / २१	२१ / २३	२१ / १९	१९ / १७	२७ / २५	२५ / २७
दैर्घ्यहस्त	२४ / २१	२४ / २१	२० / १८	१७ / १९	२७ / ३०	२७ / २५	२५ / २७	२४ / २७	३१ / ३३	३१ / २०
अंगुल	१२ / २२	४ / ८	१४ / ४	० / १४	१२ / ३	१३ / ३	० / १५	१८ / १७	१० / २३	१९ / १०
जव	६ / ६	६ / ४	३ / २	० / ६	४ / ३	६ / १	० / १	७ / ०	५ / ०	२ / ५
वातादि	६ / ५	४ / ३	९ / ९	५ / ५	६ / ७	४ / ४	१ / २	८ / ९	५ / ५	३ / ३
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	१	१	२	६	६	३	७	४	४	१
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
तिथि	६	९	१२	१५	५	१२	१५	३	१२	१५
योग	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
आयु	९६	२४	७२	१२०	२४	७२	१२०	४८	७२	१२०
व्यय	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	९३	३९	२०१	१४७	९३	३९	२०१	१४७	९३	३९
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
भुज्यपिण्ड	७४१	६८७	१०६५	१०११	९५७	९०३	१२८१	१२२७	११७३	१११९
विस्तार	२५ / २३	२३ / २५	२९ / ३१	२९ / २७	२९ / २७	२७ / २९	३१ / ३३	३१ / ३३	३१ / ३३	२९ / ३१
दैर्घ्यहस्त	२९ / ३२	२९ / २७	३६ / ३४	३५ / ३७	३३ / ३५	३३ / ३१	४१ / ३८	३९ / ३७	३७ / ३५	३८ / ३६
अंगुल	१५ / ५	२० / १२	१७ / ८	२० / १०	० / १०	१० / ३	७ / ११	९ / ४	२० / १३	१४ / २
जव	३ / २	७ / ०	३ / ४	६ / ५	८ / ५	५ / ३	६ / ४	२ / ३	१ / १	१ / ३
वातादि	१ / २	८ / ८	३ / ३	८ / २	८ / १	७ / ७	१ / ९	८ / ८	६ / ६	६ / ५
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	५	२	२	६	३	७	७	४	१	५
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
तिथि	३	६	१५	३	६	९	३	६	९	१२
योग	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
आयु	४८	९६	१२०	४८	९६	२४	४८	९६	२४	७२
व्यय	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१५ स्वाती । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	२०१	१४७	९३	३९	२०१	१४७	९३	३९	२०१	१४७
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१४९७	१४४३	१३८९	१३३५	१७१३	१६५९	१६०५	१५५१	१९२९	१८७५
विस्तार	३५ ३७	३५ ३७	३३ ३५	३३ ३५	३७ ३९	३७ ३५	३५ ३७	३५ ३७	३९ ४१	३९ ४१
दैर्घ्यहस्त	४२ ४०	४१ ३९	४२ ३९	४० ३८	४६ ४३	४४ ४७	४५ ४३	४४ ४१	४९ ४७	४८ ४५
अंगुल	१८ ११	५ ०	२ १६	१० ३	७ २२	२० ९	२० ९	७ २२	११ १	१६ १७
जव	४ ०	४ ०	३ ४	७ ३	१ १	१ ५	४ १	४ ०	१ १	२ ४
दातादि	६ ६	५ ४	४ ३	२ २	३ २	१ २	९ ९	८ ७	८ ८	७ ६
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	५	२	६	३	३	१	४	१	१	५
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
तिथि	६	९	१२	१५	९	१२	१५	३	१२	१५
योग	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
आयु	९६	२४	७२	१२०	२४	७२	१२०	४८	७२	१२०
व्यय	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	९३	३९	२०१	१४७	९३	३९	२०१	१४७	९३	३९
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१८२१	१७६७	२१४५	२०९१	२०३७	१९८३	२३६१	२३०७	२२५३	२१९९
विस्तार	३७ ३९	३७ ३९	४१ ४३	४१ ४३	४१ ४३	३९ ४१	४३ ४५	४३ ४५	४३ ४५	४३ ४५
दैर्घ्यहस्त	४८ ४६	४७ ४५	५२ ४९	५१ ४८	४९ ४९	५० ४८	५४ ५२	५३ ५१	५२ ५०	५१ ४८
अंगुल	१६ १६	१८ ७	७ २१	० १५	११ ९	२० ९	२१ ११	५ ६	९ १	१ २०
जव	२ ५	१ ३	५ २	० १	५ ०	२ ०	६ २	५ ३	४ ५	१ ७
दातादि	५ ५	४ ४	४ ३	२ २	१ १	९ ९	८ ८	७ ७	६ ६	५ ४
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	२	६	६	३	७	४	४	१	५	२
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
तिथि	३	६	१५	३	६	९	३	६	९	१२
योग	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
आयु	४८	९६	१२०	४८	९६	२४	४८	९६	२४	७२
व्यय	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१६ विशाखा । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	१३७	८३	२९	१९१	१३७	८३	२९	१९१	१३७	८३	२९	१९१	१३७	८३	२९	१९१	१३९	८३	२९	१९१
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	३५३	२९९	२४५	४०७	५६९	५१५	४६१	६२३	७८५	७३१	६७७	८३९	१००१	९४७	८९३	१०५५	१२१७	११६३	११०९	१२७१
विस्तार	१७ | १५	१५ | १३	१३ | ११	१७ | १९	२१ | २३	२१ | १९	१९ | १७	२१ | २३	२५ | २७	२५ | २३	२३ | २५	२५ | २७	२९ | २७	२७ | २९	२७ | २९	२९ | ३१	३१ | ३३	३१ | ३३	३१ | २९	३१ | ३३
दैर्घ्यहस्त	२० | २३	१९ | २३	१८ | २२	२३ | २१	२७ | २४	२४ | २७	२४ | २७	२९ | २७	३१ | २९	२९ | ३१	२९ | २७	३३ | ३१	३४ | ३७	३५ | ३२	३३ | ३०	३६ | ३४	३९ | ३६	३७ | ३५	३५ | ३८	४१ | ३८
अंगुल	१७ | १२	२२ | ०	२० | ६	२२ | ३	२ | १७	१२ | २	६ | २	१६ | २	९ | १	५ | २२	१० | १	१३ | १	१२ | १	१ | १२	१ | १९	९ | १	६ | १८	१२ | ५	१८ | ५	० | १२
जव	६ | ६	३ | ०	२ | ४	७ | ३	२ | ६	५ | ४	३ | ७	० | १	५ | ६	६ | ५	३ | ६	४ | ६	३ | ६	६ | २	६ | ०	१ | ०	२ | ०	३ | ७	५ | ६	० | ३
क्षतादि	२ | ३	८ | ९	५ | ७	५ | ५	४ | ३	१ | २	८ | ९	६ | ६	३ | ३	१ | १	७ | ८	५ | ५	२ | २	९ | ८	७ | ६	३ | ३	८ | ७	६ | ६	४ | ५	९ | ९
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	:	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	६	३	७	२	४	१	५	७	२	६	३	५	७	४	५	३	५	२	६	१
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
तिथि	४	७	१०	१	७	१०	१३	४	१०	१३	१	७	१३	१	४	१०	१	४	७	१३
योग	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयु	६४	११	४०	१६	११२	४०	८८	६४	४०	८८	१६	११२	८८	१६	६४	४०	१६	६४	११२	८८
व्यय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१६ विशाखा । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	१३७	८३	२९	१९१	१३७	८३	२९	१९१	१३७	८३
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१४३३	१३७९	१३२५	१४८७	१६४९	१५९५	१५४१	.७०३	१८६५	१८११
विस्तार	३३ / ३५	३३ / ३५	३३ / ३५	३५ / ३७	३५ / ३७	३५ / ३७	३५ / ३७	३७ / ३९	३९ / ४१	३९ / ३७
दैर्घ्यहस्त	४३ / ४०	४१ / ३९	४० / ३७	४२ / ४०	४७ / ४४	४५ / ४३	४४ / ४१	४६ / ४३	४७ / ४५	४६ / ४८
अंगुल	१० / २१	१८ / ९	३ / २०	११ / ४	२ / १३	१३ / २	० / १५	० / १६	१९ / ११	१० / २३
जव	१ / ८	७ / ५	५ / ५	५ / ४	६ / ५	३ / ५	६ / ५	६ / ४	६ / ४	४ / ०
दातादि	५ / ४	३ / ३	२ / १	६ / ६	२ / १	९ / ९	८ / ७	३ / २	६ / ६	५ / ५
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	३	७	४	६	१	२	२	४	६	३
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
तिथि	४	७	१०	१	७	१०	१३	४	१०	१३
योग	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयु	६४	११२	४०	१६	११२	४०	८८	६४	४०	८८
व्यय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	२९	१९१	१३७	८३	२९	१९१	१३७	८३	२९	१९१
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१७५७	१९१९	२०८१	२०२७	१९७३	२१३५	२२९७	२२४३	२१८९	२३५१
विस्तार	३७ / ३९	३९ / ४१	४१ / ४३	४१ / ४३	३९ / ४१	४१ / ४३	४३ / ४५	४३ / ४५	४१ / ४३	४३ / ४५
दैर्घ्यहस्त	४७ / ४५	४९ / ४६	५० / ४८	४९ / ४७	५० / ४८	५२ / ४९	५३ / ५१	५२ / ४९	५३ / ५०	५४ / ५२
अंगुल	१८ / १	४ / १९	१८ / ९	१० / ३	१४ / ३	१ / १५	१० / १	३ / २०	९ / २१	१६ / ५
जव	१ / २	७ / २	१ / ४	४ / ४	१ / ०	६ / ५	० / ०	७ / २	३ / ६	१ / ७
दातादि	४ / ४	८ / ७	२ / २	१ / १	९ / ९	४ / ३	७ / ७	६ / ६	५ / ४	८ / ८
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	७	२	४	१	५	७	२	६	३	५
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
तिथि	१	७	१३	१	४	१०	१	४	७	१३
योग	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयु	१६	११२	८८	१६	६४	४०	१६	६४	११२	८८
व्यय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१७ अनुराधा । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	७३	१९	१८१	१२७	७३	१९	१८१	१२७	७३	१९	१८१	१२७	७३	१९	१८१	१२७	७३	१९	१८१	१२७
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
शुद्धपिण्ड	२८९	२३५	३९७	३४३	५०५	४५१	६१३	५५९	७२१	६६७	८२९	७७५	९३७	८८३	१०४५	९९१	११५३	१०९९	१२६१	१२०७
विस्तार	१५, १७	१३, ११	१७, १९	१५, १७	२१, १९	१९, १७	२३, २१	२१, २३	२३, २५	२३, २५	२५, २७	२५, २७	२७, २९	२७, २५	२९, ३१	२९, २७	३१, ३३	२९, ३१	३१, ३३	३१, ३३
दैर्घ्यहस्त	१९, १७	१८, २१	२३, २०	२२, २०	२४, २६	२३, २६	२६, २९	२६, २४	३१, २८	२९, २६	३३, ३०	३१, २८	३४, ३२	३२, ३५	३६, ३३	३४, ३६	३७, ३४	३७, ३५	४०, ३८	३८, ३६
अंगुल	६, ०	१, ६	८, २१	२०, ४	१, १३	१७, १२	१५, ४	१४, ७	८, २	०, १६	३, १६	०, १६	१६, ७	१६, ७	०, ७	४, १६	४, २२	२१, १०	१६, ५	२२, १
जव	३, ०	७, ४	४, ४	६, ६	१, ७	५, ६	५, ५	७, २	३, १	०, २	६, १	०, १	७, ४	७, ५	६, ०	१, १	५, ४	५, ७	२, १	४, ६
दातादि	८, ७	५, ६	५, ४	२, २	१, १	७, ८	५, ६	३, ३	१, ९	७, ७	५, ४	२, २	८, ८	६, ७	३, २	१, १	६, ५	४, ४	९, ९	७, ७
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	४	१	७	७	२	६	१	५	७	४	६	३	५	२	४	१	३	७	२	६
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७
तिथि	२	५	११	१४	५	८	१४	२	८	११	२	५	११	१४	५	८	१४	२	८	११
योग	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२
आयु	३२	८०	५६	१०४	८०	८	१०४	३२	८	५६	३२	८०	५६	१०४	८०	८	१०४	३२	८	५६
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१७ अनुराधा । नक्षत्रद्वार–उत्तर–दक्षिण

साधितपिण्ड	७३	१९	१८१	१२७	७३	१९	१८१	१२७	७३	१९	१८१	१२७	७३	१९	१८१	१२७	७३	१९	१८१	१२७
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१३६९	१३१५	१४७७	१४२३	१५८५	१६३१	१६९३	१६३९	१८०१	१७४७	१९०९	१८५५	२०१७	१९६३	२१२५	२०७१	२२३३	२१७९	२३४१	२२८७
विस्तार	३३ ३७	३३ ३५	३५ ३७	३३ ३५	३७ ३५	३७ ३५	३७ ३९	३७ ३५	३९ ४१	३९ ३९	३९ ४१	३९ ४१	४१ ४३	३९ ४१	४१ ४३	४१ ४३	४३ ४५	४१ ४३	४३ ४५	४३ ४५
दैर्घ्यहस्त	४१ ३७	३९ ३७	४२ ३९	४३ ४०	४२ ४५	४४ ४६	४५ ४३	४४ ४६	४६ ४३	४७ ४४	४८ ४६	४७ ४५	४९ ४६	५० ४१	५१ ४९	५० ४८	५१ ५९	५३ ५०	५४ ५२	५३ ५०
अंगुल	११ ०	२० १३	४ १२	३ १५	२० ६	१ १४	१८ ९	७ १९	४ २२	५ १९	२३ १३	१३ ५	४ २१	८ २१	२० १०	२१ ४	२२ १५	३ १६	१० ०	४ १९
जव	५ ०	३ ६	६ ०	० ६	१ ७	६ ३	१ ७	१ ७	२ २	१ १	६ २	४ ७	५ ६	० १	० ०	२ ०	३ ०	४ १	५ ४	४ ६
दातादि	३ २	१ १	६ ५	५ ४	८ ९	१ १	२ २	१ १	५ ४	४ ३	७ ७	६ ६	१ ९	९ ८	३ ३	२ २	५ ५	५ ४	८ ८	७ ६
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	५	७	४	६	६	५	२	४	१	३	७	३	७	१	५	७	४	६	३
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७
तिथि	२	५	११	१४	५	८	१४	२	८	११	२	५	११	१४	५	८	१४	२	८	११
योग	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२
आयु	३२	८०	५६	१०४	८०	८	१०५	३२	८	५६	३२	८०	५६	१०४	८०	८	१०४	३२	८	५६
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१८ ज्येष्ठा। नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साक्षितपिण्ड	९	१७१	११७	६३	९	१७१	११७	६३	९	१७१
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	२२५	३८७	३३३	२७९	४४१	६०३	५४९	४९५	६५७	८१९
विस्तार	९/१३	१५/१७	९/१५	१५/१३	१९/२१	२३/२१	२१/२३	२१/१९	२२/२५	२७/२५
दैर्घ्यहस्त	२५/१७	२५/२२	३७/२२	१८/२१	२३/२१	२६/२८	२६/२३	२३/२६	२८/२६	३०/३२
अंगुल	०/७	९/१८	०/४	१४/११	५/०	५/१७	३/२०	१३/१	१३/६	८/१८
जव	०/५	५/३	०/६	३/१	०/०	२/१	३/७	६/२	४/६	०/२
दातादि	७/४	५/४	१/२	८/८	७/६	५/५	३/२	९/१	७/७	४/४
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	२	४	१	५	७	२	६	३	५	७
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
तिथि	१५	६	९	१२	३	९	१२	१५	६	१२
योग	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
आयु	१२०	९६	२४	७२	४८	२४	७२	१२०	९६	७२
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	पूर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साक्षितपिण्ड	११७	६३	९	१७१	११७	६३	९	१७१	११७	६३
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	७६५	७११	८७३	१०३५	९८१	९२७	१०८९	१२५१	११९७	११४३
विस्तार	२५/२७	२५/२३	२७/१५	२७/२९	२७/२९	२७/२९	३१/३३	३१/३३	३१/३३	३१/२९
दैर्घ्यहस्त	३०/२८	२८/३०	३२/३४	३८/३५	३६/३३	३४/३१	३५/३३	४०/३७	३८/३६	३६/३९
अंगुल	१४/८	१०/२२	८/२२	८/१६	८/१९	८/२३	३/०	८/२१	१४/६	२०/९
जव	३/०	४/६	०/१	०/४	०/७	०/१	१/०	४/७	६/४	७/७
दातादि	२/२	९/९	६/६	३/२	१/९	८/७	४/३	९/७	७/७	५/६
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	४	१	३	५	२	७	१	३	७	४
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
तिथि	१५	३	९	१५	३	६	१२	३	६	९
योग	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
आयु	१२०	४८	२४	१२०	४८	९६	७२	४८	९६	२४
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१८ ज्येष्ठा । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	९	१७१	११७	६३	९	१७१	११७	६३	९	१७१
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
शुद्धपिण्ड	१२९५	१४६७	१४१३	१३५९	१५२१	१६८३	१६२९	१५७५	१७३७	१८९९
विस्तार	३३ | ३५	३५ | ३७	३३ | ३५	३३ | ३५	३७ | ३९	३७ | ३९	३७ | ३५	३५ | ३७	३७ | ३९	३९ | ४१
दैर्घ्यहस्त	३९ | ३७	४१ | ३९	४२ | ४०	४१ | ३८	४३ | ३९	४५ | ४३	४४ | ४६	४५ | ४२	४६ | ४४	४८ | ४६
अंगुल	१३ | २	२० | १५	१९ | ८	४ | १९	१० | ०	११ | ३	० | १३	० | १४	२२ | १३	१६ | ७
जव	१ | ६	८ | ५	५ | ७	३ | २	७ | ०	५ | ५	५ | ०	० | ७	५ | ०	५ | ५
दातादि	१ | १	५ | ५	४ | ४	३ | २	७ | ६	२ | ३	१ | १	८ | ८	३ | ३	७ | ७
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	६	१	५	२	४	६	३	७	२	४
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
तिथि	१५	६	९	१२	३	९	१२	१५	६	१२
योग	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
आयु	१२०	९६	२४	७२	४८	२४	७२	१२०	९६	७२
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	११७	६३	९	१७१	११७	६३	९	१७१	११७	६३
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
शुद्धपिण्ड	१८४५	१७९१	१९५३	२११५	२०६१	२००७	२१६९	२३३१	२२७७	२२२३
विस्तार	३९ | ४१	३७ | ३९	३९ | ४१	४१ | ४३	४१ | ४३	४१ | ४३	४१ | ४३	४३ | ४५	४३ | ४५	४३ | ४५
दैर्घ्यहस्त	४७ | ४५	४८ | ४५	५० | ४७	५१ | ४९	५० | ४७	४८ | ४६	५२ | ५०	५३ | ५१	५२ | ५०	५१ | ४९
अंगुल	७ | ०	९ | २१	१ | १५	१४ | ४	६ | २२	२२ | १६	२१ | १०	५ | १९	२२ | १४	१४ | ९
जव	३ | ०	६ | ५	६ | २	० | ४	४ | ३	७ | १	३ | ५	० | २	७ | ३	० | ५
दातादि	६ | ५	५ | ४	९ | ८	३ | ३	२ | १	९ | ९	४ | ४	८ | ७	६ | ६	५ | ५
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	५	७	२	६	३	५	७	३	५
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
तिथि	१५	३	१२	१५	३	६	१२	३	६	९
योग	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
आयु	१२०	४८	७२	१२०	४८	९६	७२	४८	९६	२४
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१९ मूल । नक्षत्रद्वार–उत्तर–दक्षिण

साधितपिण्ड	१६१	१०७	५३	२१५	१६१	१०७	५३	२१५	१६१	१०७
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	३७७	३२३	२६९	४३१	५६९	५३९	४८५	६४७	८०९	७३१
विस्तार	१७ / १५	१७ / १५	१५ / १३	१९ / १७	२१ / २३	२१ / १९	१९ / २१	२३ / २१	२५ / २७	२५ / २३
दैर्घ्यहस्त	२२ / २५	१९ / २१	१७ / २०	२२ / २५	२८ / २५	२५ / २८	२५ / २३	२८ / ३०	३२ / २९	२९ / ३१
अंगुल	४ / ३	० / १२	२२ / १६	१७ / ८	५ / १८	१६ / ८	१२ / २	३ / २१	८ / २३	५ / २२
जव	२ / २	० / ६	३ / ५	३ / ४	६ / ६	० / ६	५ / २	१ / २	५ / १	६ / ५
दातादि	४ / ५	९ / १	६ / ७	६ / ७	५ / ४	२ / ३	९ / ८	७ / ७	४ / ३	१ / १
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	५	२	६	१	३	७	४	६	१	५
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९
तिथि	१	४	७	१३	४	७	१०	१	७	१०
योग	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३
आयु	१६	६४	११२	८८	६४	११२	४०	१६	११२	४०
व्यय	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	५३	२१५	१६१	१०७	५३	२१५	१६१	१०७	५३	२१५
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	७०१	८६३	१०२५	९७१	९१७	१०७९	१२४१	११८७	११३३	१२९५
विस्तार	२३ / २५	२५ / २७	२९ / २५	२७ / २९	२७ / २५	२९ / ३५	३१ / ३३	३१ / ३३	३१ / २९	३३ / ३५
दैर्घ्यहस्त	३० / २८	३४ / ३१	३५ / ४१	३५ / ३३	३३ / ३६	३७ / ३४	४० / ३७	३८ / ३५	३६ / ३९	३९ / ३७
अंगुल	११ / १	१२ / २३	८ / ०	२३ / ११	२३ / १८	४ / १९	० / १४	६ / २३	१३ / १	५ / ०
जव	४ / ०	४ / १	२ / ०	१ / १	१ / ०	८ / ३	६ / ४	७ / २	६ / ५	७ / ०
दातादि	९ / ९	६ / ५	२ / २	९ / ९	७ / ८	५ / ३	९ / ८	७ / ६	५ / ६	१ / ९
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	२	४	६	३	७	२	४	१	५	७
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९
तिथि	१३	४	१०	१३	१	७	१३	१	४	१०
योग	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३
आयु	८८	६४	४०	८८	१६	११२	८८	१६	६४	४०
व्यय	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

१६ मूल । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	१६१	१०७	५३	२१५	१६१	१०७	५३	२१५	१६१	१०७	५३	२१५	१६१	१०७	५३	२१५	१६१	१०७	५३	२१५
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१४५७	१४०३	१३४९	१५११	१६७३	१६१९	१५६५	१७२७	१८८९	१७३५	१७८१	१९४३	२१०५	२०५१	१९९७	२१५९	२३२१	२२६७	२२१३	२३७५
विस्तार	३३ ३५	३३ ३५	३३ ३५	३५ ३७	३७ ३९	३५ ३७	३५ ३७	३७ ३९	३९ ४१	३९ ३७	३७ ३९	३९ ४१	४१ ४३	३९ ४१	३९ ४१	४१ ४३	४३ ४५	४३ ४५	४१ ४३	४३ ४५
दैर्घ्यहस्त	५४ ४१	४२ ४०	४० ३८	४३ ४०	४५ ४२	४६ ४३	४४ ४२	४६ ४४	४८ ४६	४७ ४९	४८ ४५	४९ ४७	५१ ४८	५२ ५०	५१ ४८	५२ ५०	५३ ५१	५२ ५०	५३ ५१	५५ ५२
अंगुल	३ १५	१२ २	२१ १३	४ १०	५ २१	६ १८	१७ ६	१६ ६	१० १	२ १४	३ १६	११ ९	८ २३	१४ ०	५ ७	१५ ५	२३ १३	१७ ९	११ १२	५ १८
जव	५ १	३ ०	१ ०	१ १	१ ४	१ ३	१ १	२ ६	४ ६	४ २	२ ०	५ ४	२ ७	१ ४	० ०	६ २	४ ७	२ १	७ २	५ ५
वातादि	६ ५	४ ४	२ २	७ ६	२ १	१ ९	८ ८	३ ३	७ ६	६ ६	५ ४	८ ८	३ २	२ २	१ ९	४ ४	७ ७	६ ६	५ ५	९ ८
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	२	६	३	५	७	४	१	३	५	२	६	१	३	३	४	६	१	५	२	४
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९
तिथि	१	४	७	१३	६	७	१०	१	७	१०	१३	४	१०	१३	१	७	१३	१	४	१०
योग	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३
आयु	१६	६४	११२	८८	६४	११२	४०	१६	११२	४०	८८	६४	४०	८८	१६	११२	८८	१६	६४	४०
व्यय	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२० पूर्वाषाढा । नक्षत्रद्वार–उत्तर–दक्षिण

साधितपिण्ड	९७	४३	२०५	१५१	९७	४३	२०५	१५१	९७	४३
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	३१३	२५९	४२१	३६७	५२९	४७५	६३७	५८३	७४५	६९१
त्रिस्तार	१५ | ९	१५ | ९	१९ | १७	१५ | १७	२१ | २३	१९ | २१	२३ | २१	२१ | २३	२५ | २३	२३ | २५
दैर्घ्यहस्त	२० | ३३	१७ | २८	२२ | २४	२४ | २१	२५ | २३	२५ | २२	२७ | ३०	२७ | २५	२९ | ३२	३० | २७
अंगुल	२० | १८	६ | १८	३ | १८	११ | १४	४ | ०	० | १४	१६ | ८	१६ | ८	१९ | ९	१ | १५
जव	६ | ३	३ | २	६ | ३	२ | १	५ | ०	० | ७	६ | ०	६ | २	२ | ३	० | ३
दानादि	९ | ८	६ | २	६ | ६	४ | ३	२ | १	८ | ८	६ | ७	४ | ४	१ | २	५ | ८
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	३	७	२	६	१	५	७	४	६	३
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
तिथि	१३	२	८	११	२	५	११	१४	५	८
योग	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
आयु	१०४	३२	८	५६	३२	८०	५६	१०४	८०	८
व्यय	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	२०५	१५१	९७	४३	२०५	१५१	९७	४३	२०५	१५१
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	८५३	७९९	९६१	९०७	१०६९	१०१५	११७७	११२३	१२८५	१२३१
त्रिस्तार	२५ | २७	२५ | २७	२७ | २९	२७ | २५	२९ | ३१	२९ | २७	३१ | ३३	२९ | ३१	३१ | ३३	३१ | ३३
दैर्घ्यहस्त	३४ | ३१	३१ | २९	३५ | ३३	३३ | ३६	३६ | ३४	३५ | ३७	३७ | ३५	३८ | ३६	४१ | ३८	३९ | ३७
अंगुल	२ | १४	२३ | १४	१४ | ३	१४ | ६	२० | ११	० | १४	२३ | ०	१७ | ५	१० | २२	१७ | ७
जव	७ | २	० | २	२ | २	२ | ६	६ | ५	० | २	२ | ६	३ | ३	७ | ३	० | २
दानादि	६ | ५	३ | ३	९ | ९	७ | ८	४ | ३	१ | २	६ | ६	५ | ५	१ | ९	८ | ८
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	५	२	४	१	३	७	२	६	१	५
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
तिथि	१४	२	८	११	२	५	११	१४	५	८
योग	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
आयु	१०४	३२	८	५६	३२	८०	५६	१०४	८०	८
व्यय	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२० पूर्वाषाढा । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	९७	४३	२०५	१५१	९७	४३	२०५	१५१	९७	४३
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१३९३	१३३९	१५०१	१४४७	१६०९	१५५५	१७१७	१६६३	१८२५	१७७१
विस्तार	३३ / ३५	३३ / ३५	३३ / ३५	३३ / ३५	३५ / ३७	३५ / ३७	३७ / ३९	३५ / ३७	३९ / ४१	३७ / ३९
दैर्घ्यहस्त	४२ / ३९	४० / ३८	४५ / ४२	४३ / ४१	४५ / ४३	४४ / ४२	४६ / ४४	४७ / ४४	४६ / ४४	४७ / ४५
अंगुल	५ / १९	१३ / ६	११ / २१	२० / ८	२३ / ११	१० / ०	९ / ०	१२ / २२	१७ / १२	२० / १०
जव	१ / २	७ / १	५ / २	३ / २	२ / ५	२ / ५	६ / ५	२ / ६	७ / ६	६ / ०
दातादि	४ / ३	२ / १	६ / ६	५ / ५	२ / १	८ / ८	३ / ३	२ / १	५ / ५	४ / ४
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	७	४	६	३	५	२	४	१	३	७
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
तिथि	१४	२	८	११	२	५	११	१४	५	८
योग	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
आयु	१०४	३२	८	५६	३२	८०	५६	१०४	८०	८
व्यय	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	२०५	१५१	९७	४३	२०५	१५१	९७	४३	२०५	१५१
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१९३३	१८७९	२०४१	१९८७	२१४९	२०९५	२२५७	२२०३	२३६५	२३११
विस्तार	३९ / ४१	३९ / ४१	४१ / ४३	३९ / ४१	४१ / ४३	४१ / ४३	४३ / ४५	४१ / ४३	४३ / ४५	४३ / ४५
दैर्घ्यहस्त	४९ / ४७	४८ / ४५	४९ / ४७	५० / ४८	५२ / ४९	५१ / ४८	५२ / ५०	५३ / ५१	५५ / ५२	५३ / ५१
अंगुल	१३ / ९	४ / २०	१८ / ११	२२ / ८	१० / २३	२ / १७	११ / ३	१७ / ५	० / १३	१८ / ८
जव	४ / ३	२ / ०	६ / १	६ / ५	० / ४	३ / १	६ / ६	४ / ५	० / ३	० / ४
दातादि	८ / ९	७ / ६	१ / १	९ / ९	४ / ३	३ / २	६ / ६	५ / ५	८ / ८	७ / ७
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	२	६	१	५	७	४	१	२	५	२
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
तिथि	१४	२	८	११	२	५	११	१४	५	८
योग	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
आयु	१०४	३२	८	५६	३२	८०	५६	१०४	८०	८
व्यय	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२१ उत्तराषाढा । नक्षत्रद्वार–उत्तर–दक्षिण

साधितपिण्ड	३३	१९५	१४१	८७	३३	१९५	१४१	८७	३३	१९५	१४१	८७	३३	१९५	१४१	८७	३३	१९५	१४१	८७
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	२४९	४११	३५७	३०३	४६५	६२७	५७३	५१९	६८१	८४३	७८९	७३५	८९७	१०५९	१००५	९५१	१११३	१२७५	१२२१	११६७
विस्तार	९ , १३	१७ , १९	१७ , १५	१५ , ९	१९ , १७	२१ , २३	२१ , २३	२१ , १९	२३ , २५	२५ , २७	२५ , २३	२५ , २३	२७ , २५	२९ , ३१	२७ , २९	२७ , २१	२९ , ३१	३१ , ३३	३३ , ३१	३१ , २९
दैर्घ्यहस्त	२७ , १९	२४ , २१	२१ , २३	२० , ३३	२४ , २७	२९ , २७	२७ , २४	२४ , २७	२९ , २७	३३ , ३१	३१ , ३४	२९ , ३१	३३ , ३५	३६ , ३४	३७ , ३४	३५ , ३१	३८ , ३५	४१ , ३८	३७ , ३९	३७ , ४०
अंगुल	१६ , ३	४ , १५	० , १९	४ , १६	११ , ८	२० , ६	६ , २२	१७ , ७	१४ , ५	१७ , ५	१३ , ७	९ , २२	५ , २०	१२ , २०	५ , १५	५ , १९	९ , २१	३ , १५	० , ९	१५ , ५
जव	० , ६	२ , १	० , २	५ , ०	३ , ४	५ , २	७ , ०	१ , ६	४ , ६	२ , ३	४ , २	५ , ०	२ , २	३ , ७	२ , ५	३ , ०	१ , ५	१ , २	० , ३	४ , ६
दातादि	१ , ६	६ , ५	७ , ३	९ , ७	८ , ९	६ , ६	४ , ३	१ , १	८ , ८	४ , ५	३ , ४	१ , १	७ , ७	३ , ३	१ , १	९ , ८	५ , ४	१ , ९	७ , ८	६ , ७
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	३	७	४	६	१	५	२	४	६	३	७	२	४	१	५	७	२	६	३
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
तिथि	१२	३	६	९	१५	६	९	१२	३	९	१२	१५	६	१२	१५	३	९	१५	३	६
योग	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४
आयु	७२	४८	९६	२४	१२०	९६	२४	७२	४८	२४	७२	१२०	९६	७२	१२०	४८	२४	१२०	४८	९६
व्यय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२१ उत्तराषाढा । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	३३	१९५	१४१	८७	३३	१९५	१४१	८७	३३	१९५
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१३२९	१४९१	१४३७	१३८३	१५४५	१७०७	१६५३	१५९९	१७६१	१९२३
विस्तार	३३ | ३१	३३ | ३५	३३ | ३५	३३ | ३५	३५ | ३७	३७ | ३९	३७ | ३९	३९ | ३७	३७ | ३९	३९ | ४१
दैर्घ्यहस्त	४० | ४२	४५ | ४२	४३ | ४१	४१ | ३९	४४ | ४१	४६ | ४३	४४ | ४२	४१ | ४३	४७ | ४५	४९ | ४६
अंगुल	६ | २१	४ | १४	१३ | १	२१ | १२	३ | १८	३ | १८	१६ | ९	० | ५	१४ | १६	७ | २१
जव	४ | ०	३ | २	१ | ३	७ | ३	३ | १	२ | ४	२ | २	० | १	२ | ०	३ | ५
दातादि	२ | २	७ | ६	५ | ५	३ | ३	८ | ७	३ | ३	१ | १	८ | ९	४ | ४	८ | ७
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	५	७	४	१	३	५	२	६	१	३
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
तिथि	१२	३	६	९	१५	६	९	१२	३	९
योग	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४
आयु	७२	४८	९६	२४	१२०	९६	२४	७२	४८	२४
व्यय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१४१	८७	३३	१९५	१४१	८७	३३	१९५	१४१	८७
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१८६९	१८१५	१९७७	२१३९	२०८५	२०३१	२१९३	२३५५	२३०१	२२४७
विस्तार	३९ | ४१	३९ | ३७	३९ | ४१	[illegible] | ४३	४१ | ४३	३९ | ४१	४१ | ४३	४३ | ४५	४३ | ४५	४१ | ४३
दैर्घ्यहस्त	४७ | ४५	४६ | ४९	५० | ४८	५२ | ४९	५० | ४८	५२ | ४९	५३ | ५१	५४ | ५२	५३ | ५१	५४ | ५२
अंगुल	२२ | १४	१२ | १	१६ | ५	४ | ६	२० | ११	१ | १२	११ | ०	१८ | ८	१८ | ३	१८ | ६
जव	१ | ०	७ | २	५ | २	१ | ०	४ | ६	७ | ७	५ | ०	३ | ०	२ | ५	६ | १
दातादि	६ | ६	५ | ६	९ | ९	४ | ३	२ | २	२ | १	५ | ४	८ | ८	७ | ७	६ | ६
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	७	४	६	१	५	२	४	६	३	७
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
तिथि	१२	१५	६	१२	१५	३	९	१५	३	६
योग	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४
आयु	७२	१२०	९६	७२	१२०	४८	२४	१२०	४८	९६
व्यय	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२२ श्रवण । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	१८५	१३१	७७	२३	१८५	१३१	७७	२३	१८५	१३१
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	४०१	३४७	२९३	२३९	६१७	५६३	५०९	४५५	८३३	७७९
विस्तार	१५, १७	१५, १७	१५, १३	१३, ९	२३, २१	२१, २३	१९, २१	१९, १७	२५, २७	२५, २७
दैर्घ्यहस्त	२६, २३	२३, २०	१९, २२	१८, २६	२६, २९	२६, २४	२६, २४	२३, २६	२३, ३०	३१, २८
अंगुल	१५, १४	३, ९	१२, १३	९, १३	१९, ९	१९, ११	१८, ५	२२, १७	७, २०	३, २०
जव	३, १	२, ७	६, ०	२, ३	७, १	३, ३	७, ६	६, ४	५, ३	६, ३
द्वारादि	६, ५	३, २	८, ९	५, ९	५, ६	३, ३	१, १	७, ८	४, ४	३, २
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	४	१	५	२	२	६	३	७	७	४
अंश	३	३	२	३	३	२	२	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२
तिथि	१३	१	४	७	१	४	७	१०	४	७
योग	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११
आयु	८८	१६	६४	११२	१६	६४	११२	४०	६४	११२
व्यय	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	७७	२३	१८५	१३१	७७	२३	१८५	१३१	७७	२३
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	७२५	६७१	१०४९	९५५	९४१	८८७	१२६५	१२११	११५७	११०३
विस्तार	२५, २३	२३, २५	२९, ३१	२९, २७	२७, २९	२७, २५	३१, ३३	३१, ३३	३१, ३३	२९, ३१
दैर्घ्यहस्त	२९, ३५	२९, २६	३६, ३३	३४, ३६	३४, ३२	३२, ३५	४०, ३८	३१, ३६	३७, ३५	३८, ३५
अंगुल	०, १२	४, २०	४, २०	७, ३	२०, १०	२०, ११	१९, ८	१, १७	७, १	०, १४
जव	०, ४	१, १	१, १	१, ३	४, ६	४, ७	३, ०	४, ०	६, ५	६, ०
द्वारादि	९, १	८, ७	३, २	१, १	८, ९	६, ७	९, ९	८, ७	६, ६	६, ४
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	५	५	२	६	३	३	७	४	१
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२
तिथि	१०	१३	७	१०	१३	१	१०	१३	१	४
योग	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११
आयु	४०	८८	११२	४०	८८	१६	४०	८८	१६	६४
व्यय	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२२ श्रवण । नक्षत्रद्वार-उत्तर-दक्षिण

साधितपिण्ड	१८५	१३१	७७	२३	१८५	१३१	७७	२३	१८५	१३१	७७	२३	१८५	१३१	७७	२३	१८५	१३१	७७	२३
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१४८१	१४२७	१३७३	१३१९	१६९७	१६४३	१५८९	१५३५	१९१३	१८५९	१८०५	१७५१	२१२९	२०७५	२०२१	१९६७	२३४५	२२९१	२२३७	२१८३
विस्तार	३३/३५	३२/३५	३३/३५	३३/३५	३७/३९	३५/३७	३५/३७	३५/३७	३९/४१	३९/४१	३७/३९	३७/३९	४१/४३	३९/४१	४१/४३	४१/४३	४३/४५	४३/४५	४३/४५	४१/४३
दैर्घ्यहस्त	४४/४२	४३/४०	४१/३९	३९/३७	४६/४३	४६/४४	४५/४२	४३/४१	४९/४६	४७/४५	४८/४६	४७/४४	५१/४९	५३/५१	४९/४७	४७/४५	५४/५१	५३/५०	५२/४९	५३/५०
अंगुल	२१/७	५/१८	१४/५	२३/१८	१०/१२	२२/१०	९/२२	२०/११	७/१५	१७/८	१८/६	७/२१	२२/१२	३/१२	७/०	२३/१७	१२/२१	६/२१	०/७	५/१८
जव	१/४	६/४	४/४	२/३	६/२	५/२	५/६	५/६	३/७	१/२	७/६	६/४	२/२	१/७	०/०	३/७	७/३	६/७	४/१	७/३
दातादि	६/६	५/४	३/३	१/१	३/२	१/१	९/८	७/७	८/७	६/६	५/५	४/३	३/३	३/३	१/९	८/८	८/७	७/६	६/५	५/४
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	५	२	६	५	३	७	४	३	१	२	५	२	६	३	७	७	४	१	५
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	२	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४।	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२२	२२	२२	२२	२३	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२
तिथि	१३	१	४	७	१	४	७	१०	४	७	१०	१३	७	१०	१३	१	१०	१३	१	४
योग	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११
आयु	८८	१६	६४	११२	१६	६४	११२	४०	६४	११२	४०	८८	११२	४०	८८	१६	४०	८८	१६	६४
व्यय	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२३ धनिष्ठा । नक्षत्रद्वार–पूर्व–पश्चिम

साधितपिण्ड	१२१	६७	१३	१७५	१२१	६७	१३	१७५	१२१	६७
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	३३७	२८३	२२९	३९१	५५३	४९९	४४५	६०७	७६९	७१५
विस्तार	१५ १७	१५ ९	१३ ९	१७ १९	२१ २३	१९ २१	१९ १७	२३ २१	२५ २७	२५ २३
दैर्घ्यहस्त	१२ १९	१८ ३१	१७ २५	२३ २०	२६ २४	२६ २३	२३ २६	२६ २८	३० २८	२८ ३१
अंगुल	११ १९	२० १०	१४ १०	० १४	८ १	६ १८	१० ४	९ २२	१० ११	१४ २
जव	२ ६	६ ५	६ ५	० ०	० ०	३ २	१ २	३ ०	२ ४	३ १
दातादि	२ १	७ ५	४ ८	४ ४	३ ३	१ ९	७ ८	५ ५	२ २	९ १
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
धार	२	६	३	५	७	४	१	३	५	२
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३
तिथि	११	१४	२	८	१४	२	५	११	२	५
योग	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
आयु	५६	१०४	३२	८	१०४	३२	८०	५६	३२	८०
व्यय	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१३	१७५	१२१	६७	१३	१७५	१२१	६७	१३	१७५
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	६६१	८२३	९८५	९३१	८७७	१०२९	१२०१	११४७	१०९३	१२५५
विस्तार	२३ २५	२५ २७	२७ २९	२७ २९	२७ २५	२९ २७	३१ ३३	३१ ३३	२९ ३१	३१ ३३
दैर्घ्यहस्त	२८ २६	३२ ३०	३६ ३३	३४ ३२	३२ ३५	३५ ३८	३८ ३६	३७ ३४	३७ ३५	४० ३८
अंगुल	१७ ११	२२ ११	११ २२	११ २	११ २	१९ ११	१७ ९	० १८	१६ ६	११ १
जव	६ ०	१ ४	४ ७	४ ४	४ ०	७ ५	६ ५	० ३	४ २	५ ०
दातादि	७ ७	४ ४	१ ९	८ ८	६ ७	२ ३	७ ७	५ ५	४ ४	९ ९
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
धार	६	१	३	७	४	६	१	५	२	४
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२३	२३	२३	२३	२३	३२	२३	२३	२३	२३
तिथि	८	१४	५	८	११	२	८	११	१४	५
योग	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
आयु	८	१०४	८०	८	५६	३२	८	५६	१०४	८०
व्यय	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२३ धनिष्ठा । नक्षत्रद्वार–पूर्व–पश्चिम

साधितपिण्ड	१२१	६७	१३	१७५	१२१	६७	१३	१७५	१२१	६७
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१४१७	१३६३	१३०९	१४३१	१६३३	१५७९	१५२५	१६८७	१८४९	१७९५
विस्तार	३३ / ३५	३३ / ३५	३१ / ३३	३३ / ३५	३७ / ३९	३५ / ३७	३५ / ३७	३७ / ३९	३९ / ४१	३९ / ३७
दैर्घ्यहस्त	४२ / ४०	४१ / ३८	४२ / ३९	४३ / ४०	४४ / ४१	४५ / ४२	४३ / ४१	४५ / ४३	४७ / ४५	४६ / ४८
अंगुल	२२ / ११	७ / २२	५ / १६	८ / २१	९ / २०	२ / १६	१३ / १५	१४ / ६	९ / २	० / १२
जव	४ / ५	२ / ५	३ / ०	६ / २	६ / ७	१ / २	५ / २	२ / १	७ / २	५ / ३
व्रातादि	४ / ४	३ / २	२ / १	५ / ४	१ / ९	९ / ८	७ / ७	२ / २	६ / ६	५ / ५
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	६	३	७	२	४	१	५	७	२	६
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३
तिथि	११	१४	२	८	१४	२	५	११	२	५
योग	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
आयु	५६	१०४	३२	८	१०४	३२	८०	५६	३२	८०
व्यय	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१३	१७५	१२१	६७	१३	१७५	१२१	६७	१३	१७५
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१७४१	१९०३	२०६५	२०११	१९५७	२११९	२२८१	२२२७	२१७३	२३३५
विस्तार	३७ / ३९	३९ / ४१	४१ / ४३	३९ / ४१	३९ / ४१	४१ / ४३	४३ / ४५	४३ / ४५	४१ / ४३	४३ / ४५
दैर्घ्यहस्त	४७ / ४४	४८ / ४६	५० / ४८	५१ / ४९	५० / ४८	५१ / ४९	५३ / ५०	५१ / ४९	५३ / ५०	५४ / ५१
अंगुल	१ / १५	१९ / ९	८ / ८	१३ / १	४ / १७	१६ / ६	१ / १८	१९ / ११	० / १२	७ / २१
जव	२ / ३	१ / ६	६ / ०	४ / १	२ / ०	३ / ६	१ / ५	० / ६	० / ७	२ / ३
व्रातादि	४ / ३	७ / ७	२ / २	१ / १	९ / ९	३ / ३	७ / ६	५ / ५	४ / ४	८ / ७
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	३	५	७	४	१	३	५	२	६	१
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३
तिथि	८	१४	५	८	११	२	८	११	१४	५
योग	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
आयु	८	१०४	८०	८	५६	३२	८	५६	१०४	८०
व्यय	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२४ शतभिषा (उमत्त)। नक्षत्रद्वार–पूर्व–पश्चिम

साधितपिण्ड	५७	३	१६५	१११	५७	३	१६५	१११	५७	३	१६५	१११	५७	३	१५५	१११	५७	३	१६५	१११
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	२७३	२१९	३८१	३२७	४८९	४३५	५९७	५४३	७०५	६५१	८१३	७५९	९२१	८६७	१०२९	९७५	११३७	१०८३	१२४५	११९१
विस्तार	१३ । १५	९ । १३	१५ । १७	१५ । १७	१९ । २१	१९ । १७	२१ । २३	२१ । १९	२५ । २३	२१ । २३	२५ । २७	२५ । २३	२७ । २९	२७ । २५	२९ । २७	२५ । २७	२९ । ३१	२९ । ३१	३१ । ३३	३१ । ३३
दैर्घ्यहस्त	२१ । १८	२४ । १६	२५ । २२	२१ । १९	२५ । २३	२२ । २५	२८ । २५	२५ । २८	२८ । ३०	२१ । २८	३२ । ३०	३० । ३३	३४ । ३१	३२ । ३४	३५ । ३८	३९ । ३६	३९ । ३६	३७ । ३४	४० । ३८	३८ । ३६
अंगुल	० । ४	८ । ५	९ । ९	१९ । ५	१७ । ६	२१ । १४	१० । २२	२० । १४	४ । १५	० । ११	१२ । ३	८ । ०	११ । १८	५ । १६	११ । २	० । २	४ । १६	८ । २२	३ । १	१० । १
जव	० । ६	० । ४	३ । ७	२ । ५	५ । ७	४ । [illegible]	२ । ७	५ । ०	६ । ५	० । ४	४ । ६	५ । ०	५ । २	२ । ३	५ । ५	० । ५	० । २	२ । ३	७ । ०	१ । ४
दातादि	७ । ७	७ । ३	५ । ४	१ । १	९ । ८	६ । ७	७ । ४	२ । ३	९ । ९	७ । ७	४ । ४	२ । २	८ । ७	६ । ६	२ । ३	१ । १	६ । ५	४ । ३	९ । ९	७ । ७
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	७	४	६	३	५	२	४	१	३	७	२	६	१	५	७	४	६	३	५	२
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४
तिथि	९	१२	३	६	१२	१५	६	९	१५	३	९	१२	३	६	१२	१५	६	९	१५	३
योग	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	८२	१२	१२	१२
आयु	२४	७२	४८	९६	७२	१२०	९६	२४	१२०	४८	२४	७२	.४८	९६	७२	१२०	९६	२४	१२०	४८
व्यय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	पूर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२४ शतभिषा (उत्तम)। नक्षत्रद्वार–पूर्व–पश्चिम

साधितपिण्ड	५७	३	१६५	१११	५७	३	१६५	१११	५७	३
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१४२८
मुख्यपिण्ड	१३५३	१२९९	१४६१	१४०७	१५६९	१५१५	१६७७	१६२३	१७८५	१४३१
विस्तार	३३ ३५	३३ ३५	३३ ३५	३३ ३५	३५ ३७	३५ ३७	३७ ३९	३५ ३७	३५ ३७	३५ ३७
वैर्घ्यहस्त	४१ ३८	३९ ३७	४४ ४१	४२ ४०	४४ ४२	४३ ४०	४५ ४३	४६ ४३	५१ ४८	४९ ४६
अंगुल	० १५	८ २	६ १७	१५ ४	१९ ७	६ २२	७ ०	८ २१	० ५	१३ १८
जव	० ६	६ ६	४ ७	२ ६	७ ५	६ ८	६ ०	७ ०	७ ७	७ ७
वातादि	२ २	१ १	६ ५	४ ४	८ ८	७ ६	२ १	१ ९	५ ५	४ ३
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
घार	४	१	३	७	२	६	१	५	७	४
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४
तिथि	९	१२	३	६	१२	१५	६	९	१५	३
योग	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
आयु	२४	७२	४८	९६	७२	१२०	९६	२४	१२०	४८
व्यय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	पूर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१६५	१११	५७	३	१६५	१११	५७	३	१६५	१११
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१८९३	१८३९	२००१	१९४७	२१०९	२०५५	२२१७	२१६३	२३२५	२२७१
विस्तार	३९ ४१	३९ ४१	३९ ४१	३९ ४१	४१ ४३	३९ ४१	४३ ४५	४१ ४३	४३ ४५	४३ ४५
वैर्घ्यहस्त	४८ ४६	४७ ४८	५१ ४८	४९ ४७	५१ ४९	५२ ५०	५१ ४९	५२ ५०	५४ ५१	५२ ५०
अंगुल	१२ ४	१३ २०	७ १९	२२ ११	१० १	१६ २	१३ ६	१८ ७	१ १६	१९ ११
जव	७ १	५ ४	३ ३	१ ५	४ १	५ ७	३ ३	१ २	५ ०	४ २
वातादि	७ ७	६ ५	१ ०	८ ८	३ २	२ २	५ ५	४ ४	८ ७	६ ६
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
घार	६	३	६	७	४	१	३	७	२	६
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४
तिथि	९	१२	३	६	१२	१५	६	९	१५	३
योग	१२	१२	१२	१२	१२	१२	८२	१२	१२	१२
आयु	२४	७२	४८	९६	७२	१२०	९६	२४	१२०	४८
व्यय	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२५ पूर्वा भाद्रपदा (उत्तम) । नक्षत्रद्वार–पूर्व–पश्चिम

साधितपिण्ड	२०१	१५५	१०१	४७	२०९	१५५	१०१	४७	२०९	१५५	१०१	४७	२०९	१५५	१०१	४७	२०९	१५५	१०१	४७
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	४२५	७२१	३१७	२६३	६४१	५८७	५३३	४७९	८५७	८०३	७४९	६५५	१०७३	१०१९	६९५	९११	१२८७	१२३५	११८१	११२७
विस्तार	१७ | १९	१७ | १५	१५ | १३	१५ | ९	२३ | २५	२१ | २३	२१ | २३	१९ | २१	२५ | २७	२५ | २७	२५ | २७	२३ | २५	२९ | ३१	२९ | ३१	२७ | २९	२७ | २९	३१ | ३३	३१ | ३३	३१ | ३३	२९ | ३१
दैर्घ्यहस्त	२५ | २२	२१ | २४	२१ | २४	१७ | २९	२७ | २५	२७ | २५	२५ | २३	२५ | २२	३४ | ३१	३२ | २९	२९ | २७	३० | २६	३७ | ३४	३५ | ३२	३५ | ३३	३३ | ३१	४१ | ३९	३९ | ३७	३८ | ३५	३८ | २६
अंगुल	० | ८	१९ | १७	३ | ९	१२ | १६	२० | १५	२२ | १२	९ | ४	५ | १९	६ | १७	२ | १७	२३ | १७	१ | ४	० | १४	३ | २०	१७ | ६	१७ | १३	१३ | ०	२० | १०	२ | १८	२० | ८
जव	० | ७	१ | ५	२ | २	६ | ०	७ | ३	७ | ५	१ | १	० | ०	६ | ६	७ | ६	० | ६	२ | ६	० | ६	२ | १	६ | ५	६ | २	७ | ०	१ | १	२ | ७	५ | ४
दातादि	६ | ६	३ | ४	१ | २	६ | ३	६ | ६	४ | ४	२ | २	९ | ८	६ | ५	४ | ३	१ | १	८ | ७	३ | ३	२ | १	९ | ९	७ | ७	१ | ९	८ | ८	७ | ६	५ | ५
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	३	७	४	१	१	५	२	६	६	३	७	४	४	१	५	२	२	६	३	७
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	२	२	३	३	३	२	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२५	२५	२५	२५	२५	२२	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
तिथि	१०	१३	१	४	१३	१	४	७	१	४	७	१०	४	७	१०	१३	७	१०	१३	१
योग	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२५	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६
आयु	४०	८८	१६	६४	८८	१६	६४	११२	१६	६४	११२	४०	६४	११२	४०	८८	११२	४०	८८	१६
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२५ पूर्वाभाद्रपदा (उत्तम) । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	२०९	१५५	१०१	४७	२०९	१५५	१०१	४७	२०९	१५५
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१५०५	१४५१	१३९७	१३४३	१७२१	१६६७	१६१३	१५५९	१९३७	१८८३
विस्तार	३५ / ३७	३३ / ३५	३३ / ३५	३३ / ३५	३७ / ३९	३७ / ३९	३७ / ३९	३५ / ३७	३९ / ४१	३९ / ४१
दैर्घ्यहस्त	४३ / ४०	४३ / ४१	४२ / ३९	४० / ३८	४६ / ४४	४५ / ४२	४३ / ४१	४४ / ४२	४९ / ४७	४८ / ४५
अंगुल	० / ७	२३ / १०	८ / २१	१६ / ८	१२ / ३	१ / १७	१४ / ८	१३ / ३	१६ / ५	६ / २२
जव	० / ६	२ / ८	० / ८	६ / ६	२ / १	० / ७	२ / ५	० / २	० / ७	६ / २
वातादि	६ / ६	५ / ५	४ / ३	२ / २	३ / ३	२ / १	९ / ९	८ / ८	८ / ८	७ / ६
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	७	४	१	५	५	२	६	३	३	७
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
तिथि	१०	१३	१	४	१३	१	४	७	१	४
योग	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६
आयु	४०	८८	१६	६४	८८	१६	६४	११२	१६	६४
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	१०१	४७	२०९	१५५	१०१	४७	२०९	१५५	१०१	४७
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१८२९	१७७५	२१५३	२०९९	२०४५	१९९१	२३६९	२३१५	२२६१	२२०७
विस्तार	३९ / ४१	३७ / ३९	४१ / ४३	४१ / ४३	३९ / ४१	३९ / ४१	४३ / ४५	४३ / ४५	४३ / ४५	४३ / ४५
दैर्घ्यहस्त	४६ / ४४	४७ / ४५	५२ / ५०	५१ / ४८	५२ / ४९	५१ / ४८	५५ / ५२	५३ / ५१	५२ / ५०	५१ / ४९
अंगुल	२१ / १४	२३ / १२	१२ / १	४ / १९	१० / २२	१ / १३	२ / १५	२० / १०	१३ / ६	८ / १
जव	४ / ५	३ / २	२ / ५	७ / १	२ / ०	२ / २	९ / ४	१ / ५	७ / ०	० / १
वातादि	५ / ५	४ / ४	४ / ४	३ / २	२ / १	६ / ०	९ / ८	७ / ७	६ / ६	५ / ५
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	३	१	५	६	२	६	६	३	७	४
अंश	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
द्रव्य	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
तिथि	७	१०	४	७	१०	१३	७	१०	१३	१
योग	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६
आयु	११२	४०	६४	११२	४०	८८	११२	४०	८८	१६
व्यय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२६ उत्तराभाद्रपदा (उत्तम)। नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	१४५	९१	३७	१९९	१४५	९१	३७	१९९	१४५	९१
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८
मुख्यपिण्ड	३६१	३०७	२५३	४१५	५७७	५२३	४६९	६३१	७९३	७३९
विस्तार	१५ | १७	१५ | ९	१५ | ९	१७ | १९	२१ | २३	२१ | १९	१९ | २१	२३ | २५	२५ | २७	२५ | २७
दैर्घ्यहस्त	२४ | २१	२० | ३४	१६ | २८	२४ | २१	२७ | २५	२४ | २७	२४ | २२	२७ | २५	३१ | २८	२९ | २७
अंगुल	१ | ५	११ | ८	२० | २	० | २०	११ | २	२१ | १२	१६ | ८	१० | ५	१७ | ८	१३ | ८
जव	३ | ५	२ | ०	६ | ६	० | २	३ | १	६ | ५	३ | ०	३ | ६	२ | ७	३ | ७
दातादि	४ | ३	९ | ८	५ | २	६ | ५	४ | ४	१ | १	८ | ८	६ | ६	३ | २	१ | १
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	१	४	२	४	६	३	७	२	४	१
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६
तिथि	८	११	१४	५	११	१४	२	८	१४	२
योग	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३
आयु	८	५६	१०४	८०	५६	११२	३२	८	१०४	३२
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्वदि	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	३७	१९९	१४५	९१	३७	१९९	१४५	९१	३७	१९९
क्षेपक	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	६८५	८४७	१००९	९५५	९०१	१०६३	१२२५	११७१	१११७	१२७९
विस्तार	२३ | २५	२५ | २७	२७ | २९	२७ | २९	२५ | २७	२९ | ३१	३१ | ३३	३१ | ३३	३१ | ३३	३१ | ३३
दैर्घ्यहस्त	२९ | २७	३३ | ३१	३७ | ३४	३५ | ३२	३६ | ३३	३६ | ३४	३९ | ३७	३७ | ३५	३६ | ३३	४१ | ३८
अंगुल	१८ | ९	२१ | ८	८ | १९	८ | २२	० | ८	१५ | ७	१२ | २	१८ | ११	० | २०	६ | १८
जव	६ | ५	२ | ७	७ | ०	७ | ३	७ | ७	६ | २	३ | ७	५ | ५	६ | ३	२ | २
दातादि	८ | ८	५ | ५	२ | १	८ | ८	८ | ७	३ | ३	८ | ८	६ | ६	६ | ४	१ | ९
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	१	७	२	६	३	५	७	४	१	३
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६
तिथि	५	११	२	५	८	१४	५	८	११	२
योग	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३
आयु	८०	५६	३२	८०	८	१०४	८०	८	५६	३२
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२६ उत्तरा भाद्रपदा (उत्तम) । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	१४५	९१	३७	१९९	१४५	९१	३७	१९९	१४५	९१
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८
मुख्यपिण्ड	१३४१	१३८७	१३३३	१४९५	१६५७	१६०३	१५४९	१७११	१८७३	१८१९
विस्तार	३३ / ३५	३३ / ३५	३३ / ३५	३५ / ३७	३७ / ३९	३७ / ३९	३५ / ३७	३७ / ३९	३९ / ४१	३९ / ४१
दैर्घ्यहस्त	४३ / ३८	३७ / ३९	३७ / ३५	४२ / ३६	४४ / ४२	४३ / ४१	४४ / ४१	४६ / ४३	४८ / ४५	४६ / ४४
अंगुल	१६ / ७	२३ / १५	२३ / ५	१७ / १४	१८ / ११	७ / २	६ / २०	५ / २०	० / १६	१५ / ८
जव	० / ६	२ / १	२ / ४	१ / ७	१ / ६	६ / ४	१ / ६	६ / ७	५ / ३	३ / ६
वातादि	५ / २	४ / ३	८ / ८	६ / २	१ / १	९ / ९	८ / ७	२ / २	७ / ६	५ / ५
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३
वार	५	२	६	१	३	७	४	६	१	५
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१
नक्षत्र	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६
तिथि	८	११	१७	५	११	१४	२	८	१४	२
योग	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३
आयु	८	५६	१०४	८०	५६	१०४	३२	८	१०४	३२
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर

साधितपिण्ड	३७	१९९	१४५	९१	३७	१९९	१४५	९१	३७	१९९
क्षेपक	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१७६५	१९२७	२०८९	२०३५	१९८१	२१४३	२३०५	२२५१	२१९७	२३५९
विस्तार	३७ / ३९	३९ / ४१	४१ / ४३	३९ / ४१	३९ / ४१	४१ / ४३	४३ / ४५	४१ / ४३	४१ / ४३	४३ / ४५
दैर्घ्यहस्त	४७ / ४५	४९ / ४७	५० / ४८	५२ / ४९	५० / ४८	५२ / ४९	५३ / ५१	५४ / ५२	५३ / ५१	५४ / ५२
अंगुल	१६ / ६	१६ / ०	२२ / १४	४ / १५	१९ / ७	६ / २०	१४ / ५	२१ / १०	१४ / २	२० / १०
जव	२ / १	० / ०	६ / ०	२ / २	१ / ५	४ / १	४ / ५	५ / ५	० / २	५ / १
वातादि	४ / ४	८ / ७	२ / २	२ / १	९ / ९	४ / ३	७ / ७	६ / ६	५ / ५	८ / ८
आय	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	२	३	२	३	७	२	४	१	५	७
अंश	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
द्रव्य	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
ऋण	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६
तिथि	५	१	२	५	८	१४	५	८	११	२
योग	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३
आयु	८०	१६	३२	८०	८	१०४	८०	८	५६	३२
व्यय	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
आयद्वार	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२७ रेवती । नक्षत्रद्वार-पूर्व-पश्चिम

साधितपिण्ड	८१	२७	१८९	१३५	८१	२७	१८९	१३५	८१	२७	१८९	१३५	८१	२७	१८९	१३५	८१	२७	१८९	१३५
क्षेपक	२१६	२१६	२१६	२१६	४३२	४३२	४३२	४३२	६४८	६४८	६४८	६४८	८६४	८६४	८६४	८६४	१०८०	१०८०	१०८०	१०८०
मुख्यपिण्ड	२९७	२४३	४०५	३५१	५१३	४५९	६२१	५६७	७२९	६७५	८३७	७८३	९४५	८९१	१०५३	९९९	११६१	११०७	१२६९	१२१५
विस्तार	९, ११	९, १५	१७, १५	९, १३	१९, २१	१७, १९	२३, २१	२१, २३	२३, २५	२५, २३	२७, २५	२७, २५	२७, २९	२७, २५	२७, २९	२७, २९	३१, २७	२७, ३१	३१, २७	३१, २७
दैर्घ्यहस्त	३३, २७	२७, १६	२३, २७	३९, २७	२७, २५	२७, २४	२७, २९	२७, २४	३१, २९	२७, २९	३१, २३	२९, ३१	३५, २२	३३, ३५	३९, ३६	३७, ३४	३७, ४३	४१, ३५	४०, ४७	३९, ४५
अंगुल	०, ०	०, ४	१९, ०	०, ०	०, ९	०, ३	०, १३	०, ५	१६, ३	०, ८	०, ११	०, ७	०, १४	०, १५	०, ७	०, १०	१०, ०	०, १७	२२, ०	४, ०
जव	०, ०	०, ६	७, ०	०, ०	०, १	०, ६	०, ६	०, ५	६, ७	०, २	०, ४	०, ५	०, १	०, ३	०, ४	०, ६	७, ०	०, ०	४, ०	५, ०
दातादि	६, २	९, ६	५, ६	३, ४	१, २	८, ८	५, ६	३, ३	१, १	७, ८	४, ५	२, ३	८, ८	६, ७	३, ३	१, १	६, ७	५, ४	९, ९	८, ७
आय	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	६	३	५	६	४	१	३	७	२	६	१	५	७	४	६	३	५	२	४	१
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७
तिथि	६	९	१५	३	९	१२	३	६	१२	१५	६	९	१२	३	९	१२	३	६	१२	१५
योग	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७
आयु	९६	२४	१२०	४८	२४	७२	४८	९६	४८	१२०	९६	२४	७२	४८	२४	७२	४८	९६	७२	१२०
व्यय	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

२७ रेवती । नक्षत्रद्वार–पूर्व–पश्चिम

साधितपिण्ड	८१	२७	१८९	१३५	८१	२७	१८९	१३५	८१	२७	१८९	१३५	८१	२७	१८९	१३५	८१	२७	१८९	१३५
क्षेपक	१२९६	१२९६	१२९६	१२९६	१५१२	१५१२	१५१२	१५१२	१७२८	१७२८	१७२८	१७२८	१९४४	१९४४	१९४४	१९४४	२१६०	२१६०	२१६०	२१६०
मुख्यपिण्ड	१३७७	१३२३	१४८५	१४३१	१५९३	१५३९	१७०१	१६४७	१८०९	१७५५	१९१७	१८६३	२०२५	१९७१	२१३३	२०७९	२२४१	२१८७	२३४९	२२९५
विस्तार	३३ ३५	३३ ३५	३३ ३५	३३ ३५	३५ ३७	३५ ३७	३७ ३५	३७ ३५	३९ ३७	३७ ३९	३९ ४१	३९ ४१	४१ ४३	३९ ४१	४१ ४३	४१ ४३	४३ ४५	४१ ४३	४३ ४५	४३ ४५
दैर्घ्यहस्त	४१ ३९	४० ३७	४५ ४२	४३ ४०	४५ ४३	४३ ४१	४५ ४८	४४ ४७	४६ ४८	४७ ४५	४९ ४६	४७ ४५	४९ ४७	५० ४८	५२ ४९	५० ४८	५२ ४९	५३ ५०	५४ ५२	५३ ५१
अंगुल	१७ ८	२ १९	० १०	८ २१	१२ १	२३ १४	२३ १४	१२ १	९ २१	१० ०	३ १८	१८ १०	९ २	१२ १	० १४	१५ ८	३ १९	८ २०	१५ ०	५ ०
जव	३ २	१ २	० २	६ २	३ २	२ २	३ ३	३ ३	२ ३	३ ०	५ १	३ ४	५ २	७ ६	५ ४	६ ३	७ २	२ ५	१ ५	५ ०
दातादि	३ ३	२ १	६ ६	५ ४	९ ९	७ ५	२ ३	१ २	५ ५	४ ३	८ ७	६ ६	१ १	९ ९	३ ३	२ २	६ ५	५	८ ८	७ ६
आय	१	३	५	७	१	३	५	४	१	३	५	७	१	३	५	७	१	३	५	७
वार	३	७	२	६	१	५	७	४	६	३	५	२	४	१	३	७	५	६	१	५
अंश	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
द्रव्य	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
ऋण	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५	३	१	७	५
नक्षत्र	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७
तिथि	६	९	१५	३	९	१२	३	६	१२	१५	६	९	१५	३	९	१२	३	६	१२	१५
योग	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७
आयु	९६	२४	१२०	४८	२४	७२	४८	९६	७२	१२०	९६	२४	१२०	४८	२४	७२	४८	९६	७२	१२०
व्यय	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
आयद्वार	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण	सर्व दिक्	पूर्व दक्षिण उत्तर	पूर्व	पूर्व दक्षिण

गृहसारणी—

दीर्घ	विस्तार	पिण्ड	दाताद्दि	आय	वार	अंश	द्रव्य	ऋण	नक्षत्र	तिथि	योग	आयु	व्यय	नक्षत्र दिशा	आय दिशा
५१	३९	१९८९	९	५	२	९	१२	७	९	१२	१८	७२	१	द. उ.	पू.
५३	३९	२०६७	२	३	४	६	१२	१	१२	१	६	९६	४	पू. प.	पू. द. उ.
४३	४१	१७६३	३	३	५	३	४	१	१९	४	५	६४	२	पू. प.	पू. द. उ.
४५	४१	१८४५	५	५	१	९	१२	७	१८	१५	९	१२०	२	द. उ.	पू.
४७	४१	१९२७	७	७	४	६	८	५	२६	११	१३	५६	२	पू. प.	पू. द.
४९	४१	२००९	९	१	७	३	४	३	७	७	१७	११२	७	प. उ.	सर्वदिक्
५१	४१	२०९१	२	३	३	९	१२	१	१५	३	११	४८	७	पू. उ.	पू. द. उ.
५३	४१	२१७३	४	५	६	६	८	७	२३	१४	२५	१०४	७	द. उ.	पू.
५५	४१	२२५५	६	७	२	३	४	५	४	१०	२	४०	४	द. उ.	पू. द.
४५	४३	१९३५	७	७	६	९	१२	५	९	१५	१८	१२०	१	द. उ.	पू. द.
४७	४३	२०२१	९	५	३	३	४	७	२२	१३	११	८८	४	द. उ.	पू.
४९	४३	२१०७	२	३	७	६	८	१	८	११	४	५६	८	द. उ.	पू. द. उ.
५१	४३	२१९३	४	१	४	९	१२	३	२१	९	२४	२४	५	द. उ.	सर्वदिक्
५३	४३	२२७९	६	७	१	३	१०	५	७	७	१७	११२	७	द. उ.	पू. द.
५५	४३	२३६५	८	५	५	६	१०	७	२०	५	१०	५	४	द. उ.	पू.
५७	४३	२४५१	१	७	२	९	१२	५	६	३	३	४८	६	द. उ.	पू. द.
४७	४५	२११५	२	३	२	९	१२	१	१८	१५	९	१२०	२	द. उ.	पू. द. उ.
४९	४५	२२०५	४	५	७	९	१२	७	९	१५	१८	१२०	१	द. उ.	पू.
५१	४५	२२९५	६	७	५	९	१२	५	२७	१५	२७	१२०	३	पू. प.	पू. द.
५३	४५	२३८५	८	१	२	९	१२	३	१८	१५	९	१२०	२	द. उ.	सर्वदिक्
५५	४५	२४७५	१	३	१	९	१२	१	९	१५	१८	१२०	६	द. उ.	पू. द. उ.
५७	४५	२५६५	३	५	१	९	१२	७	२७	१५	२७	१२०	३	पू. प.	पू.
५९	४५	२६५५	५	१	४	९	१२	३	१८	१५	९	१२०	२	द. उ.	सर्वदिक्
६१	४५	२७४५	७	१	२	९	१२	३	९	१५	१८	१२०	१	द. उ.	सर्वदिक्
४९	४७	२३०३	६	७	७	३	४	५	१०	४	५	६४	२	पू. प.	पू. द.
५१	४७	२३९७	८	५	६	९	१२	७	६	६	३	९६	६	द. उ.	पू.
५३	४७	२४९१	१	३	५	६	८	१	२	६	९	८	२	पू. प.	पू. द. उ.
५५	४७	२५८५	३	१	४	३	४	३	२५	१०	१८	८०	१	द. उ.	सर्वदिक्
५७	४७	२६७९	५	७	३	९	१२	५	२१	१२	२४	२७	५	द. उ.	पू. द.
५९	४७	२७७३	७	१	२	६	८	३	१७	१४	२२	१०४	१	द. उ.	सर्वदिक्
६१	४७	२८६७	९	३	१	३	४	१	१२	६	२०	९६	४	पू. प.	पू. द. उ.
६३	४७	२९६१	२	१	७	९	१२	३	९	३	१८	४०	१	द. उ.	सर्वदिक्

सङ्ग्रहकृद्वंशपरिचयः

काश्या उदीच्यां दिशि तर्कराम ३६ क्रोशे सुदूरे विदुषां निवासे ।२

आजमगढप्रान्तगते सुरम्ये ग्रामे शुभे ब्रह्मपुराभिधाने ॥ १ ॥

आसीद् द्विवेदी द्विजवर्य्यपूज्यः श्रीमद्भरद्वाजकुलावतंसः ।

मान्यो वदान्यः प्रपितामहो मे **भोले**तिनाम्ना जगति प्रसिद्धः ॥ २ ॥

तस्याऽभवन्वह्निमितास्तनूजास्तेष्वग्रजो **बालकरामशर्मा** ।

तस्यानुजः **कृष्ण** इति प्रसिद्धो विद्वद्वरः सद्धिषणाधनाढ्यः ॥ ३ ॥

श्रीमाँस्ततो **रामहितो** महात्मा पितामहो मे मतिमानुदारः ।

विद्यानयोदारतया स्ववंशं स्वजन्मनालङ्करणं चकार ॥ ४ ॥

पुत्रास्तदीया बहवो विनष्टा अन्ते वयस्येव ततो बभूव ।

धीरो ह्युदारो विदुषां वरिष्ठः **श्रीधर्मदत्तो** जनको मदीयः ॥ ५ ॥

विंशत्यब्दवयस्करस्य तस्य पुत्रोऽभवं किल ।

विन्ध्येश्वरीप्रसादेति नाम्ना लोकेऽतिविश्रुतः ॥ ६ ॥

एकाकिनं मां जनको मदीयः सार्धैकवर्षीयमितोऽसहायम् ।

हा मेऽसहायां जननीं तथा च दुःखाम्बुराशौ नितरां निमग्नाम् ॥ ७ ॥

कृत्वा च मातापितरौ स्वकीयौ घोरान्धकारेऽतितरा विलीनौ ।

चित्तं स्वकीयं कठिनं विधाय यातो दिवं भूमितलं विहाय ॥ ८ ॥

श्रीविश्वनाथकृपया नगरीं तदीयां

सम्प्राप्य मातृजनकस्य कृपावलम्बात् ।

रामाभिलाष इति सुप्रथितस्य नाम्ना

ज्ञानं ह्यवाप्य सुलिपेस्तत एव सम्यक् ॥ ९ ॥

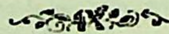
ततः **श्रीप्रभुदत्ता**ख्यमहामहिमशालिनः ।

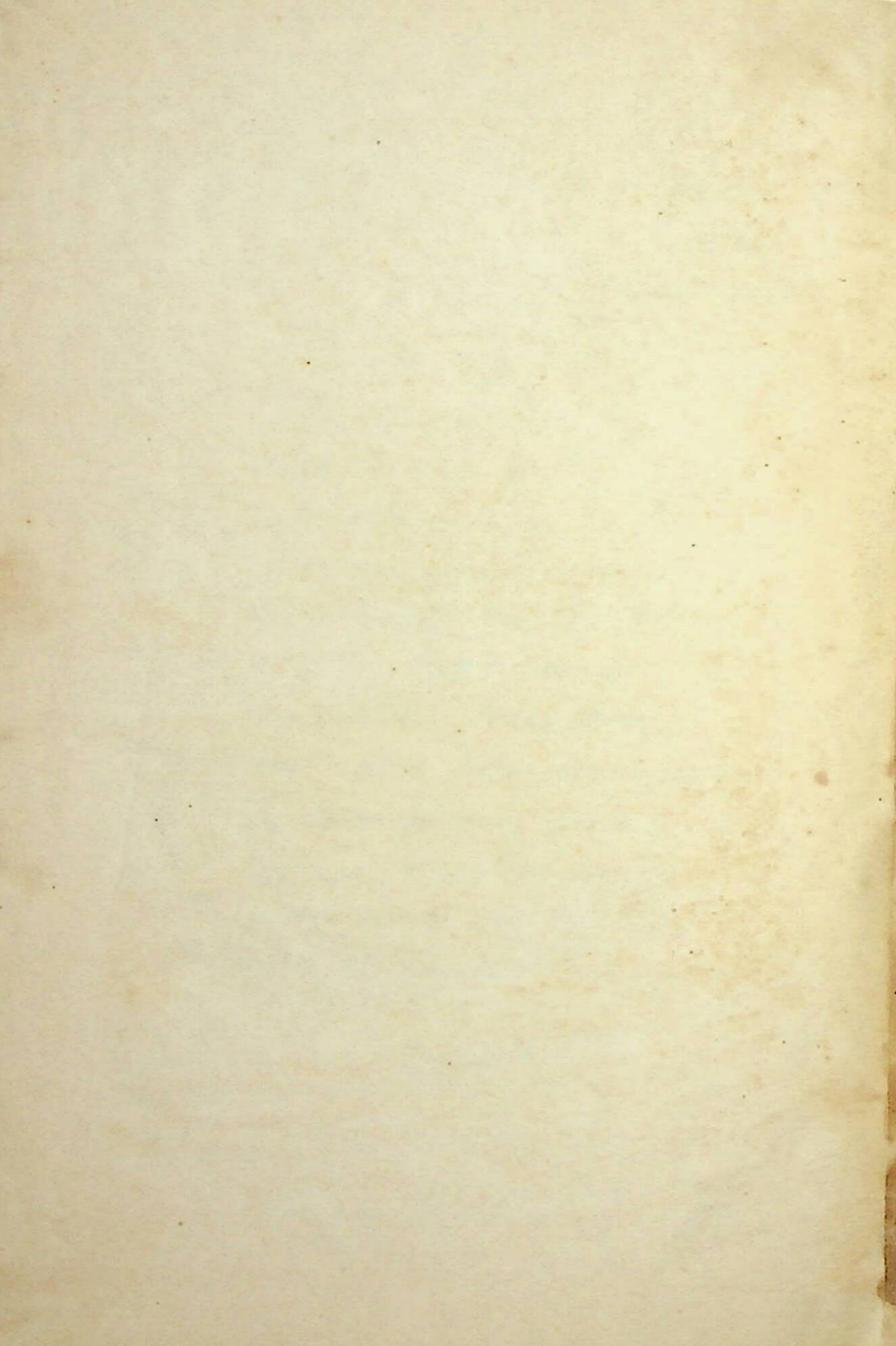
विज्ञवर्य्यस्य सविधे यजुर्वेदमपीपठम् ॥ १९ ॥

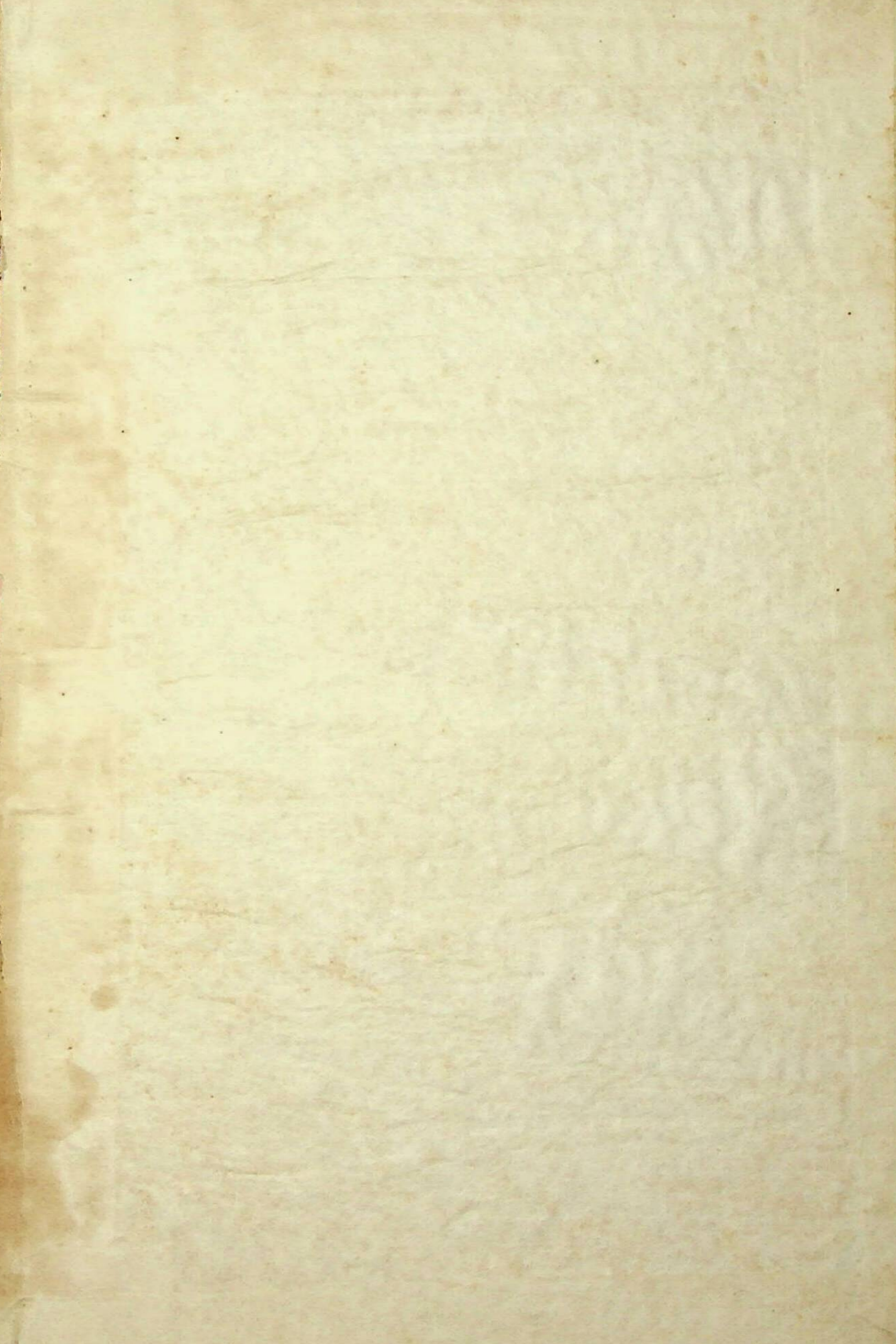
श्रीपूज्यपादगुरुवर्य्य**रिसालदत्त**ज्योतिर्विदः सुधिषणा धनिनस्तथा च ।
लोकोत्तरोत्तमगुणैर्ग्रथितस्य श्रीमत्पूज्याङ्घ्रिपद्मयुगलस्य **सुधाकरस्य** ॥ ११ ॥
सूनोः समस्तगणितार्णवपारगश्री-**पद्माकरस्य** शरणागतवत्सलस्य ।
ज्योतिर्विदः सकलकाव्यकलाप्रवीण**श्रीचन्द्रशेखर**सुधीप्रवरस्य तद्वत् ॥ १२ ॥

प्राप्यान्तेवासित्वं तेभ्यः समवाप्य बोधकलिकां च ।
दत्त्वाचार्यपरीक्षां ज्योतिःशास्त्रे समुत्तीर्णः ॥ १३ ॥
लघुजातकस्य सरलां टीकां **श्रीबालबोधिनी**नाम्नीम् ।
संस्कृतभाषाबद्धां विधाय पूर्वं ततः पश्चात् ॥ १४ ॥
जातकालंकृतेः स्पष्टां हिन्दीटीकां सभूमिकाम् ।
होरिकाणां मनस्तुष्ट्यै (विनोदाय) विधाय तदनन्तरम् ॥ १५ ॥
अखिलव्यवहृतिसिद्ध्यै सु **'फलितनवरत्नसंग्रहं'** दिव्यम् ।
हिन्दीटीकोपेतं सोदाहरणं प्रकाशयित्वा च ॥ १६ ॥
जन्मपत्रप्रदीपाख्यं हिन्दीटीकासमन्वितम् ।
बालानां सुखबोधाय विधाय तदनन्तरम् ॥ १७ ॥

दूरस्थत्वाद्विदित्वा शिथिलितमखिलं स्वीयगेहप्रबन्धं
ह्येतर्ह्यागत्य काश्याः सुनिवसनविधिं संविधास्यन् स्वगेहे ।
शुभ्रे संवत्सरे भूमिखगखगधरा १९९१ संमिते वैक्रमीये
ग्रन्थं चेमं सटीकं सुसमुचितचितं पूर्णतां प्रापयामि ॥ १८ ॥







मुहूर्तचिन्तामणिः

सविमर्श 'चन्द्रिका' संस्कृत-हिन्दी व्याख्यासहित

व्याख्याकार--दैवज्ञ डॉ० रामचन्द्र पाण्डेय

यह ग्रंथ फलित-ज्योतिष का मूर्धन्य माना जाता हैं इसकी 'पीयूषधारा' और 'प्रमिताक्षरा' संस्कृत टीका अति विस्तृत और क्लिष्ट होने से सर्वबोधगम्य नहीं हैं, अतः काशी के ख्यातिप्राप्त फलित-ज्यौतिष के प्रकाण्ड विद्वान् व्याख्याकार ने इस ग्रन्थ की सर्वप्रथम आधुनिक सरल सुबोध संस्कृत व्याख्या लिखी है। इस व्याख्या में ग्रन्थाभिप्राय को भलीभाँति समझने के लिए श्लोकों के प्रतिपद की पर्यायवाची व्याख्या करके हिन्दी में उनके अर्थ, उपपत्ति, तथा उदाहरण दे-देकर ग्रन्थाशय को सर्वबोधगम्य बना दिया हैं तथा विवेच्य श्लोकों पर 'पीयूषधारा' टीका के अपेक्षित अंशों को व्याख्यात्मक हिन्दी विमर्श में इस तरह स्पष्ट कर दिया है कि 'पीयूषधारा' टीका का यह 'विमर्श' हिन्दी रूपान्तर ही हो गया है। २५--००

व्यावहारिक ज्योतिषतत्त्व

'तत्त्वप्रभा' हिन्दीव्याख्यासहित

पं० लषणलाल झा

भूतल, अन्तरिक्ष और भूगर्भ के प्रत्येक पदार्थों का त्रैकालिक यथार्थ ज्ञान जिस शास्त्र से हो वह ज्योतिषशास्त्र है मैंने अपने इष्ट-मित्रों से प्रेरित होकर व्यवहारिक कार्य के उपयुक्त ज्योतिष के सारभूत इस ग्रन्थ लिखने का प्रयास किया। इस ग्रन्थ में बारह तत्व हैं उनमें प्रायः ज्योतिष सम्बन्धी सभी विषय आ गये हैं। अन्त में शान्तितत्त्वात्मक परिशिष्ट है जिसमें शान्ति की विधि दी गयी है। ग्रन्थ में प्रत्येक श्लोक के नीचे हिन्दी अनुवाद के साथ विशेष विचार लिखा गया है जिसको पढ़ने से किसी तरह की आशंका नहीं रह जायगी। इस ग्रन्थ में निम्नलिखित तत्त्व हैं—

१. संज्ञातत्त्वम्, २. यात्रातत्त्वम्, ३. मुहूर्ततत्त्वम्, ४. मेलापकतत्त्वम्, ५. वास्तुतत्त्वम् (भूमिशोधन एवं गृहादि निर्माण), ६. गोचरतत्त्वम् (मासिक साप्ताहिक और दैनिक फलादेश), ७. जातकतत्त्वम् (जन्मपत्रिका निर्माण एवं फलादेश), ८. वर्षतत्त्वम् (वर्षफल०), ९. वृष्टितत्त्वम् (वर्षाविचार), १०. अर्घतत्त्वम् (तेजी-मंदी विचार), ११. सामुद्रिकतत्त्वम् (हस्तरेखा विचार), १२. प्रश्नतत्त्वम्, १३. परिशिष्ट (शान्तितत्त्वम्)।

साधारण जनता के लाभार्थ इसकी टीका अत्यन्त सरल और सुस्पष्ट है, बिना किसी ग्रन्थान्तर के सहारे जनता इससे लाभान्वित होगी। २५--००

लघुजातकम्

'तत्त्वप्रभा' संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित

दैवज्ञ पं० लषणलाल झा

जन्म-कुण्डली निर्माण तथा जन्मलग्न-फलादेश के लिए जातक ग्रन्थों में यह 'लघुजातक' सर्वोत्तम कहा जाता है। इसकी टीका में जातक (नवजातशिशु) सम्बन्धी प्रत्येक प्रश्न का स्पष्टीकरण सरल व सुबोध शब्दों में वर्णित है। ये फलादेश हिन्दी में होने से जन्म-कुण्डली के फलादेश करने तथा स्वयं समझने के लिए यह संस्करण सर्वश्रेष्ठ है। १५--००

प्राप्तिस्थानम्--चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-२२१००१